वाणी-सरोवर

वर्ष ३० अंक ९

जुलाई, १९७३

भुवन वाणी ट्रस्ट
लखनऊ ३

[भुवन वाणी ट्रस्ट (पंजीकृत) लखनऊ का मुखपत्र (त्रैमासिक)]

वाणी सरोवर

प्रत्येक क्षेत्र प्रत्येक संत की बानी।
संपूर्ण राष्ट्र में घर-घर है पहुँचानी ।।

संपादक—नन्दकुमार अवस्थी प्रब०सं०—विनयकुमार अवस्थी

वर्ष—४ जुलाई, १९७३ अंक—३

विद्वत्-परिषद्

असमिया—बसन्तकुमार सैकिया
सुश्री दीप्ति बरगुहाईं

अरबी—क़ारी मुहम्मद उस्मान सिद्दीक़ी, दारुल्-मुबल्लग़ीन, लखनऊ

ओड़िया—सुरेशचन्द्र नन्द, एम. ए. हिन्दी-ओड़िया, रा० भा० रत्न, कटक

अंग्रेज़ी—डॉ. एम. डी. पटियाल
प्रिं. उ. भा. धर्ममहाविद्या. बरेली

उर्दू—डॉ.स० असदअली एम.ए.,पीएच्. डी.
सुश्री माजदा असद एम.ए. पीएच्.डी.

कन्नड—डॉ. वी. बी. पुत्तन, एम. ए., पीएच्. डी., बंबई

कश्मीरी—डॉ. शिंबनकृष्ण रैणा, एम. ए., पीएच्. डी., नाथद्वारा (राज.)

गुजराती—डॉ. दीनेश हरिलाल भट्ट,एम.ए. पीएच्.डी., रा०भा० रत्न, बंबई

गुरुमुखी—डॉ० अमरसिंह खालसा, डा० आफ़ डिविनिटी (यू. एस. ए.)
सरदार कृपालसिंह ऐबट, बी. काम., एल. एल. बी.

तमिळ—डॉ०पी० जयरामन,हिन्दी आफ़िसर रिज़र्व बैंक ऑफ़ इण्डिया
वी. नटराजन, एम. काम.

तेलुगु—डॉ. भीमसेन 'निर्मल', एम. ए., पीएच्.डी.,रीडर,उस्मानिया वि.वि.

नेपाली—नन्दकुमार आमात्य
सुश्री तपेश्वरी देवी आमात्य

पाली—डॉ० हर्षनारायण एम.ए.,पीएच्.डी.

पारसी—सुश्री नाज़ू दारा देबू, 'दिलनवाज़'

फ़ारसी—स० मस्ऊ़दहसन रिज़्वी, भारत-सरकार-सम्मानित, भू.पू.(फ़ारसी) विभागाध्यक्ष लखनऊ वि० वि०

बंगला—प्रबोध मजुमदार

मराठी—प्रा० गजानन साठे,एम.ए.,मराठी-अंग्रेजी, हिन्दी, बी.टी., पीएच्. डी. (हिन्दी), बंबई
सुश्री कुसुम ताम्बे, एम. ए.

मलयाळम—के. ए. एस. अय्यर, भू. पू. उपकुलपति लख० वि० वि०

संस्कृत—बिहारीलाल शास्त्री,का.तीर्थ, बरेली
जनार्दन गंगाधर रटाटे, एम. ए.

सिन्धी—प्रा० कु० पी. टी. आसवाणी, एम. ए., साहित्यरत्न
एन. के.केवलरामानी, सा.मं.सि.स.

हिन्दी—चन्द्रभानु मिश्र 'प्रभाकर', एम. ए., बी. एड.(हि० लिंग्वि०)

वार्षिक मूल्य १०·०० एक प्रति २·५०

विषय-सूची

क्रम	विषय	लेखक	पृष्ठ
१	विद्वत्परिषद्	... ...	१
२	विषय-सूची	... ...	२
३	सम्पादकीय	नन्दकुमार अवस्थी	३-५
४	ऋग्वेद मण्डल १ सूक्त ७	—पं० बिहारीलाल शास्त्री	६-८
५	(फ़ारसी)	सिर्रेअक्बर—शा. दाराशिकोह कृत ५० उपनिषदों की व्याख्या। (क्रमशः) अनुवादक—डॉ. हर्षनारायण एम.ए.,पीएच्.डी.	१८५-१९२
६	(मलयाळम)	कवि तुञ्चत्त् एळुत्तच्छन्कृत महाभारत (क्रमशः) सानु.लिप्य.—श्री के.ए.एस.अय्यर,भू.पू. उपकुलपति लख. वि.वि.	१९३-२००
७	(बंगला)	कृत्तिवास रामायण लं.कां.—(क्रमशः) लिप्य.—नन्दकुमार अवस्थी, अनु.—श्री प्रबोध मजुमदार	१९३-२००
८	(तमिळ)	तिरुक्कुऱळ्—सानु०लिप्य०—श्री डॉ० जयरामन, सुश्री गोमती अय्यर; पद्य-भावानुवाद—नन्दकुमार अवस्थी (क्रमशः)	१६९-१७६
९	(उर्दू)	गुज़श्तः लखनऊ—मौ० अब्दुल हलीम शरर, (क्रमशः) लिप्यन्तरणकार—सुश्री कु० हुमैरा सिद्दीक़ी	४१-४८
१०	(अरबी)	रियाज़ुस्सालिहीन (ज़ादे सफ़र)—(क्रमशः) लिप्यन्तरणकार—नन्दकुमार अवस्थी	१५३-१६०
११	(ओड़िया)	वैदेहीश-विळास—उपेन्द्र भञ्ज कृत—(क्रमशः) सानु० लिप्य०—श्री सुरेशचन्द्र नन्द, एम.ए., कटक	१६९-१७६
१२	(मराठी)	श्रीराम-विजय—श्रीधर स्वामी कृत—(क्रमशः) अनु०—डॉ० गजानन साठे,पूना एम.ए.,अंग्रेज़ी-मराठी-हिन्दी	१२९-१३६
१३	(असमिया)	माधव कन्दली कृत रामायण—(क्रमशः) सानु० लिप्य०—श्री प्रबोध मजुमदार	१०५-११२
१४	(गुजराती)	गिरधर-रामायण—(क्रमशः) सानु. लिप्य०—डॉ. गजानन साठे,पूना,डॉ. दीनेश भट्ट,बंबई	९७-१०४
१५	(तेलुगु)	रंगनाथ रामायण—(क्रमशः) सानु० लिप्य०—डॉ० भीमसेन 'निर्मल',एम.ए.,पी.एच्. डी.	८९-९६
१६	(सिन्धी)	सामीअ जा सलोक—(क्रमशः) सानु० लिप्य०—प्रा० कु० पी. आसवाणी, एम. ए. सा०र०	८९-९६
१७	(कन्नड)	पम्प रामायण—रच० अभिनव पम्प नागचन्द्र (क्रमशः) सानु. लिप्य.—डॉ. वी. बी. पुत्रन, एम.ए., पीएच्. डी.	७३-८०
१८	(नेपाली)	भानुभक्त रामायण—(क्रमशः) अनु० श्री नन्दकुमार आमात्य	७३-८०
१९	(कश्मीरी)	रामावतार-चरित—(क्रमशः) सानु. लिप्य.—डॉ. शिबनकृष्ण रैणा एम. ए. पीएच्. डी.	८१-८८
२०	(गुरमुखी)	श्री गुरुग्रन्थ साहिब—हिन्दी व्याख्या सहित (क्रमशः) सरदार कृपालसिंह ऐबट, बी. काम, एल. एल. बी.	४९-५६
२१	(संस्कृत)	श्रीरामचरितमानस—संस्कृत पद्यानुवाद सहित (क्रमशः) श्री जनार्दन गंगाधर रटाटे, एम. ए., साहित्यरत्न	४९-५६

सम्पादकीय

भाषा-सेतु शिक्षा संस्थान

भुवन वाणी ट्रस्ट तथा उसकी पृष्ठभूमि में गत छब्बीस वर्षों से भारतीय एवं भारत में व्यवहृत भाषाओं को देवनागरी लिपि का जामा पहना कर उनके सत्साहित्य को जनता के सम्मुख लाया जा रहा है। देवनागरी लिपि और हिन्दी अनुवाद के सहारे संस्कृत, अ़रबी, उर्दू, फ़ारसी, बंगला, असमिया, ओड़िया, नेपाली, कश्मीरी, गुरमुखी, सिन्धी, राजस्थानी, गुजराती, मराठी, तमिळ, तेलुगु, मलयाळम, कन्नड आदि को देश के कोने-कोने में प्रचलित किया जा रहा है। इन भाषाओं के लोकप्रिय ग्रंथों को देवनागरी लिपि में सानुवाद लिप्यन्तरित करके ग्रंथ रूप में, तथा 'वाणीसरोवर त्रैमासिक' में धारावाहिक प्रकाशित किया जा रहा है।

ज्ञातव्य है कि अनेक भाषाओं में प्रायः कुछ ऐसे भी विशिष्ट स्वर-व्यञ्जन हैं, जिनका देवनागरी लिपि में अभाव है। देवनागरी लिपि में उनके लिए, प्रतिनिधि अक्षरों को सिरज कर, उनके विशिष्ट उच्चारणों को प्रकट किया गया है। किन्तु अब प्रश्न दो हैं—(१) जनता इन विशिष्ट उच्चारणों से परिचित और अभ्यस्त हुए बिना, उन विभिन्न भाषाई ग्रंथों के मूल पाठ को पढ़ने में किस प्रकार समर्थ हो? (२) इन विभिन्न भाषाओं के साहित्य को देवनागरी लिपि में प्रस्तुत कर देने के बाद भी, देश के विभिन्न क्षेत्र अपने से भिन्न क्षेत्रों के भाषा-साहित्य को कैसे समझ लेने के योग्य हों? —और जब तक इन दोनो प्रश्नों का हल नहीं होता तब तक इन लिप्यन्तरित ग्रंथों का वाञ्छित सदुपयोग और हमारे उद्देश्य 'भाषाई सेतुकरण' की पूरी सफलता कैसे सम्भव है!

इस जटिल और अनिवार्य समस्या के हल के लिए भुवन वाणी ट्रस्ट के सदुद्देश्यों के अनुरूप ट्रस्ट की प्रेरणा से इस वर्ष 'भाषासेतु शिक्षा संस्थान' की स्थापना की गई है। इस संस्थान के द्वारा ऐसे विद्यालयों की नीवँ डाली जायगी जहाँ देवनागरी लिपि के माध्यम से उपर्युक्त सभी भाषाओं के शिक्षण की व्यवस्था हो। लोग एक-दूसरे की भाषाओं को देवनागरी लिपि में न केवल लिखने और पढ़ने की योग्यता हासिल करलें, वरन् उन भाषाओं के सहज-स्वाभाविक उच्चारणों के अनुरूप बोल-चाल में भी समर्थ हों।

इस प्रकार के विद्यालयों में, सम्बन्धित भाषाओं के सामान्य बोलचाल की क्षमता लाई जायगी—उन भाषाओं में विज्ञ बनने के लिए, और इस प्रारम्भिक स्तर के बाद, शिक्षार्थियों को विशेष योग्यता प्राप्त करने के लिए अन्यत्र अध्ययन करना होगा। सामान्य 'बोलचाल' से संकेत है—जैसे आम बंगाली हिन्दी बोलते हैं, अथवा विभिन्न क्षेत्रों से आये फ़ौजी रँगरूट बाज़ार में हिन्दी बोलकर काम निकालते हैं। एक से अधिक भाषाओं में इस सामान्य बोलचाल की योग्यता आ जाने पर एक क्षेत्र का निवासी दूसरे क्षेत्र में जाकर बोल-बतला कर काम निकाल और उस क्षेत्र की जनता में घुल-मिल सकता है। साथ-साथ राष्ट्रभाषा की व्यापकता और लोकप्रियता में भी वृद्धि होगी। राष्ट्रीय एकीकरण की समझिए यही दृढ़ आधार-शिला है।

ऐसे विद्यालयों में न तो विद्यार्थियों अथवा वयस्क शिक्षार्थियों का अधिक समय लगेगा और न शिक्षकों के लिए किसी विशिष्ट शैक्षिक डिग्री की ज़रूरत है। हिन्दी-बोलने में समर्थ होने के साथ-साथ किसी भाषा का शिक्षण देने के लिए शिक्षक की सर्वोपरि और अनिवार्य योग्यता यह होना चाहिए कि सिखाई जानेवाली भाषा उसकी मातृभाषा हो। तभी उस भाषा के स्वाभाविक उच्चारण की शिक्षा सम्भव होगी। किसी डिग्री का प्रतिबन्ध न होने से, हमें उपर्युक्त शिक्षकों का अभाव भी न रहेगा। इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय है कि डॉ० रामजी लाल सहायक ने अपने प्रथम शिक्षा-मंत्रित्वपद पर आते ही यह घोषणा की

थी कि उत्तर प्रदेश की सभी प्राइमरी पाठशालाओं में एक न एक दक्षिणी भाषा की शिक्षा अनिवार्य होगी। यह घोषणा भावातिरेक मात्र न थी; देश को इसकी ज़रूरत थी। किन्तु यह योजना एकमात्र इस कारण ही न चल पाई कि इन भाषाओं के सुपठित शिक्षकों का अभाव था। यदि विशेष शैक्षिक योग्यता का प्रतिबन्ध न होता और बिना किसी विशेष शिक्षा-प्रमाणपत्र के, इन भाषाओं के मातृभाषी सामान्य जनों को अध्यापन-कार्य में नियुक्त कर उनसे काम लिया जाता, तो भूतपूर्व शिक्षामंत्री की भाषाई माध्यम से भावात्मक एकता की यह योजना प्रदेश को और सारे देश को कहीं आगे ले जा चुकी होती। त्रिभाषा फ़ार्मुला का असली उद्देश्य सफल होकर रहता।

सुतराम् इस विज्ञप्ति से 'भाषासेतु शिक्षा संस्थान' की स्थापना की सूचना देते हुए, सरकार और जनता से उनके मूल्यवान् सुझाव और सहयोग की अपेक्षा है।

सूक्त ७

ऋषि मधुच्छन्दा, देवता इन्द्र, छन्द-गायत्री

इन्द्रमिद् गाथिनो बृहदिन्द्रमर्केभिरर्किणः ।
इन्द्रं वाणीरनूषत । (ऋग् १।७।१)

अर्थ—ऐश्वर्यवान् इन्द्र की ही सामवेद गायक गीतों से स्तुति करते हैं। भक्त उस महान् इन्द्र की वाणियों से स्तुति करते हैं।

भावार्थ—अनेक देवताओं के नामों से वेद में ईश्वर ही का गुण-गान किया गया है।

इन्द्र इद्धर्योः सचा सम्मिश्ल आ वचोयुजा ।
इन्द्रो वज्री हिरण्ययः । (ऋग् १।७।२)

अर्थ—इन्द्र ही वाणी के प्रयोग से हरण-योग्य शब्दों को, किरण-रूपी घोड़ों को मिलाता है। इन्द्र ही सम्वत्सर बनाता है, इन्द्र सुनहरा है।

भावार्थ—यहाँ इन्द्र से तात्पर्य सूर्य और वायु से है, वायु शब्द वाहक है और किरणें भी शब्द में सहायक हैं।

इन्द्रो दीर्घाय चक्षस आ सूर्यं रोहयद् दिवि ।
वि गोभिरद्रिमैरयत् । (ऋग् १।७।३)

अर्थ—इन्द्र (ईश्वर) ही दूर तक देखने के लिए द्यौ लोक में सूर्य को स्थापित करता है और सूर्य अपनी किरणों से मेघों को इधर-उधर भेजता है।

भावार्थ—ईश्वर ने मनुष्य की आँखों को प्रकाश देने के लिए सूर्य बनाया। मेघों की गति में भी वायु के साथ-साथ सूर्य-किरणें भी सहायक हैं। मन्त्र में राजा को भी शिक्षा दी गयी है कि मार्ग-दर्शन के लिए विद्वानों को ऊँचे स्थानों (पदों) पर रक्खे।

इन्द्र वाजेषु नोऽव सहस्रप्रधनेषु च ।
उग्र उग्राभिरूतिभिः । (ऋग् १।७।४)

अर्थ—हे इन्द्र ! उत्तम धन-विजय देनेवाले संग्रामों में तथा यज्ञों में, हे बलवान इन्द्र ! उच्च रक्षा वा धनों से हमारी रक्षा करो।

भावार्थ—उत्तम राजा का काम है कि उत्तम शस्त्रास्त्रों से सेना को युक्त करके प्रजा की रक्षा करे।

इन्द्रं॑ व॒यं म॑हाध॒न इन्द्र॒मर्भे॑ हवामहे ।
युजं॑ वृ॒त्रेषु॑ व॒ज्रिण॑म् । (ऋग् १।७।५)

अर्थ—हम बड़े संग्राम में और छोटे संग्राम में इन्द्र को पुकारते हैं। जो इन्द्र नगरों का अवरोध करनेवाले-घेरनेवाले शस्त्रुओं में वज्र-युक्त होता है, शत्रुओं पर वज्र-प्रहार करता है।

भावार्थ—इस संसार के कार्य-रूप छोटे-बड़े संग्रामों में वृत्र (मोह-ज्ञानावरण) को वज्र-रूपी अपनी शक्तियों से नष्ट करनेवाले इन्द्र की स्तुति करो। वृत्र मोह, ईश्वर-स्मरण आस्तिकता से ही दूर होता है। राजा भी ऐसा ही हो जो नगरों के घेरनेवाले दुश्शत्रुओं पर वज्र प्रहार कर सके।

स नो॑ वृषन्न॒मुं च॒रुं सत्रा॑दाव॒न्नपा॑ वृधि ।
अ॒स्मभ्य॒मप्र॑तिष्कुतः । (ऋग् १।७।६)

अर्थ—हे सुखों की वर्षा करनेवाले और सब अभीष्ट फलों को देनेवाले प्रभो ! हमारे इस चरु (यज्ञ की सामग्री) को बढ़ाओ। हमारे लिए आप सब ओर से विजयी हुए हमारी रक्षा करो।

भावार्थ—ईश्वर सब ओर से विजयी है। इसी प्रकार राजा सब ओर से निर्भय और विजयी होकर ही प्रजा के चरु—भोजन आदि सामग्री को बढ़ा सकता है, रक्षा कर सकता है।

तुञ्जेतुं॑ञ्जे॒ य उत्त॑रे॒ स्तोमा॒ इन्द्र॑स्य व॒ज्रिणः॑ ।
न वि॑न्धे अस्य सुष्टु॒तिम् । (ऋग् १।७।७)

अर्थ—शक्तिशाली इन्द्र के प्रत्येक उत्तम दान में जो उत्तम स्तुतियाँ हैं, इससे अधिक मैं उसकी स्तुति नहीं पाता।

भावार्थ—वेदों में इन्द्र (ईश्वर) के उपकारों की सर्वोत्तम स्तुतियाँ हैं। उससे अच्छी प्रशंसा और क्या होगी ?

वृषा॑ यू॒थेव॒ वंस॑गः कृष्टीरि॑य॒त्योज॑सा ।
ईशा॑नो॒ अप्र॑तिष्कुतः । (ऋग् १।७।८)

अर्थ—जिस प्रकार वीर्य-सिंचन में समर्थ साँड़ अपने ओज से गौओं को प्राप्त करता है, खेतियों को पाता है। प्रसन्न हुआ सब ओर से विजयी सबका स्वामी बनता है। उसी प्रकार राजा-नेता सब ओर से निर्भय तथा प्रभावशाली होवे। सूर्य भी किरणों का स्वामित्व पाता है (योग्य बनाता है)।

भावार्थ—नेता राजा—प्रजा की रक्षा करनेवाला और शक्तिशाली होना चाहिए। सूर्य अपनी किरणों से खेती को पकाता है। ज्ञानी भी अपने ज्ञान से शिक्षा पाता है (योग्य बनाता है)।

य एकश्चर्षणीनां वसूनामिरज्यति।
इन्द्रः पञ्च क्षितीनाम्। (ऋग् १।७।९)

अर्थ—जो इन्द्र अकेला सब धनों का, निवासियों का, सूर्यादि वसुओं का, पाँच प्रकार की प्रजाओं का (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और वर्ण-वाह्य) सब का ऐश्वर्यवान् स्वामी है, उसी को जानो-मानो।

भावार्थ—यहाँ इन्द्र ईश्वर है ५ क्षिती ५ भूमि का पञ्चकोश भी है। अन्नमय कोश, प्राणमयकोश, मनोमय कोश, विज्ञानमय कोश, आनन्दमय कोश। इन सब का स्वामी इन्द्र-जीवात्मा है।

इन्द्रं वो विश्वतस्परि हवामहे जनेभ्यः।
अस्माकमस्तु केवलः। (ऋग् १।७।१०)

अर्थ—विश्व की सब शक्तियों से ऊपर इन्द्र है। हम जनता के कल्याण के लिए उसे पुकारते हैं, हमारा एक वही सहारा है।

भावार्थ—इन्द्र ही सर्वोपरि शक्ति है। वेद ने केवल ईश्वर को ही उपास्य बताया है। ईश्वर से जन-कल्याण के लिए प्रार्थना करना चाहिए।

सि० अ०—जो कोई ब्रह्म को असत् जानता है उस का प्रकट अस्तित्व भी असत् हो जाता है, और जो कोई ब्रह्म को सत् जानता है बुद्धिमान् उस को भी सत् जानते हैं। पाँचवाँ कोश जो आनन्दमय कोश है और साक्षात् आनन्द है विज्ञानमय कोश के आत्मा के समान है।

प्रश्न—क्या जिन अज्ञों ने ब्रह्म को नहीं जाना वे इस लोक को छोड़कर ब्रह्मलोक को प्राप्त होते हैं, अथवा ये ज्ञानी ही ब्रह्मलोक को प्राप्त होते हैं ?

उत्तर—जब ब्रह्म अकेला था तब उसे इच्छा हुई कि मैं बहुत होकर प्रकट हो जाऊँ। उस ने तप किया, इस समस्त जगत् को उत्पन्न किया, समस्त जगत् में अनुप्रविष्ट हुआ, स्वयं साकार और निराकार बना अर्थात् निर्गुण और सगुण हो गया। जिस भी सत्ता के सम्बन्ध में 'यह' और 'वह' का प्रयोग हो सकता है और जिस भी सत्ता के सम्बन्ध में 'यह' और 'वह' का प्रयोग नहीं हो सकता, वह दोनों ही हो गया। वह साश्रय भी हो गया और निराश्रय भी हो गया, सूक्ष्म भी हो गया और स्थूल भी हो गया, सत्य भी हो गया और असत्य भी हो गया। चूँकि वही सब कुछ हो गया है और उस में सभी द्वन्द्व निहित हो गये हैं, अतएव सभी लोग उसे सत्य जानते हैं। इसी के अनुसार एक अन्य वेदमंत्र भी है—[१]

सप्तमोऽनुवाकः

'असद् वा इदमग्र आसीत्, ततो वै सदजायत।[1]
तदात्मानꣳ स्वयमकुरुत, तस्मात् तत् सुकृतमुच्यते' इति।

यद् वै तत् सुकृतं रसौ वै सः। रसꣳ ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति। को ह्येवान्यात् कः प्राण्यात् यदेष आकाश आनन्दो न स्यात् ? एष ह्येवानन्दयाति। यदा ह्येवैष एतस्मिन्नदृश्ये, ऽनात्म्ये, ऽनिरुक्ते, ऽनिलयने, ऽभयं प्रतिष्ठां विन्दते, अथ सोऽभयंगतो भवति। यदा ह्येवैष एतस्मिन्नुदरमन्तरं कुरुते, अथ तस्य भयं भवति। तत् त्वेव भयं विदुषो मन्वानस्य। तदप्येष श्लोको भवति—॥ १ ॥

अनु०—'पहले यह [जगत्] असत् ही था, उसी से सत् उत्पन्न हुआ। उस [असत्] ने स्वयं अपने को रचा, इसलिए वह सुकृत (सुरचित अथवा स्वरचित) कहा जाता है। वह जो सुकृत है वह निश्चय रस ही है।

---

१ तुलनीय—छान्दोग्योपनिषद् ६.२.१-२।

इस रस को पाकर यह [पुरुष] आनन्दी हो जाता है। यदि यह आकाश आनन्द (आनन्दस्वरूप आत्मा) न होता तो कौन व्यक्ति जीता और कौन प्राणन-क्रिया करता ? यही तो उन्हें आनन्दित करता है। जिस समय यह [साधक] इस अदृश्य, अशरीर, अनिर्वाच्य, और अनाधार ब्रह्म में अभय-स्थिति प्राप्त करता है उस समय यह अभय को प्राप्त हो जाता है। और जब यह इस में थोड़ा-सा भी छेद-भेद करता है तो उसे भय प्राप्त होता है। वह [ब्रह्म] ही भेददर्शी विद्वान् के लिए भय रूप है। इसी अर्थ में यह श्लोक है–(१)

सि० अ०––जगत् की उत्पत्ति के पूर्व जब नाम और रूप नहीं था तब कुछ भी व्यक्त नहीं था। जब नामी और रूपी प्रकट हुए तब नाम और रूप भी प्रकट हुए। अर्थात् उस काल में गुणधर्म गुणी में निहित थे। जब नामी और रूपी प्रकट हो गये, तब गुणी गुणों में लुप्त हो गया। इस लिए गुण भी सत्य हैं। उस ने अपने को स्वयं प्रकट किया। इस लिए उसे 'सुकृत' कहते हैं, अर्थात् [उस ने] अपने को स्वयं ही भली भाँति प्रकट किया। वह सभी रसों का स्रोत है। जो ब्रह्मवेत्ता उस यथार्थ रस को जो साक्षात् ब्रह्म है प्राप्त कर लेता है वह सुख प्राप्त कर लेता है और आनन्दी हो जाता है। यदि वह आनन्द जो मन में निहित है न होता, तो अपानवायु और प्राणवायु को कौन गति देता ? वही आनन्दस्वरूप जो मन में है सब को आनन्दयुक्त करता है। जब ज्ञानी पुरुष उस आनन्दस्वरूप से एकीभूत हो जाते हैं तब वे निर्भय हो जाते हैं। वह ऐसा आनन्द है जो सदा एक दशा में रहता है। वह निराकार है, वाणी में नहीं आता, और अनाश्रय है। जो कोई जीवात्मा को आत्मा से किञ्चित् मात्र भी भिन्न जानता है उसे सदा भय होता है और ब्रह्म उस के लिए भय का कारण बन जाता है। जब भगवद्भाव और दासभाव बीच में आते हैं तो उस के लिए भय का कारण बन जाते हैं। इसी के अनुसार एक अन्य वेदमंत्र भी है—[१]

अष्टमोऽनुवाकः

'भीषाऽस्माद् वातः पवते, भीषोदेति सूर्यः,
भीषाऽस्मादग्निश्, चेन्द्रश् च, मृत्युर् धावति पञ्चमः'[1]
इति।

सैषानन्दस्य मीमाँसा भवति—युवा स्यात्, साधुयुवा,

१ तुलनीय कठोपनिषद् ६.३।

ऽध्यायक, आशिष्ठो, दृढिष्ठो, बलिष्ठस्; तस्येयं पृथिवी सर्वा वित्तस्य पूर्णा स्यात्। स एको मानुष आनन्दः। ते ये शतं मानुषा आनन्दाः, ॥ १ ॥

अनु०—इस के भय से वायु चलता है, [इसी के] भय से सूर्य उदित होता है, इसी के भय से अग्नि, इन्द्र, और पाँचवाँ मृत्यु दौड़ता है। अब यह आनन्द की मीमांसा है—युवा हो, साधु युवा, सुपठित, अत्यन्त आशावान्, अत्यन्त दृढ़, अत्यन्त बलिष्ठ; एवं यह धन-धान्य से पूर्ण सम्पूर्ण पृथ्वी भी उस की हो। [उस का जो आनन्द है] वह एक मानुष आनन्द है। ऐसे जो सौ मानुष आनन्द हैं, (१)

सि० अ०—ब्रह्म के भय से ही वायु चलता है, ब्रह्म के भय से ही सूर्य उदित होता है, ब्रह्म के भय से ही अग्नि और देवराज इन्द्र और मृत्यु अपने-अपने कार्य करते हैं।

उस आनन्द का वर्णन इस प्रकार है कि जो कोई युवा और सुन्दर होता है, वेदाध्यायी होता है, स्वस्थचित्त होता है, बलिष्ठ होता है, वह समग्र भूमि का स्वामी होता है और धनाढ्य होता है। मनुष्य के लिए इस से बढ़कर कोई आनन्द नहीं। यदि सौ आनन्द एक जगह जमा करें, [१]

—स एको मनुष्यगन्धर्वाणामानन्दः, श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य। ते ये शतं मनुष्यगन्धर्वाणामानन्दाः स एको देवगन्धर्वाणामानन्दः, श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य। ते ये शतं देवगन्धर्वाणामानन्दः स एकः पितृणां चिरलोकलोकानामानन्दः, श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य। ते ये शतं पितृणां चिरलोकलोकानामानन्दाः स एक आजानजानां देवानामानन्दः, ॥ २ ॥

अनु०—वही मनुष्य-गन्धर्वों का एक आनन्द है, और कामनाओं से अनाक्रान्त श्रोत्रिय का भी। वे जो मनुष्य-गन्धर्वों के सौ आनन्द हैं वही देव-गन्धर्वों का एक आनन्द है, और कामनाओं से अनाक्रान्त श्रोतिय का भी। वे जो देवगन्धर्वों के सौ आनन्द हैं वही नित्यलोक में रहने वाले पितृगण का एक आनन्द है, और कामनाओं से अनाक्रान्त श्रोत्रिय का भी।

वे जो चिरलोक-निवासी पितृगण के सौ आनन्द हैं वही आजानज देवताओं[1] का एक आनन्द है, (२)

सि० अ०—तो वे उस पुरुष के एक आनन्द के बराबर होते हैं जो पुण्यकर्म द्वारा मृत्यु के अनन्तर गान का देवता गन्धर्व बन गया हो। उस वेदज्ञका आनन्द भी जिस ने वेदाध्ययन कर्म के फल की इच्छा से नहीं किया है इसी के अनुसार होता है। यदि उस पुरुष के सौ आनन्द, जिस ने पुण्यकर्म द्वारा गन्धर्व का पद प्राप्त किया है, एक स्थान पर जमा करें, तो वे गन्धर्व के एक आनन्द के बराबर होते हैं, जो गन्धर्व के स्वरूप में निहित हैं। उस वेदज्ञ का आनन्द भी जिस ने वेदाध्ययन कर्म के फल की इच्छा से नहीं किया है इसी के अनुसार होता है। यदि गन्धर्व के सौ आनन्दों को जो गन्धर्व के स्वरूप में निहित होते हैं एक स्थान पर जमा करें तो वे उस पुरुष के एक आनन्द के बराबर होते हैं जो परलोक में निवास करता है और वहाँ चिर काल तक रहता है। उस वेदज्ञ का आनन्द भी जिस ने वेदाध्ययन कर्म के फल की इच्छा से नहीं किया है इसी के अनुसार होता है। यदि उस पुरुष के सौ आनन्द जो परलोकस्थ है, एक स्थान पर जमा करें, तो वे उस पुरुष के एक आनन्द के बराबर होते हैं जिस ने पुण्य कर्म द्वारा देवलोक को प्राप्त किया है और जिसे आजानजदेव कहते हैं। [२]

—श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य। ते ये शतमाजानजानां देवानामानन्दाः स एकः कर्मदेवानां देवानामानन्दः—ये कर्मणा देवानपि यन्ति–, श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य। ते ये शतं कर्मदेवानां देवानामानन्दाः स एको देवानामानन्दः, श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य। ते ये शतं देवानामानन्दाः स एक इन्द्रस्यानन्दः, ॥ ३ ॥

अनु०–और वह कामनाओं से अनाक्रान्त श्रोत्रिय का भी। वे जो आजानज देवताओं के सौ आनन्द हैं वही कर्मदेव[2] देवताओं का, जो [अग्निहोत्रादि] कर्म कर के देवलोक को जाते हैं, एक आनन्द है, और कामनाओं से अनाक्रान्त श्रोत्रिय का भी। वे जो कर्मदेव देवताओं के सौ आनन्द हैं वही देवताओं का एक आनन्द है, और कामनाओं से अनाक्रान्त

---

१ 'आजानज' वे देवता हैं जिन्हें जन्म से ही देवत्व प्राप्त है।

२ 'कर्म-देव' अर्थात् कर्म से देवत्व प्राप्त करने वाले देवता।

श्रोत्रिय का भी। वे जो देवताओं के सौ आनन्द हैं वही इन्द्र का एक आनन्द है, (३)

सि० अ०—उस वेदज्ञ का आनन्द भी जिस ने वेदाध्ययन कर्म के फल की इच्छा से नहीं किया है इसी के अनुसार होता है। यदि कर्मदेव के सौ आनन्द एक जगह जमा करें तो वे उन देवताओं के एक आनन्द के बराबर होते हैं जो अपने स्वरूप से देवता बन गये हैं। उस वेदज्ञ का आनन्द भी जिस ने वेदाध्ययन कर्म के फल की इच्छा से नहीं किया है इसी के अनुसार होता है। यदि उन देवताओं के सौ आनन्द एक जगह जमा किये जायँ जो अपने स्वरूप से देवता बन गये हैं तो वे देवराज इन्द्र के एक आनन्द के बराबर होते हैं। [३]

—श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य। ते ये शतमिन्द्रस्यानन्दाः स एको बृहस्पतेरानन्दः, श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य। ते ये शतं बृहस्पतेरानन्दाः स एकः प्रजापतेरानन्दः, श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य। ते ये शतं प्रजापतेरानन्दाः स एको ब्रह्मण आनन्दः, श्रोत्रियस्य चाकामहतस्य ॥ ४ ॥

अनु०—तथा कामनाओं से अनाक्रान्त श्रोत्रिय का भी। इन्द्र के जो सौ आनन्द है वही बृहस्पति का एक आनन्द है, और कामनाओं से अनाक्रान्त श्रोत्रिय का भी। बृहस्पति के जो सौ आनन्द हैं वही प्रजापति का एक आनन्द है, और कामनाओं से अनाक्रान्त श्रोत्रिय का भी। प्रजापति के जो सौ आनन्द हैं वही ब्रह्मा का एक आनन्द है, और कामनाओं से अनाक्रान्त श्रोत्रिय का भी। (४)[1]

सि० अ०— उस वेदज्ञ का आनन्द भी जिस ने वेदाध्ययन कर्म के फल की इच्छा से नहीं किया है इसी के अनुसार होता है। यदि इन्द्र के सौ आनन्दों को एक जगह जमा करें तो वे सद्गुरु बृहस्पति के एक आनन्द के बराबर होते हैं। उस वेदज्ञ का आनन्द भी जिस ने वेदाध्ययन कर्म के फल की इच्छा से नहीं किया है इसी के अनुसार होता है। यदि बृहस्पति के सौ आनन्दों को एक जगह जमा करें, तो वे प्रजापति के एक आनन्द के बराबर होते हैं। उस वेदज्ञ का आनन्द भी जिस ने वेदाध्ययन कर्म के फल की इच्छा से नहीं किया है इसी के अनुसार होता है। यदि

---

१ तुलनीय—बृहदारण्यकोपनिषद् ४.३.३३. लोकों के क्रमिक उत्कर्षापकर्ष के लिए बृहदारण्यकोपनिषद् ३.६.१ और कौषीतकिब्राह्मणोपनिषद् १.३ भी द्रष्टव्य है।

प्रजापति के सौ आनन्दों को एक जगह जमा करें तो वे हिरण्यगर्भ के एक आनन्द के बराबर होते हैं। उस वेदज्ञ का आनन्द भी जिस ने वेदाध्ययन कर्म के फल की इच्छा से नहीं किया है इसी के अनुसार होता है। [४]

—स यश् चायं पुरुषे यश् चासावादित्ये स एकः। स य एवंविदस्माल् लोकात् प्रेत्य एतमन्नमयमात्मानमुपसंक्रामति, एतं प्राणमयमात्मानमुपसंक्रामति, एतं मनोमयमात्मानमुपसंक्रामति, एतं विज्ञानमयमात्मानमुपसंक्रामति, एतमानन्दमयमात्मानमुपसंक्रामति। तदप्येष श्लोको भवति—॥ ५ ॥

अनु०—वह यह जो इस [पञ्चकोशात्मक] पुरुष में है और जो यह आदित्य में है, एक है। वह जो इस प्रकार जानने वाला है, इस लोक से निवृत्त हो कर इस अन्नमय आत्मा को प्राप्त होता है, इस प्राणमय आत्मा को प्राप्त होता है, इस मनोमय आत्मा को प्राप्त होता है, इस विज्ञानमय आत्मा को प्राप्त होता है, इस आनन्दमय आत्मा को प्राप्त होता है। उसी के विषय में यह श्लोक हैं—(५)

सि० अ०—ब्रह्म का आनन्द जो आनन्द मय है, पुरुष का आनन्द जो हृदय में है, पुरुष का आनन्द जो सूर्य में है,—ये सभी आनन्द एक आनन्द हैं। जो कोई इस आनन्द को इस प्रकार जानता है वह संसार के बन्धन से मुक्त होकर अपने अन्नमय कोश सहित जो साक्षात् शरीर है सभी संसार को एक जानता है, अपने प्राणमय कोश सहित जो साक्षात् प्राण ही है सभी संसार को एक जानता है, अपने मनोमय कोश सहित जो साक्षात् मन ही है समस्त संसार को एक जानता है, अपने विज्ञानमय कोश सहित जो साक्षात् विज्ञान ही है और वेदानुसारी है समस्त संसार को एक जानता है, अपने आनन्दमय कोश सहित जो साक्षात् आनन्द ही है समस्त संसार को एक जानता है, और जो सत्ता आनन्दस्वरूप है उसे एकीभूत कर के निर्भय हो जाता है। इसी के अनुसार एक अन्य वेदमंत्र में भी उल्लिखित है—[५]

नवमोऽनुवाकः

'यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।
आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् न बिभेति कुतश्चन' इति[1]।

---

१ तुलनीय २.४।

एतꣳ ह वाव न तपति—किमहꣳ साधु नाकरवम् ? किमहं पापमकरवम् ? इति। स य एवं विद्वानेते आत्मानꣳ स्पृणुते, उभे ह्येवैष एते आत्मानꣳ स्पृणुते य एवं वेद। इत्युपनिषत् ॥ १ ॥

अनु०—जहाँ से, न पा कर, मन सहित वाणी लौट आती है उस ब्रह्म के आनन्द को जानने वाला किसी से भी भयभीत नहीं होता। उस [विद्वान्] को यह विचार संताप नहीं देता—मैं ने शुभ क्यों नहीं किया ? पापकर्म क्यों कर डाला ? जो ऐसा जानता है वह अपने को इन दोनों चिन्ताओं से मुक्त कर लेता है, निश्चय इन दोनों चिन्ताओं से अपने को मुक्त कर लेता है जो ऐसा जानता है। ऐसी यह उपनिषद् (रहस्यविद्या) है। (१)

सि० अ०—जो कोई ब्रह्म के विशुद्ध आनन्द को जान लेता है, जिस तक वाणी नहीं पहुँच सकती और मन नहीं पहुँच सकता, वह किसी से नहीं डरता, निर्भय हो जाता है। पुण्य कर्म की इच्छा और पाप कर्म से भय उस ज्ञानी को कष्ट नहीं देते, क्योंकि ज्ञानी और ब्रह्मवेत्ता पुण्य और पाप दोनों को आत्मा जानते हैं। जो कोई ऐसा जानता है, वह पुण्य और पाप से [मुक्त हो कर] आत्मा हो जाता है। यह उपनिषद् का वचन है, अर्थात् गोपनीय रहस्य है। [१]

॥ इति ब्रह्मानन्दवल्ली ॥

भृगुवल्ली

प्रथमोऽनुवाकः

भृगुर् वै वारुणिः वरुणं पितरमुपससार—'अधीहि भगवो ब्रह्म' इति। तस्मा एतत् प्रोवाच—'अन्नं, प्राणं, चक्षुः, श्रोत्रं, मनो, वाचम्' इति। तꣳ होवाच—'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, येन जातानि जीवन्ति, यत् प्रयन्त्यभिसंविशन्ति तद् विजिज्ञासस्व, तद् ब्रह्म' इति। स तपोऽतप्यत। स तपस् तप्त्वा–॥ १ ॥

अनु०–वरुण का पुत्र भृगु अपने पिता वरुण के पास गया [और बोला–] 'भगवन्! मुझे ब्रह्म का ज्ञान दीजिए।' उस से [वरुण ने] यह कहा–'अन्न, प्राण, नेत्र, श्रोत्र, मन, और वाक्।' फिर उस से कहा—'जिस से निश्चय ही ये सब भूत उत्पन्न होते हैं, उत्पन्न हो कर जिस से जीवित रहते हैं, विनाशोन्मुख हो कर जिस में ये लीन होते हैं, उसे विशेषरूप से जानने की इच्छा कर, वही ब्रह्म है।' तब उस (भृगु) ने तप किया और उस ने तप कर के–(१)

सि० अ०—वरुण का पुत्र पिता के पास गया और बोला—'भगवन्! मुझे ब्रह्म का बोध कराइए।' पिता ने उस से कहा कि अन्न, प्राण, चक्षु, श्रोत्र, मन, वाणी—ये छह वस्तुएँ ब्रह्म की प्राप्ति के साधन हैं। इस के पश्चात् उन्हों ने कहा कि जिस से समस्त प्राणी उत्पन्न होते हैं, जिस से जीवित रहते हैं, और जिस में लीन हो जाते हैं वही ब्रह्म है। उसी की जिज्ञासा कर और तप कर, क्योंकि ब्रह्म की प्राप्ति का साधन तप ही है। भृगु ने तप किया और इन्द्रिय-निग्रह किया। [१]

द्वितीयोऽनुवाकः

—अन्नं ब्रह्मेति व्यजानात्। अन्नाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते, अन्नेन जातानि जीवन्ति, अन्नं प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति। तद् विज्ञाय पुनरेव वरुणं पितरमुपससार—'अधीहि भगवो ब्रह्म' इति। तꣳ होवाच—'तपसा ब्रह्म विजिज्ञासस्व, तपो ब्रह्म' इति। स तपोऽतप्यत। स तपस् तप्त्वा–॥ १ ॥

ञ्जिन्द्रियस्खलनवुं वन्नितु बलालप्पोळ् ।
कन्दर्प्पशरपरवशनायतिनालें- २७
यिन्द्रसम्मितन् धरावल्लभनिन्द्रभक्तन्
स्कन्दिच्च बीजं निजं निष्फलमाक्कीटाय्वान् २८
वृक्षपत्रत्तिलाक्किक्कोण्टथ नृपवरन्
पक्षियां परुन्तिनोटीवण्णमुरचेय्तान् । २९
केळ्क्क नी बीजमयोनियिलुमतुपोलें
भोष्कल्ल वियोनियिलेङ्किलुमतिल्परं ३०
पक्षीन्द्र पशुयोनितन्निलुमरियातें
निक्षेपिप्पिक्कुं जनं नारकगामिकळ्पोल् । ३१
अेन्नेल्लां श्रुतिस्मृतिकळिलुण्टाकमूलं
इन्नतिभयं पूण्टिट्टोन्नपेक्षिक्कुन्नु ञान् । ३२
अेन्नुटे बीजमितु पळुते कळयातें
कन्नल्नेर्मिळियाळां पत्निक्कु कोटुक्क नी । ३३
अेन्नयच्चतुनेरं परुन्तुं कोत्तिक्कोण्टु
मन्नवनियोगत्तालाकाशे पोकुंनेरं ३४
मट्टोरु परुन्ततु कण्टोरु मांसबुद्ध्या
तेट्टेन्नु चेन्नु कलहिच्चप्पोळ् वीणुपोयि ३५
कालसोदरि मार्त्ताण्डात्मजा महानदी
काळिन्दितन्निलायि वीणितु विधिवशाल् । ३६

इसलिए इन्द्र के समान, भूवल्लभ, इन्द्रभक्त राजा ने मदन से परेशान होकर अपने स्कन्न (स्खलित = गिरे हुए) बीज को निष्फल होने से बचाने के लिए एक वृक्षपत्र पर रखकर एक श्येन पक्षी से इस प्रकार कहा । हे पक्षीन्द्र ! सुनो ! कहा जाता है कि जो अनजान में भी अपने बीज को अयोनि में अथवा वियोनि में या पशुयोनि में निक्षिप्त करते हैं वे नरकगामी होते हैं । यह सब श्रुति और स्मृति में (लिखा) मिलता है । इसलिए बहुत डरकर मैं तुमसे एक प्रार्थना करता हूँ । इस बीज को बिना कहीं खोये मेरी सुन्दरी पत्नी को दे दो । ३३ जब राजा ने इस प्रकार भेजा तब उसे अपने चोंच में लेकर श्येन आकाश मार्ग से जा रहा था । एक दूसरा श्येन यह देखकर बीज को मांस समझकर उससे लड़ बैठा । उस समय बीज गिर गया और विधिवश काल की बहिन, मार्ताण्ड की पुत्री महानदी कालिन्दी (यमुना) में जाकर गिरा । ब्रह्मा के शाप के

अब्जसंभवशापालद्रिकयेन्नु पेरा-
मप्सरस्त्रीयुण्टतिल् मत्स्यमाय् किटक्कुन्नु । ३७
वीण वासवबीजमप्पोळे विळुङ्ङिनाळ्
ताणुपोंमुन्पे मत्स्यवेशमामद्रिकयुम् । ३८
अवळ्क्कु गर्भमुण्टाय् तिकञ्ञु मरुवुन्ना-
ळवळुमौरु दाशन् वलयिलकप्पेट्टाळ् । ३९
कीऱिनान् वयऱबनण्डङ्ङ ळेटुप्पानाय्
वीऱोटु रण्टु मर्त्यपोतङ्ङळ् कण्टानप्पोळ् । ४०
मत्स्यत्तिन्नुदरत्तिल् मर्त्यपोतङ्ङळ् कण्टु
विस्मयं पूण्टु पलरोटुमतऱियिच्चान् । ४१
अद्भुतमितु पण्टु कण्टिट्टिल्लेन्नु चिन्ति-
च्चप्पोळे राजाविनु कौटुत्तु कैवर्त्तनुम् । ४२
धीवरनाय राजावुपरिचरन् वसु
धीवरन् कौण्टुवन्न पैतङ्ङळ् रण्टुं कण्टान् । ४३
मत्स्यगन्धिनियाय काळियें नृपवरन्
मत्स्यघातकनाग दाशनु कौटुत्तितु । ४४
मत्स्यगन्धिनितन्ने वळर्त्तु कैवर्त्तनु-
मुत्सवं पूण्टु काळियेन्नौरु पेरुमिट्टु । ४५
मत्स्यनां नरपतियायितु पुरुषनुं
मत्स्यरूपवुं कळञ्ञद्रिकतानुं पोयाळ् । ४६

कारण अद्रिका नामक अप्सरा जो मछली हो गयी थी वह उस नदी में थी। बीज के डूब जाने के पहले ही मत्स्यरूपी अद्रिका ने उसे निगल लिया। उसके गर्भ रह गया। जब वह गर्भ बढ़ ही रहा था तब वह मछली एक धीवर के जाल में फँस गयी। उसने अण्डे निकालने के लिए मछली का पेट चीर डाला और उसमें दो मानुष बच्चे देखे। ४० मत्स्य के पेट में मानुष बच्चे देखकर विस्मित होकर उसने लोगों से कहा। 'यह बड़ी अद्भुत बात है, ऐसी बात पहले कभी देखी ही न गयी' यह सोंचकर कैवर्त (धीवर) ने उन बच्चों को राजा को दे दिया। बुद्धिशाली राजा उपरिचर वसु ने धीवर के दिये दोनों बच्चों को देखा। नृपवर ने उनमें से मत्स्य-गन्धिनी (मछली के समान गंधवाली) काले रङ्ग की लड़की को मत्स्यघातक दास (धीवर) को ही दे दिया। उस कैवर्त ने उसे बड़ी खुशी से पाला-पोसा और उसका काली नाम रखा।

तरुणीमणि काळि काळिन्दीनदितन्निल्
तरणि वळिपोलें कटत्तित्तुटङ्ङिनाळ् ४७
काळिन्दी कटक्कुन्न पान्थन्मार्क्कॆल्लावक्कुं
काळियिलळिञ्ञितु मानसमतुकालम् । ४८
तरणिसुतयाय यमुनानदितङ्कल्
तरणि कटप्पानाय् चॆन्निंतु पराशरन् । ४९
तरणि देवनुदिच्चुयरुन्नतिन्मुन्पे
तरुणीमणियॆक्कण्टवनुं मोहं पूण्टान् । ५०
धरणितन्निलवळ्क्कॊत्त नारिकळिल्ल
धरणीपतियुटॆ बीजमायतिनाले । ५१
तीरत्तु चॆन्नु पुलर्काले मामुनिवरन्
दूरत्तु तुळयुमाय् निन्निंतु काळितानुम् । ५२
धरित्वमकन्नोरु मामुनिवरन् चॊन्नान्
चारत्तु वरिक नी मट्टारुमिल्लयिप्पोळ् । ५३
नेरत्तु कटक्कणं नीक्कणं तोणि मरु-
तीरत्तु चॆन्नु पुनरुक्कणमिनिक्कॆटो । ५४
मारच्चूटकतारिल् पूरिच्चमूलं निन्निल्
भारिच्चोराशवन्नु कूरॊत्तु चमञ्ञितु । ५५
चोरिच्चोर्व्वायुं निन्टॆ चीरॊत्त मुलकळुं
वेरिच्चॊल्लाळॆ ञान् विचारिच्चु कण्टनेरं ५६

उनमें जो लड़का था वही मत्स्य नामक राजा हुआ। और अद्रिका अपना मत्स्यरूप त्याग कर चली गयी। ४६ तरुणीमणि काली कालिन्दी (यमुना) नदी में नाव चलाने लगी। यमुना पार करने वाले सभी यात्री काली को देखकर मुग्ध हो गये। उन दिनों नाव में सूर्यपुत्री यमुना को पार करने के लिये मुनि पराशर वहाँ पहुँचे। सूर्योदय के पहले ही तरुणीमणि (काली) को देखकर वे मोहित हो गये। धरणीपति (राजा वसु) के बीज के पैदा होने के कारण उस (काली) के समान धरणीतल में कोई (स्त्री) न थी। मुनि सवेरे ही यमुनातट पहुँच गये और नाव लिये काली भी दूर पर दिखाई दी। ५२ महामुनि का धैर्य शिथिल हो चुका था। उन्होंने कहा—"तुम निकट चली आओ, अब यहाँ कोई नहीं है, मुझे जल्दी पार करना है और नाव के पार करने के बाद मुझे अपने नित्यकर्म करना है। भीतर कामवेदना अधिक हो

काऱोत्तकुळलाळे मारत्तीयारुमाऱे-
न्माऱत्तु चेन्ऱीटुवान् योगमुण्टिप्पोळ्त्तन्ने । ५७
नेरत्ते पऱञ्ञतुमीश्वरनुटे मतं
मारध्वंसनं ब्रह्मादिकळ्क्कुं नीक्कावल्ले । ५८
चारुत्वमुळ्ळ काळि चोल्लिनाळय्यो रण्टु-
तीरत्तुमुण्टु मुनिमारुं मामऱयोरुं । ५९
चारित्रदोषवुमुण्टाय्वरुं कन्यक ञान्
भारिच्च तपस्सुळ्ळ मामुनिश्रेष्ठन् भवान् । ६०
दूरत्तुनिल्केण्टुन्न कैवर्त्तनारि ञानो
पारत्रिकार्त्थियाय पारमार्त्थिकन् भवान् । ६१
विधियुं निषेधवुमऱियातनुदिनं
पृथुरोमाशिकळां नीचजातिकळ् ञङ्ङळ् । ६२
श्रुतिभेदार्त्थज्ञानचतुरमतिकळाय्
स्मृतिकर्त्ताक्कन्मारां तापसरल्लो निङ्ङळ् । ६३
ऎतिन्तु पऱवानुं तोन्ऱीटुवानुमिप्पोळ्
चिन्तिच्चालवकाशं दैवकल्पितमेन्ऱो । ६४
आरुमेयऱियाते दोषवुमिरुवक्कुं
वारातेयिरिक्किलो चोन्नतुकेळ्क्कामल्लो । ६५

जाने के कारण तुममें मेरी प्रबल इच्छा हो गयी है, प्रेम पूरा हो गया। तुम्हारे लाल लाल अधर, बड़े बड़े स्तन, हे मञ्चुभाषिणि! मैंने देख लिये। हे सुकेशिनि! काम की आग बुझाने के लिए मेरी छाती से लग जाने का यही सुअवसर है। ठीक कहा गया है कि ईश्वर के मत में मार (कामदेव) के आघात से ब्रह्मा आदि भी नहीं बच सकते हैं।" ५८ तब सुन्दरी काली ने कहा—"हा अन्याय! दोनों तटों पर मुनि और ब्राह्मण लोग हैं, मैं कन्या हूँ, मेरा चरित्र दूषित हो जायगा और आप बड़े भारी तापस हैं। मैं दूर खड़े होनेवाली कैवर्त की नारी हूँ और आप परलोकसुख और परमार्थ के भक्त हैं। विधि और निषेध न जाननेवाली और मत्स्य खानेवाली नीच जाति के हमलोग हैं। और आप तो विविध श्रुतियों के अर्थज्ञान से विकसित बुद्धिवाले स्मृतियों के रचयिता तापस हैं। आपको इस प्रकार की बातें सोंचने और कहने का अधिकार ही क्या है? यह क्या दैव की करतूत है? अगर किसी को पता ही न लगे और हम दोनों को कोई दोष भी न लगे तो मैं आपका कहना मानूँगी। आप

इङ्ङनेयुळ्ळ निङ्ङळ् चॊन्नतु केळाञ्ञालु-
मॆङ्ङनॆ वन्नु ञायमॆन्नरियरुतल्लो । ६६
ऎन्नतु केट्टु तॆळिञ्ञन्नेरं मुनिवर-
नॆन्नुटॆयपेक्ष नीयॊक्कवे वरुत्तियाल् । ६७
पिन्नॆयुं कन्यकयाय्तन्नॆ वन्नीटुमल्लो ।
निर्णयमत्रयल्ला नल्लते वन्नुकूटु । ६८
आस्वदिप्पतिनिन्नु योगमुण्टिप्पोळ् निन्नॆ
वात्सल्यं निनक्कॆन्निलुण्टाकवेणं बाले । ६९
आरुमे काणाय्वतिनन्नेरं मुनिवरन्
घोरमायोरु मञ्ञु निर्म्मिच्चानत्रयल्ल ७०
मत्स्यगन्धवुं पोक्किक्कस्तूरिगन्धमाक्कि
सत्संगं कॊण्टल्लयो नल्लतु वन्नु कूटु । ७१
नदि तन् मध्ये वरद्वीपवुमुण्टाय्वन्नु
मतिनेर्मुखियाळ्क्कुं विस्मयमुण्टायल्लो । ७२
ऎन्तिनु पऱयुन्नु वॆऱुते बहुविधं
बन्धमोक्षङ्ङळुटॆ भेदं कण्टॊरु मुनि ७३
नल्लॊरु तीर्त्थभूतयायॊरु यमुनयि-
लॆल्लारुं कुळिच्चूत्तु संध्ययॆ वन्दिक्कुम्पोळ् ७४
मत्स्यगन्धिनियाय कैवर्त्तकन्यकयॆ
मत्स्यकेतनशरमेट्टु पुल्किनान् मुनि । ७५

जैसे का कहना न मानकर न्याय कैसे होगा, यह भी मैं जानती हूँ न !" ६६ मुनिवर यह सुनकर प्रसन्न हुए और बोले—"अगर तुम मेरी प्रार्थना पूरी करोगी तो तुम फिर से कन्या ही हो जाओगी, संदेह नहीं। इतना ही नहीं, इससे भला ही होगा। तुमसे रमण करने का यही अवसर है इसलिए तुम मुझसे प्रेम करो। ऐसा कहकर मुनिवर ने उस समय घोर नीहार पैदा कर दिया ताकि कोई देख न पावे। इतना ही नहीं, उसके शरीर से मत्स्यगन्ध को दूर कर कस्तूरी की गन्ध पैदा कर दी। आखिर सत्संग से ही तो भला होता है। नदी के बीच में एक द्वीप भी बन गया और चन्द्रमुखी काली विस्मित हो गयी। और बहुत कुछ कहना व्यर्थ है। इतना ही है कि बन्ध और मोक्ष का भेद जाननेवाले मुनि ने पवित्र तीर्थ यमुना नदी में जब सब लोग स्नान करके संध्या कर रहे थे तब मदन के बाणों से व्याकुल होकर मत्स्यगन्धिनी कैवर्तकन्या को

दिव्यतीर्थत्तिङ्कॆन्नु दिव्यार्कनुदिक्कुन्पोळ्
दिव्यनाकिय मुनि कैवर्त्तकन्यकतन् ७६
कौङ्कळ् पुणर्न्नितु बालिकतानुमेतुं
शङ्कच्चीलतुनेरमीश्वरमतमल्लो । ७७
गर्भवुमुल्पादिच्चौरर्भकनुण्टाय्वन्नि-
तप्पौळे भविच्चितु यौवनं कुमारनुम् । ७८
यमुनाद्वीपमवनयनमाकमूलं
मुनियुं द्वैपायननॆन्नौरु पेरुमिट्टान् । ७९
बदरषण्डं पुनरयनमाककौण्टु
मतिमानाकुमवन् बादरायणनायान् । ८०
चिन्तिक्क वलियौरु सङ्कटं वरुन्नेर-
मन्तिके वरुवन् आनन्तरमिल्लयेतुम् । ८१
ऎन्नु यात्रयुं चौन्नानम्मयोटुटनवन्
पिन्नॆप्पोय् तपस्सिनु कोप्पिट्टान् वळिपोलॆ । ८२
चाल्लॆळुं पराशरन् पोयितु यथाकामम् ।
नल्ल कन्यकयायाळ् कस्तूरिगन्धितानु- ८३
मन्नेरमुण्टाय्वन्न योनितन् क्षतं पोयि
पिन्नॆक्कस्तूरिगन्धं पोयतिल्लौरुनाळुं ८४

आलिंगन किया । ७५ जब दिव्य तीर्थ से सूर्य का उदय हो रहा था तब दिव्य मुनि ने कैवर्तकन्या के स्तनों का आलिङ्गन किया । बालिका को कोई शङ्का हुई ही नहीं । उसने इसे ईश्वर की इच्छा समझा । उसके गर्भ रह गया और उसी समय उसके एक लड़का पैदा हुआ जो उसी समय जवान भी हो गया । यमुना-द्वीप उसका अयन (जन्म स्थान) होने के कारण मुनि ने उसका नाम द्वैपायन रखा । एक बदरषण्ड भी उसका अयन होने के कारण उस मेधावी (बुद्धिमान्) का नाम बादरायण भी हुआ । "जब कोई बड़ा संकट होगा तब मुझे ध्यान करना, मैं अवश्य उपस्थित हूंगा इसमें कोई सन्देह नहीं करना ।" अपनी माता से इतना कहकर वे (द्वैपायन = व्यास) बिदा हुए । फिर जाकर उन्होंने अपनी तपस्या की तैयारी की । और कीर्तिमान् पराशर भी यथाकाम (इच्छानुसार) चले गये । कस्तूरीगन्धि तो एक अच्छी कन्या बनी । ८३ उस समय जो योनि की क्षति हुई थी वह ठीक हो गयी । कस्तूरी गन्ध तो कभी नष्ट नहीं हुआ । साधुजनों के संपर्क से यद्यपि अच्छा और

नल्लवरोटुकूटिस्संसर्ग्गमुण्टाय्वन्नाल्
नल्लतुमाकात्ततुमुण टामेन्निरिक्किलुं ८५
नल्लतु पोकयिल्ल पोकुमाकात्ततेल्लाम् ।
नल्लतिल्लेतुं मट्टु सत्संगत्तिनुसमं । ८६
ओरोरो युगत्तिङ्कल् धर्म्मत्तिनिल्लातें पो-
मोरोरो पदंपिन्नें मानुषर्क्कतुपोलें ८७
आयुस्सुमुत्साहवुं बुद्धिशक्तियुमेल्लां
पोयिट्टु दशांशमे शेषिप्पू युगं प्रति । ८८
आकयाल् वेदमोक्कप्पठिच्चुकूटाय्कया-
लेकैकमाक्किप्पकुत्तीटिनान् द्वैपायनन् । ८९
व्यासनेन्नोरु नाममतिनालुण्टाय्वन्नु
वासवीतनयनु पिन्नेयुमतुकालम् । ९०
वेदार्थं प्रकाशिप्पान् चमच्चु पुराणङ्ङळ्
भूदेवोत्तमन्मारुं शिष्यराय् चमञ्ञितु । ९१
नालु शिष्यर्कळतिल् केवलं प्रधानन्मार्
नालर्क्कुमोरोवेदं वेव्वेरे पठिप्पिच्चु । ९२
सुमन्तुतानुं पिन्नें जैमिनि पैलन् शुकन्
सुमन्त्रसूत्रब्राह्मणादि वेदज्ञन्मार् पोल् । ९३
भारतमाकुमञ्चां वेदत्तेप्पठिप्पिच्चु
सारनायुळ्ळ वैशम्पायनमुनितन्नें । ९४

बुरा पैदा हो सकता है अच्छा तो नष्ट नहीं होगा, बुरा सब नष्ट हो जायगा। सत्संग के समान और कोई अच्छी बात नहीं है। हर एक युग में धर्म का एक एक पाद घटता जाता है। इसी प्रकार मनुष्यों के भी आयु, उत्साह और बुद्धिशक्ति नष्ट हो जाते हैं और उनके दसवां अंश ही प्रतियुग रह जाता है। इसलिए सारे वेदों को पढ़ना असंभव समझ कर द्वैपायन ने उनका विभाग किया। इसीलिए वसुपुत्री के पुत्र का दूसरा नाम व्यास हुआ। ९० उन्होंने वेदार्थ को प्रकाशित करने के लिए पुराणों की रचना की और अनेक ब्राह्मणोत्तम उनके शिष्य हुए। उनमें चार ही प्रमुख हैं। व्यास जी ने उनमें से एक एक को एक एक वेद पढ़ाया। सुमन्तु, जैमिनि, पैल, शुक ये ही मन्त्र, सूत्र ब्राह्मण आदि वेदों के ज्ञाता। सारवान् वैशम्पायन मुनि को उन्होंने पाँचवाँ वेद महाभारत पढ़ाया। मतिमान् सूत को तो इतिहास, पुराण आदि पढ़ाया। वेदव्यासजी

इतिहासङ्ङळ् पुराणङ्ङळॆन्निव मट्टुं
मतिमानायुळ्ळोरु सूतनॆप्पठिप्पिच्चु । ९५
विष्णुतन्नुटॆयंशमायतु वेदव्यासन्
कृष्णवर्णत्वं कॊण्टु कृष्णनॆन्नायी नामम् । ९६
धीरनां पराशर पुत्रनायतु मूलं
पारतिल् पाराशर्यनॆन्नु चॊल्लीटुन्नतुम् । ९७
कृष्णनुं द्वैपायनन् व्यासनुं पाराशर्यन्
कृष्णद्वैपायननुं वेदव्यासनुमेवं- ९८
कूटियुं चॊल्लुं नामं बादरायणनति-
गूढवेदान्तार्थज्ञन् कूटस्थन् परन्पुमान् । ९९
अम्महा मुनियुटॆ माहात्म्यमार्क्कु चॊल्लां
निर्म्मलनल्लो महाभारतकर्त्तावोर्त्ताल् । १००
मन्मनोमोहध्वान्तमुन्मूलनाशंचॆय्त-
तम्महात्मावुतन्टॆ कारुण्यमॆन्नु नूनम् । १०१
मुनिनायकनाय वैशम्पायननोटु
जनमेजयनृपन् तॊळुतु चोद्यं चॆय्तान् । १०२
ऎन्तिनु पिऱन्नितु देवकळवनियिल्
बन्धमॆन्ततिनुळ्ळ मूलवुं पऱयणम् । १०३

भगवान् विष्णु के अंश थे, काले रंग के होने के कारण उनका नाम कृष्ण हुआ। ९६ बुद्धिमान् पराशर के पुत्र होने के कारण पृथ्वी में उनका नाम पाराशर्य हुआ। कृष्ण, द्वैपायन, व्यास, पाराशर्य, कृष्णद्वैपायन, वेदव्यास ये सब उनके नाम हैं। वे ही बादरायण हैं जो गूढवेदान्त के अर्थज्ञ, कूटस्थ, पर, पुमान् थे। उन महामुनि का माहात्म्य कौन कह सकता है? वे ही तो निर्मल महाभारत के रचयिता थे। निःसन्देह उन महामुनि के कारुण्य (कृपा) ही के कारण मेरे मन के अन्धकार का उन्मूलन हुआ। राजा जनमेजय ने हाथ जोड़कर मुनियों के नायक वैशम्पायन से प्रार्थना की। देवों ने क्यों पृथ्वी में जन्म लिया? इसका मूलकारण कृपया बतला दीजिए। १०३

प'ड़ेछे सुग्रीव-राजा वानरेर पति * कि हबे उपाय, किछु कर तार गति
एवे से जानिनु आमि तोमार चरित्र * पवन-नन्दन-बिना नाहि तव मित्र
जाम्बवान बले, मोर बुद्धि नाहि घटे * हनूमाने डाकि देह आमार निकटे
अन्य अन्य अन्वेषणे, नाहि प्रयोजन * देख आगे, कोथा आछे पवन-नन्दन
चेतना थाकये यदि ताहार शरीरे * प्राणदान दिबेक सकल महावीरे
विभीषणे बले, देख मेलिया नयान *तोमा सम्भाषिते आसियाछे हनूमान१८
चरण बन्दिल जाम्बवानेर हनूमान * मृदुभाषे तखन बलिछे जाम्बवान
प'ड़ेछेन श्रीराम-लक्ष्मण कपिगण * औषध आनिले तुमि जीये सर्व्वजन
अन्तरीक्षे जाइबे पवन करि भर * अति-उच्च हिमालय-पर्व्वत-शिखर
ऋष्यमूक-पर्व्वत से हिमालय-पार * धवल-पर्व्वत श्वेत-धवल-आकार
ताहार दक्षिण-पूर्व्वे पर्व्वत-कैलास * ऋष्यमूके-महौषध आछये निर्ज्यास
चारि-वृक्ष आछये औषध चारि-जाति* अन्धकारे आलोकरे औषधेर ज्योति
'विशल्य-करणी' एक सर्व्वलोके जानि* द्वितीय-औषध-नाम 'मृत-संजीवनी'
तृतीय औषध आछे 'अस्थि-सञ्चारिणी'* चतुर्थ औषध-नाम 'सुवर्ण-करणी'
आनिते औषध यदि पार रातारातिं *चारियुगे थाकिबेक तोमार सुख्याति१९

संसार के पूज्य श्रीराम-लक्ष्मण भी गिरे हैं। इस समय उनके हित की कोई चिन्ता करो। वानरों के पति राजा सुग्रीव भी गिरे हैं। कोई उपाय निकालो—रास्ता बतलाओ। अब मैंने तुम्हारा चरित्र जान लिया कि पवन-नन्दन के बिना तुम्हारा कोई मित्र नहीं। जाम्बवान ने कहा, इस समय मेरा दिमाग काम नहीं कर रहा है, मेरे पास हनुमान को बुला दो। और कुछ तुमको खोजने-तलाशने की जरूरत नहीं। पहले देखो कि पवननन्दन कहाँ है। उसके शरीर में यदि चेतना है तो सारे महावीरों को वह प्राणदान कर सकेगा। विभीषण ने कहा, आँखें खोलकर देखो, तुमसे संभाषण करने के लिए हनुमान प्रस्तुत हैं॥ १८॥

हनुमान ने जाम्बवान के चरणों की वन्दना की। तब जाम्बवान ने धीमे स्वर में कहा, श्रीराम-लक्ष्मण और सारे कपि गिरे हैं। तुम दवा ले आओ तो सारे लोग जी जाय। पवन पर चढ़कर अन्तरिक्ष में जाओगे। अति-उच्च हिमालय पर्वत मिलेगा। उसको लाँघ जाओगे तो ऋष्यमूक पर्वत मिलेगा। वह धवल वर्ण का पर्वत है। उसके दक्षिण-पूर्व में कैलास-पर्वत है। ऋष्यमूक पर्वत पर निश्चित रूप से महौषध है। चार प्रकार के वृक्ष हैं जिनमें चार प्रकार के औषध हैं। औषध की ज्योति अँधेरे में उजाला करती है। एक तो 'विशल्यकरणी' है जिसको सारा संसार जानता है। दूसरी औषध का नाम है 'मृत-संजीवनी'। तीसरी औषध है 'अस्थि-संचारिणी' तो चौथी का नाम है 'सुवर्णकरणी'। अगर रातोंरात ये औषधियाँ ले आओ तो चारों युग में तुम्हारा सुयश सदा फैला रहेगा॥ १९॥

नाहिक एसब कथा बाल्मीकी-रचने * विस्तारिया लिखित 'अद्भुत-रामायणे'
एक रामायण शत-सहस्र प्रकार * के जाने प्रभुर लीला, कत अवतार
कृत्तिवास-पण्डितेर जन्म शुभक्षणे * लङ्का-काण्ड गाहिलेन गीत-रामायणे२०

औषध आनिते हनूमानेर ऋष्यमूक-पर्व्वते यात्रा

जाम्बवान हनूमाने दिलेन विदाय * औषध आनिते वीर हनूमान जाय
उभलेज करिया सारिला दुइ कान * एकलाफे आकाशे उठिल हनूमान
महाशब्दे चलिल पवने करि भार * लेजेर सापटे उड़े पर्व्वत-पाथर
दश-योजन हैल वीर आड़े परिसर * दीर्घेते योजन त्रिश, चमके अमर
लाङ्गुल बाड़ाये कैल योजन पञ्चाश * सारिया तुलिल लेज, ठेकिल आकाश
सागर हइया निमिषेते गेल पार * शरा-गोटा ज्ञान करे सकल संसार
नद-नदी एड़ाइल पर्व्वत-कान्तार * कत वन-उपवन ह'ये गेल पार
नाना-तीर्थ-क्षेत्र, कत मुनिर वसति * वारो-वत्सरेर पथ जाय एकराति
हिमालय-पर्व्वत छाड़ाये शीघ्रगति * कैलास-पर्व्वत देखे धवल-आकृति

वाल्मीकी की रचना में ये सब बातें नहीं हैं। ये सब 'अद्भुत रामायण' में विस्तार से लिखी हुई हैं। एक ही रामायण है लेकिन वह शत-सहस्र प्रकार की है। प्रभु की लीला कौन जान सकता है। उनके कितने ही अवतार हैं। कृत्तिवास पंडित का जन्म अवश्य ही शुभ-घड़ी में हुआ था। उन्होंने रामायण का गीत लंका-काँड में गाया ॥ २० ॥

औषधि लाने के लिए हनुमान की ऋष्यमूकपर्वत-यात्रा

जाम्बवान ने हनुमान को बिदा दी। वीर हनुमान औषधि लाने के लिए चल पड़ा। पूँछ को ऊपर की ओर कर और दोनों कानों को खड़े कर एक छलाँग में हनुमान आकाश में उड़ गया। भीषण शब्द करता हुआ वह पवन के सहारे चल पड़ा। उसकी पूँछ की चपेट में पड़कर पहाड़-पत्थर उड़ने लगे। वीर ने चौड़ाई में अपने शरीर को दस-योजन का बनाया और लम्बाई में तीस योजन का। पूँछ बढ़कर पचास योजन लम्बी बना डाली जिसके उठाते ही आकाश छू गया। पल भर में वह समुद्र लाँघ गया। सारे संसार को उसने सकोरा-मात्र समझा। कितनी ही नद-नदियाँ और पर्वत, जंगल वह पार कर गया। कितने ही वन-उपवन, विभिन्न तीर्थ-क्षेत्र, ऋषियों के निवास स्थान वह पार कर गया। एक रात में वह बारह वर्षों का पथ पार कर गया। तेज गति से वह हिमालय-पर्वत भी लाँघ गया। कैलास पर्वत में उसने धवलाकार पहाड़ देखा। इस प्रकार हनुमान ऋष्यमूक पर्वत पर चढ़ा। औषधि की गन्ध पाकर वहीं ठहर गया। औषधि की गन्ध से

ऋष्यमूक-पर्व्वत उठिल हनूमान ❋ औषधेर गन्ध पेये रहे सेइस्थान
औषधेर गन्धेते सुगन्ध वात बहे ❋ सन्धान पाइया वीर सेइखाने रहे
शिखरे-शिखरे फिरे पवन-नन्दन ❋ चारिजाति औषध ना पाय दरशन
देवमूर्ति औषध, किदिब तार लेखा ❋ कारे हय अदर्शन, कारे देय देखा २१
औषध ना पाय वीर, रजनी विस्तार ❋ मने-मने चिन्ता तबे करे वीरवर
मने-मने हनू तबे करे अनुमान ❋ वाण खेये बुद्धि गेछे बुड़ा जाम्बवान
तल्लासिनु पर्व्वत करिया पाति पाति❋ चारिजाति औषध, ना पाइ एक जाति
अकारणे आइलाम भल्लूकेर बोले ❋ एत दुःख विधाता कि लिखिल कपाले
बुद्धिमान हनूमान विचारे पण्डित ❋ सात-पाँच भावि मने स्थिर करे चित
ब्रह्मार नन्दन वीर, आछे बहुज्ञान ❋ सर्व्वलोके बले, महामन्त्री जाम्बवान
तार वाक्य मिथ्या ना हइबे कोनकाले❋ पर्व्वत चातुरी क'रे औषध लुकाले
साधे कि तोमार पाखा काटे पुरन्दर❋ आमारे भाविले तुमि वनेर वानर
परिहास कर तुमि विपत्तिर काले ❋ उपाड़िया फेले दिब सागरेर जले
सुग्रीवेर चर आमि, श्रीरामेर दास ❋ आमार संगेते तुमि कर परिहास
कृत्तिवास-पण्डितेर मधुर भारती ❋ याँर कण्ठे विराजेन देवी सरस्वती २२

सुगन्धित पवन चल रहा था—टोह पाकर वह वीर वहीं ठहर गया। पवन-नन्दन शिखर-शिखर पर भटकता रहा लेकिन उसको चार प्रकार की औषधियों का दर्शन नहीं मिला। औषधि भी देवमूर्त्ति के समान है—किसी को वह दर्शन देती है और किसी को नहीं देती ॥ २१ ॥

रात बहुत बीत गई लेकिन वीर को औषधि नहीं मिली। तब वीरवर ने मन ही मन चिन्तन किया—उसने अनुमान किया कि बाण खाकर वृद्ध जाम्बवान की बुद्धि कुंठित हो गई है। सारा पर्वत छान डाला—चार जाति की औषधि है और एक भी नहीं मिल रही है। भालू के कहने से नाहक मैं चला आया, विधाता ने मेरे भाग्य में इतना क्लेश लिख रखा था। बुद्धिमान हनुमान पंडित-प्रवर भी था—आगा-पीछा सोचकर उसने अपने चित्त को शान्त किया। ब्रह्मा का सुवन वीर जाम्बवान श्रेष्ठ ज्ञान का अधिकारी है, सभी लोग उसको महामंत्री जाम्बबान कहते हैं। उसके वाक्य कभी झूठे नहीं हो सकते। पर्वत ने चालाकी कर औषधि छिपा ली है। यों ही इन्द्र ने तुम लोगों का पंख नहीं काटा था। मुझको तुमने वन का वानर समझ रखा है। विपत्ति के समय तुम मुझसे परिहास कर रहे हो। मैं तुम्हें उखाड़ कर समुद्र के जल में फेंक दूँगा। मैं सुग्रीव का दूत हूँ और श्रीराम का दास हूँ, तुम मेरे साथ परिहास कर रहे हो। जिनके कँठ में सरस्वती विराजमान हैं उन कृत्तिवास पंडित की यह मधुर रचना है ॥ २२ ॥

हनूमान-कर्त्तृक पर्व्वतेर स्तव

हनूमान जोड़करे, पर्व्वतेरे स्तव करे, बले, शुन शुन गिरिवर।
पाब ब'ले महौषधि, लंघिया पर्व्वत-नदी, दुःख पेये एसेछि विस्तर॥
मेरुगण यत आछे, तुल्य नहे तव काछे, तुमि मेरु सुमेरु-समान।
श्रीराम-लक्ष्मण रणे, प'ड़े छेन दुइजने, कृपाय औषध कर दान॥
सुग्रीव-अंगद-नल, आर यत महाबल, प'ड़े आछे मृतदेह-प्राय।
तुमि ह'ये दयावान, महौषधि कर दान, बाँचे सबे तोमार कृपाय॥
शुन हित-उपदेश, रजनी हइल शेष, येते हबे सागरेर पार।
शुन मेरु गुणनिधि, देखाइया महौषधि, करह रामेर उपकार॥
एरूप अञ्जना-सुत, स्तव करे शत-शत, पर्व्वत ना माने उपरोध।
राम-पद-अभिलाषे, विरचिल कृत्तिवासे, हनूमाने उपजिल क्रोध २३॥

हनूमान-कर्त्तृक औषध-आनयन एवं राम, लक्ष्मण ओ वानर गणेर चैतन्य-लाभ

एत परिश्रमे हनू औषध ना पाय * कोपे कड़मड़ दन्त कटमट चाय
हनूमान बले, आमि श्रीरामेर दास * ना दिल औषध बेटा, करे उपहास
क्षुद्र तुइ प्रस्तर, पर्व्वत केटा बले * तोर मत कत-शत डुबायेछि जले

हनुमान द्वारा पर्वत की स्तुति

फिर हनुमान हाथ जोड़कर पर्वत का स्तव करने लग गये। बोले, हे गिरिवर, कृपया सुनो। महौषधि प्राप्त करने के लिए कितने ही पर्वत और नदियों को लाँघ कर अशेष क्लेश झेलते हुए यहाँ आया हूँ। जितने भी मेरु हैं वे तुम्हारी तुलना में कुछ भी नहीं—तुम तो सुमेरु के समान हो। युद्धक्षेत्र में श्रीराम और लक्ष्मण गिरे हैं, कृपया औषधि प्रदान करो। सुग्रीव, अंगद, नल एवं अन्य-अन्य महाबली भी मृत के समान पड़े हैं। तुम दयालु बनकर महौषधि का दान करो तो तुम्हारी कृपा से सबके प्राण बचें। मेरा कहना मानो, रात समाप्त हो रही है और मुझको समुद्र लाँघ कर जाना है। हे गुणनिधि मेरु, सुनो, महौषधि दिखाकर राम का उपकार करो। इस प्रकार अंजना-सुत हनुमान ने तरह-तरह से स्तव किया, किन्तु पर्वत ने उनका अनुरोध न माना। इस पर हनुमान को क्रोध आ गया। श्रीरामचन्द्र के चरणों के अभिलाषी कृत्तिवास ने यह रचना की॥ २३॥

हनुमान द्वारा औषधि का लाना एवं राम, लक्ष्मण और कपियों का चैतन्य-लाभ

इतने परिश्रम के उपरान्त भी जब हनुमान को औषधि नहीं मिली तो क्रोध से उसके दाँत किटकिटाने लगे और वह आँखें लाल-लाल कर देखने लगा। हनुमान ने कहा, मैं राम का दास हूँ, तूने औषधि नहीं दी और उलटे मेरा उपहास करता है। तुझको पर्वत कौन कहता है, तू तो छोटा सा पत्थर

एत बलि धरि टाने पवन-नन्दन * चड़-चड़ शब्दे छिड़े लतार बन्धन
बड़-बड़ वृक्ष सब उपाड़िया पड़े * पाले-पाले वन-जन्तु धाय उभरड़े
कत-शत मुनि-ऋषिर हैल तपोभंग * सिंहेर उपरे चापि पड़िछे मातंग
शार्दूल-उपरे पड़े कुक्कुर शृगाल * नेउल मूषिक साप एकत्र मिशाल
भूत प्रेत पिशाच पलाय ल'ये प्राण * आतङ्कते यक्ष बले, रक्ष भगवान
प्रलय पाड़िल, पलावार नाहि पथ * मूर्त्तिमान ह'ये देखा दिलेन पर्व्वत २४
ऋषिरूपे आसि हनूमानेर साक्षाते * जिज्ञासिल हनूमाने मधुर वाक्येते
के तुमि, कोथाय थाक, वीर-चूड़ामणि * पर्व्वत धरिया केन कर टानाटानि
हनूमान बले, आमि पवनेर सुत * सुग्रीवेर अनुचर, श्रीरामेर दूत
ह'रेछे रामेर सीता दुष्ट दशानन * रघुनाथ करे छेन सागर-बन्धन
लङ्काते ह'तेछे युद्ध श्रीराम-रावणे * प'ड़छेन रघुनाथ इन्द्रजित्-वाणे
रघुनाथ मूर्च्छागत, ठाकुर लक्ष्मण * सुग्रीव-अंगद-आदि यत कपिगण
अचैतन्य ह'ये सबे आछे लङ्कापुरे * जाम्बवान पाठाइल औषधेर तरे
महौषधि आछे एइ पर्व्वत-उपरे * ना दिल औषध मेरु कोन अहंकारे
प्राणपणे करिब रामेर उपकार * पर्व्वत लइया जाब सागरेर पार २५

है, तुझ जैसे सैकड़ों को मैंने पानी में डुबो दिया है। इतना कहकर पवन-नन्दन पर्वत को पकड़ कर खींचने लगा—तो लताओं के सारे बन्धन चट-चट और बड़े-बड़े पेड़ भी उखड़-उखड़ कर गिरने लगे। झुंड के झुंड जंगली जानवर भागने लग गये। कितने ही ऋषि-मुनियों की तपस्या-भंग हो गई। कहीं तो सिंह पर हाथी जा गिरता तो कहीं शार्दूल पर कुत्ते सियार जा गिरते। नेवला, चूहा और साँप एक ही जगह एकत्र हो गये। भूत-प्रेत-पिशाच अपने-अपने प्राण लेकर भाग खड़े हुए। आतंक से यक्ष कहने लगे, हे ईश्वर रक्षा करो, प्रलय आ गया, भागने का रास्ता नहीं। इतने में ऋषि की मूर्त्ति धरकर पर्वत ने दर्शन दिया ॥ २४ ॥

ऋषि का रूप लेकर वह हनुमान के सम्मुख आया और मधुर वचन से हनुमान से पूछा, हे वीर चूड़ामणि, तुम कौन हो, कहाँ रहते हो, पर्वत पकड़ कर क्यों खींचातानी कर रहे हो। हनुमान ने कहा, मैं पवनसुत हूँ, सुग्रीव का अनुचर और श्रीराम का दूत हूँ। श्रीराम की सीता का दुष्ट दशानन ने हरण किया है। रघुनाथ ने सागर बाँध डाला है और लंका में राम और रावण में युद्ध हो रहा है। इन्द्रजीत के बाण से घायल हो रघुनाथ गिरे हैं। रघुनाथ मूर्च्छित हैं, लक्ष्मण तथा सुग्रीव, अंगद आदि सारे कपि लंका में अचेतन पड़े हैं। जाम्बवान ने मुझको औषधि के लिए भेजा है। वह महौषधि इसी पर्वत पर है। इस मेरु ने जाने किस अहंकार से औषधि नहीं

ऋषि बले, शान्त हओ पवन-नन्दन * आमि देखाइया दिब औषधेर वन
एत बलि संगे करि ल'ये सेइखाने * देखाइया दिल गिया औषध जेखाने
चारिजात औषध लइया हनूमान * उभलेज करिया सारिल दुइ कान
लाफ दिया वीर गिया उठिल आकाशे * लङ्कापुरे उपनीत चक्षुर निमिषे
विशल्य-करणी आर सुवर्ण-करणी * अस्थि-सञ्चारिणी आर मृत-सञ्जीवनी
एइ चारि औषध लइया हनूमान * चारि द्वारे भ्रमण करये स्थाने-स्थान
चारि-औषधेर घ्राण यतदूर जाय * वानर-कटक सब उठिया दाण्डाय
निद्राभंगे उठे येन मेलिया नयन * सेइरूपे उठिलेन श्रीराम-लक्ष्मण
सुग्रीव उठिल वानरेर अधिपति * द्विविद कुमुद उठे सैन्येर संहति
नल नील उठिल अंगद युवराज * गय ओ गवाक्ष उठे कटक-समाज
जार नाके लागे अस्थि-सञ्चारिणी गुँड़ा * कटकेर शत-पा आसिया लागे जोड़ा
अस्थि-सञ्चारिणी-गन्ध प्रवेशये नाके * चारि द्वारे वानर उठिल झाँके-झाँके
सुवर्ण-करणी-गन्ध सुकोमल अति * सुन्दर शरीर हैल पूर्व्वेर आकृति २६
सकल वानर उठे दिया अंग-झाड़ा * हनूमाने कहे सबे हात करि जोड़ा

दी। मैं प्राणों की बाजी लगाकर भी राम का उपकार करूँगा—मैं इस पर्वत को समुद्र पार ले जाऊँगा ॥ २५ ॥

ऋषि ने कहा, पवन-नन्दन, शान्त हो जाओ। मैं तुमको औषधि वाला वन दिखा दूँगा। इतना कहकर वह उसको साथ ले गया और उस स्थान पर ले गया जहाँ औषधि के पौधे थे। चारों प्रकार की औषधि लेकर हनुमान ने पूँछ ऊपर की ओर की और कान समेट लिये और कूद कर आकाश में उड़ गये। आँखों के पलक गिरते-गिरते ही वह लंकापुरी जा पहुँचे। विशल्य-करणी, सुवर्ण-करणी, अस्थि-संचारिणी और मृत-संजीवनी ये चारों औषधं लेकर हनुमान चारों द्वार पर जगह-जगह घूमने लगे। चारों औषधों की गन्ध जहाँ-जहाँ तक पहुँचती उतनी दूर तक सारा वानर कटक उठ उठ कर खड़ा हो जाता। जिस प्रकार नींद टूटने पर कोई आँखें खोलकर बठ जाता है उसी प्रकार श्रीराम और लक्ष्मण उठ कर बैठ गये। वानरों के अधिपति सुग्रीव उठे। द्विविद, कुमुद और सेना का सारा समूह उठकर बैठ गया। नल, नील, युवराज अंगद, गय, गवाक्ष आदि वानर-कटक के सदस्य उठ कर खड़े हो गये। जिसकी नाक में अस्थि-संचारिणी का चूर्ण जा पहुँचता उसी के टूटे हाथ-पैर आदि अंग जुड़ जाते। चारों द्वारों पर झुंड के झुंड वानर उठ कर खड़े हो गये। सुवर्ण-करणी की गन्ध बड़ी कोमल है, उससे सारा शरीर सुन्दर रूप ले लेता था और अपने स्वरूप पर लौट आता था ॥ २६ ॥

सभी वानर बदन झाड़ कर उठ खड़े हुए। सभी ने हाथ जोड़कर हनुमान से कहा, तुम्हारे समान वीर तीनों लोकों में नहीं है। तुम्हारे ही

तोमार समान वीर त्रिभुवने नाइ ❋ तोमार प्रसादे सब मैले प्राण पाइ
राम बले, हनूमान, ये गुण तोमार ❋ शतयुगे शुधिते नारिब तव धार
कि दिब प्रसाद बल, आछे किवा धन❋ हनूमाने कोल दिला श्रीराम-लक्ष्मण
राम बले, हनूमान, तुमि भक्तवीर ❋ तोमाते आमाते हय अभेद-शरीर
सर्व्वजन करे हनूमानेर बाखान ❋ हनूमान हैते सबे पाइल पराण
मिथ्या हैल, यत युद्ध कैल इन्द्रजित् ❋ कृत्तिवास गाहिलेक लङ्काकाण्ड-गीत२७

रावण-कर्त्तृक लकांर चारि-द्वार-अवरोध

'राम-जय' शब्दे कपि छाडे सिंहनाद❋ लंकाते रावण-राजा गणिल प्रमाद
रावण बले, दैवगति के पारे रोधिते ❋ लङ्कापुरी विनाशिबे नर-वानरेते
श्रीराम-लक्ष्मण मैल यत सेनापति ❋ एखनि उठिल बेंचे ना पोहाते राति
मोर सेना मरिले ना बाँचे एकजन ❋ बारे-बारे मरे-बाँचे श्रीराम-लक्ष्मण
हेन वीर नाहि मोर लङ्कार भितर ❋ मारे राम-लक्ष्मण ओ सुग्रीव-वानर
मरिया ना मरे राम, ए केमन वैरी ❋ वीर शून्या हइल कनक-लङ्कापुरी
हेन छार युद्धे आर नाहि प्रयोजन ❋ थाकिब कपाट दिया, प्राण बड़ धन

कारण हम सभी मरे हुओं को प्राण मिले। श्रीराम ने कहा, हनुमान! तुममें अपार गुण हैं। मैं तुम्हारा ऋण कभी न चुका सकूँगा। बताओ तुमको कौन सा प्रसाद दूँ, मेरे पास भला धन भी कौन सा है। इतना कहकर श्रीराम-लक्ष्मण ने हनुमान को अंक में बाँध लिया। राम ने कहा, हनुमान तुम भक्तवीर हो, तुम्हारा और मेरा शरीर अभिन्न है। सभी लोग हनुमान की प्रशंसा करने लगे कि हनुमान के कारण ही सबको प्राण मिले। इन्द्रजीत ने जितना भी युद्ध किया था सब व्यर्थ हो गया। कृत्तिवास ने लंकाकांड का गीत गाया ॥ २७ ॥

रावण द्वारा लंका के चारों द्वारों का अवरोध

तब कपियों ने 'राम की जय हो' यह ध्वनि कर सिंहनाद किया। उसे सुनकर लंका में राजा रावण ने अपनी विपत्ति जान ली। रावण ने कहा, दैव की गति को कौन रोक सकता है—इस लंकापुरी को नर और वानर मिलकर विनष्ट करेंगे। सारे सेनापतिओं के साथ श्री-राम और लक्ष्मण मर गये और इधर सबेरा होते न होते ही वे सब जी उठे। मेरी सेना में एक भी सैनिक मरने पर जीता नहीं है और यह राम और लक्ष्मण बार-बार मरते और जीते रहते हैं। मेरी लंकानगरी में ऐसा कोई भी वीर नहीं है जो राम-लक्ष्मण और वानर सुग्रीव का वध कर सके। यह राम मर कर भी नहीं मरता—यह कैसा वैरी है। कनकमयी लंकापुरी वीरों से शून्य हो गई।

प्रवेशिते लङ्कापुरे नाहि दिब बाट * लङ्कापुरे चारि द्वारे देह त कपाट २८
राजार आदेश पेये यत निशाचरे * लंकापुरे कपाट दिलेक चारि द्वारे
सोनार कपाट, छिल भयंकर अति * नाहि ताहे चन्द्र-सूर्य पवनेर गति २९
पाँचदिन द्वारेर कपाट नाहि खुले * हासिया सुग्रीव-राजा सबाकारे बले
दुयारे कपाट दिया रहिल रावण * मने कि भेवेछे बेटा, जिनियाछे रण
एतेक भाविया मने वानरेर पति * पश्चिम-दुयारे गेल मन्द-मन्द गति
बसे छेन रघुनाथ समुद्रेर तटे * चौदिके वानरगण, लक्ष्मण निकटे
हनूमान जाम्बवान आर विभीषण * कृताञ्जलि हइया आछेन तिनजन
उपनीत हैल आसि सुग्रीव-राजन * सम्भ्रमे बन्दिला आसि रामेर चरण
लक्ष्मणेर पादपद्म बन्दिलेन शिरे * जिज्ञासेन श्रीराम सुग्रीव महावीरे
कि मन्त्रणा करिछे लङ्कार अधिकारी * चारि द्वारे कपाट रेखेछे बन्ध करि
पाँचदिन हैल, केन नाहि देय रण * कह ना सुग्रीब मिता, इहार कारण
सुग्रीव बलेन, प्रभु, ना जानि संवाद * क'रेछे कपाट बन्द गणिया प्रमाद २३०

ऐसे अधम युद्ध की अब और आवश्यकता नहीं। मैं किवाड़ बन्द कर पड़ा रहूँगा, प्राण बहुत बड़ी संपत्ति है। मैं उन्हें लंका में प्रवेश करने का रास्ता नहीं दूँगा। जाओ लंका के चारों द्वारों के किवाड़ बन्द कर दो ॥ २८ ॥

इस प्रकार राजा का आदेश पाकर सारे निशाचरों ने लंका के चारों द्वारों के किवाड़ बन्द कर दिये। सोने के बने हुए इन किवाड़ों में बड़ी भयंकर कुण्डी लगी थी, जिनमें से चन्द्र-सूर्य की किरणें और पवन भी नहीं जा सकते थे ॥ २९ ॥

जब पाँचदिन तक इन द्वारों के किवाड़ नहीं खुले तो राजा सुग्रीव ने हँसकर सबसे कहा, रावण किवाड़ बन्द करके बैठा है। क्या उसने सोच रखा है कि उसने युद्ध जीत लिया है। वानर-पति इतना सोचकर पश्चिमद्वार की ओर मन्दगति से चल पड़े। समुद्र तट पर रघुनाथ बैठे थे, उनके पास ही लक्ष्मण और उनके चारों ओर सारे वानर बैठे थे। हनुमान, जाम्बवान और विभीषण, तीनों हाथ जोड़े प्रस्तुत थे। तब राजा सुग्रीव वहाँ आ पहुँचे और उन्होंने आदर के साथ श्रीराम के चरणों की वन्दना की। लक्ष्मण के चरण-कमलों को भी प्रणाम किया। तब श्रीराम ने महावीर सुग्रीव से पूछा, लंका के अधिकारी क्या मंत्रणा कर रहे हैं। उन्होंने चारों द्वारों के किवाड़ बन्द कर रखे हैं। आज पाँच दिन हो गये, वे लड़ने नहीं आ रहे हैं। मित्र सुग्रीव इसका कारण बताओ। सुग्रीव ने कहा, प्रभु, कुछ पता तो चलता नहीं, लेकिन लगता है कि विपत्ति समझ कर ही उन्होंने किवाड़ बन्द कर लिये हैं ॥ २३० ॥

उसी प्रकार मानसिक उत्साह और तत्परता के अनुसार मानव की महत्ता होती है ॥ ५ ॥

उळ्ळुव तॆल्लाम् उयर्वुळ्ळल् मट्रदु
तळ्ळिनुम् तळ्ळामै नीर्त्तु ॥ ६ ॥

सदा समुन्नत हों विचार, उद्देश्य सामने सदा महान् ।
विफल दैव-वश[1], तदपि सर्वदा खुला सफलता का सोपान[2] ॥ ६ ॥

शासक अपने विचारों को उदात्त रखे । [आदर्श उच्च हों ।] भले ही उन विचारों से विफलता ही हाथ लगे, फिर भी उसे विफलता नहीं कहा जा सकता । विचार उदात्त ही होंगे ॥ ६ ॥

शिदैविडत्तु ऒल्हार उरवोर् पुदैयम्बिर्
पट्टुप्पा डूनुरुम् कळिरु ॥ ७ ॥

तीरों की बौछार, न विचलित होते जैसे धीर मतंग[3] ।
धीर-संयमी जन विपन्न[4], फिर भी होते हैं नहीं अपंग[5] ॥ ७ ॥

भले ही हाथी पर क्यों न तीर बरसाये जाएँ । घायल होने पर भी वह अपनी गंभीरता को बनाये रखेगा । उसी प्रकार उत्साही व्यक्ति अपनी विफलताओं से चंचल नहीं होंगे, प्रत्युत अपने उत्साह को और सुरक्षित रखेंगे । [पुदै = तीरों का समूह; कळिरु = हाथी] ॥ ७ ॥

उळ्ळम् इलादवर् ऎय्दार् उलहत्तु
वळ्ळिय मॆन्नुम् शॆरुक्कु ॥ ८ ॥

विना आत्मबल के पुरुषों को व्यर्थ प्रतिष्ठा का अभिमान ।
सुलभ न उनको कभी जगत् में होना श्रेष्ठ और श्रीमान् ॥ ८ ॥

जो शासक उदात्त विचारों से विहीन हो वह इस बात का अभिमान नहीं कर सकता कि इस विश्व के लोगों में वह अधिक सक्षम है ॥ ८ ॥

परियदु कूर्ङ्गोट्ट दायिनुम् यानै
वॆरूउम् पुलिदाक् कुरिन् ॥ ९ ॥

वृहद्दन्त गज[6] अति विशाल भी निरख सिंह को होता त्रस्त ।
एक मनोबल के सम्मुख, पशुबल, शस्त्रास्त्र—सकल हैं ध्वस्त ॥ ९ ॥

समस्त पशुओं में हाथी का आकार बड़ा है । उसके दाँत भी बहुत नुकीले हैं । फिर भी व्याघ्र के सामने वह काँप उठता है । [इसी

---

१ भाग्य वश २ सीढ़ी ३ हाथी ४ विपत्तिग्रस्त ५ लाचार ६ बड़े दाँतों वाला हाथी ।

प्रकार शारीरिक शक्ति और शस्त्रास्त्रों से युक्त होने पर भी मानसिक बलरहित शासक उस शासक से भयभीत रहता है जिसमें मानसिक बल है।] ॥ ९ ॥

उरम् ऒरुवऱ् कुळ्ळ वॆऱुक्कै अह्दिल्लार्
मरम् मक्क ळादले वेऱु ॥ १० ॥

नहीं मनोबल जिस मानव में आतम-बल का जहाँ अभाव।
मानव-तन में चलता-फिरता वृक्ष लिये जड़ता का भाव ॥ १० ॥

किसी मानव की शक्ति उसका मानसिक बल ही है। उसके अभाव में मानव लकड़ी के बराबर है, हालाँकि वह मनुष्य का शरीर धारण किये हुए है ॥ १० ॥

अदिहारम् (अध्याय) ६१

मडियिन्मै (निरालस्य)

कुडिऎन्ऩुम् कुऩ्ऱा विळक्कम् मडिऎन्ऩुम्
माशूर मायन्दु कॆडुम् ॥ १ ॥

अमर दीप भी बुझ जाता है, रख-रखाव यदि हुआ न यत्न।
अन्धकार-आलस में बुझते दीपक-रूप वंश के रत्न ॥ १ ॥

आलस्य अन्धकार है। उस अन्धकार के छा जाने से वंश रूपी अमर दीप बुझ जाएगा। [शासक को आलस्य-मुक्त रहना चाहिए। तभी उसके वंश का विकास हो सकता है।] ॥ १ ॥

मडियै मडिया वोळुहल् कुडियैक्
कुडियाह वेण्डु पवर् ॥ २ ॥

जिन्हें रुचिर[1] है सुयश-प्रतिष्ठा से भरपूर वंश-परिवार,
निरालस्य, उत्साह, परिश्रम-वृत्ति सदा उनको दरकार[2] ॥ २ ॥

जो व्यक्ति अपने वंश को अधिक प्रतिष्ठित करना चाहे उसे आलस्य का परित्याग कर प्रयासपूर्वक कर्म करना चाहिए ॥ २ ॥

मडिमडिक् कॊण्डॊळुहुम् पेदै पिऱन्द
कुडिमडियुम् तन्निऩुम् मुन्दु ॥ ३ ॥

---

१ प्रिय २ आवश्यक।

अज्ञानी आलस-प्रमाद में करता अपना स्वयं विनाश।
उससे प्रथम, पराभव उसके कुल का दिन-दिन होता ह्रास ॥ ३ ॥

विनाशकारी आलस्य के साथ जीवन चलानेवाले व्यक्ति को जिस वंश ने जन्म दिया वह वंश उस व्यक्ति के पहले ही नष्ट हो जाएगा ॥ ३ ॥

कुडिमडिन्दु कुट्ऱम् पॆरुहुम् मडिमडिन्दु
माण्ड उऴट्ऱि लवर्क्कु ॥ ४ ॥

जो प्रमाद-आलस में डूबे, करते उचित न अध्यवसाय।
वंश विनसता, नित्य उपजते नाना-भाँति दोष-समुदाय ॥ ४ ॥

जो व्यक्ति आलसी होते हैं और इस कारण उत्तम कार्य नहीं करते, उनका वंश नष्ट होगा और वे कई प्रकार के दोषों के भागी भी होंगे ॥ ४ ॥

नॆडुनीर् मऱवि मडिदुयिल् नाऩ्गुम्
कॆडुनीरार् कामक् कलऩ् ॥ ५ ॥

दीर्घसूत्रतर्घ[1], विस्मृति[2], निद्रा, आलस—ये नौकाएँ चार,
मौज प्रमादी को देतीं, पहुँचातीं जहाँ निपट संहार ॥ ५ ॥

आलस्य, कार्य में विलम्ब करने की प्रवृत्ति, विस्मृति और निद्रा, ये चारों किसी अभागे की वे नौकाएँ हैं जो उसे विनाश के पथ पर ले जाती हैं। [कलऩ् = नौका] ॥ ५ ॥

पडियुडैयार् पट्ऱमैन्दक् कण्णुम् मडियुडैयार्
माण्बयऩ् ऍय्दल् अरिदु ॥ ६ ॥

अखिल विश्व की सकल सम्पदा पर भी हुआ अगर अधिकार;
एक मात्र आलस्य-हेतु-वश, सारी संपति है बेकार ॥ ६ ॥

चाहे कोई व्यक्ति सारी धरती की संपत्ति का अधिकारी क्यों न हो; फिर भी यदि वह व्यक्ति आलसी हो तो उसे उस संपत्ति से कोई लाभ नहीं होगा ॥ ६ ॥

इडिबुरिन्दु ऍळ्ळुम्शॊल् केट्पर् मडिबुरिन्दु
माण्ड उऴट्ऱि लवर् ॥ ७ ॥

वशीभूत आलस के होकर करते नहीं उचित पुरुषार्थ,
अधःपतित हो निन्दा, झिड़की, घृणा चतुर्दिक् मिलती व्यर्थ ॥ ७ ॥

जो व्यक्ति आलसी होकर उत्तम कर्म नहीं करते, वे नीच कर्म कर दूसरों की निन्दा के पात्र होते हैं ॥ ७ ॥

---

१ कार्य में देर करने की आदत २ मादन रहना।

मडिमै कुडिमैक्कण् तङ्गिन्दन् ऑन्नार्क्कु
अडिमै पुहत्ति विडुम् ॥ ८ ॥

यदि आलस्य-प्रमादग्रस्त हो गया भव्य जन या परिवार।
निज रिपुओं का दास्य विवश स्वीकार करेगा वह लाचार ॥ ८ ॥

यदि किसी शासक की प्रवृत्ति आलस्ययुक्त हो तो वह अपने वैरियों का दास्य स्वीकार कर जीने के लिए बाध्य होगा ॥ ८ ॥

कुडियाण्मै उळ्वन्द कुट्रम् ऑरुवन्
मडियाण्मै माट्रक् कॆडुम् ॥ ९ ॥

अकर्मण्यता-आलस से छुटकारा पाने का यह अर्थ—
सब दोषों से मुक्त हुआ, परिवार सहित वह हुआ समर्थ ॥ ९ ॥

यदि शासक अपने आलस्य का परित्याग कर दे, तो उसके वंश और शासन में व्याप्त समस्त दोष दूर हो जाएँगे ॥ ९ ॥

मडियिला मन्नवन् ऍय्दुम् अडियळन्दान्
ताअय दॆल्लाम् ऑरुङ्गु ॥ १० ॥

आलस-मुक्त नृपति के शासन का अविलम्ब विश्व-विस्तार—
वामन प्रभु ने तीन पैग में जितना नाप लिया संसार ॥ १० ॥

आलस्य-मुक्त शासक को एक-साथ वह सारी धरती प्राप्त होगी जिसे भगवान् ने [वामनावतार लेकर] अपने पाद से नाप लिया था ॥ १० ॥

अदिहारम् (अध्याय) ६२

आळ्विनैयुडैमै (कर्मठता)

अरुमैयुडैत्तॆन्रु अशावामै वेण्डुम्
पॆरुमै मुयर्च्चि तरुम् ॥ १ ॥

'है असाध्य', यह समझ न तजना काम, न होना कभी निराश।
जुटो कर्म में, कर्मशील को देता रहता 'कर्म' प्रकाश ॥ १ ॥

यह कहकर कोई कर्म करने से पीछे नहीं हटना चाहिए कि यह असम्भव है। क्योंकि अध्यवसाय से वह कर्म करने की क्षमता स्वयमेव प्राप्त होगी। [यर्च्चि = अध्यवसाय] ॥ १ ॥

विऩैक्कण् विऩैकॆडल् ओम्बल् विऩैक्कुऱै
तीर्न्दारिऩ् तीर्न्दऩ् ऱुलहु ॥ २ ॥

काम शुरू कर, थकन-निराशा से न त्यागना कभी अपूर्ण ।
छोड़ भागते जो अधबिच में, उन्हें त्यागता जग सम्पूर्ण ॥ २ ॥

किसी भी कार्य को बीच में छोड़ देना नहीं चाहिए; क्योंकि जो व्यक्ति समाप्त किये बिना किसी कार्य को छोड़ देता है उसे संसार छोड़ देगा [अर्थात् संसार उसका साथ नहीं देगा] ॥ २ ॥

ताळाण्मै ऎऩ्ऩुम् तहैमैक्कण् तङ्गिट्ऱे
वेळाण्मै ऎऩ्ऩुम् शॆऱुक्कु ॥ ३ ॥

कर्मशील अध्यवसायी होता है सकल गुणों का सार ।
कर्मठता के बल पर ही सम्भव है करना पर-उपकार ॥ ३ ॥

अध्यवसाय कहलानेवाले उत्तम गुण से ही परोपकार का महत्तत्व करगत होता है । [अध्यवसायी ही परोपकार कर सकता है ।] ॥ ३ ॥

ताळाण्मै यिल्लादाऩ् वेळाण्मै पेडिकै
वाळाण्मै पोलक्कॆडुम् ॥ ४ ॥

यथा नपुंसक के कर में है देना वृथा खड्ग-तलवार ।
अकर्मण्य से उसी भाँति संभव न कभी है पर-उपकार ॥ ४ ॥

जो व्यक्ति अध्यवसायी नहीं है उसकी परोपकार करने की वृत्ति उसी प्रकार निष्फल सिद्ध होगी जिस प्रकार किसी कायर व्यक्ति के हाथ की तलवार निष्प्रयोजन होती है ॥ ४ ॥

इऩ्बम् विऴैयाऩ् विऩैविऴैवाऩ् तऩ्केळिर्
तुऩ्बम् तुडैत्तूऩ्ऱुम् तूण् ॥ ५ ॥

केवल कर्म-पूर्ति में ही सुख, अन्य सुखों का जिसे न ध्यान ।
बन्धु-बान्धवों का दुखहर्ता दृढ़स्तम्भ अवलम्ब समान ॥ ५ ॥

जो व्यक्ति अपने सुख का विचार किये बिना कर्म की पूर्ति पर ही ध्यान देता है वह अपने बन्धुओं का दुःख दूर करेगा और खंभे की भाँति उनका सहारा सिद्ध होगा ॥ ५ ॥

मुयऱ्चि तिरुविऩै आक्कुम् मुयट्ऱिऩ्मै
इऩ्मै पुहुत्तिविडुम् ॥ ६ ॥

सतत प्रयत्न-परिश्रम से दिन-दिन उन्नत होता सौभाग्य ।
अकर्मण्य के जीवन में छाया रहता अभाव, दुर्भाग्य ॥ ६ ॥

अध्यवसाय से सम्पत्ति की वृद्धि होगी; अन्यथा अभाव की स्थिति उत्पन्न होगी। [इन्मै = अभाव, ग़रीबी] ॥ ६ ॥

मडियुळाळ् मामुहडि ऍन्ब मडियिलान्
ताळुळाळ् तामरैयिन्ऩाळ् ॥ ७ ॥

निरुद्यमी[1] के आलस में प्रतिमा-दरिद्र[2] का सदा निवास।
कमला[3] का आवास, जहाँ उद्यम का जगमग नित्य प्रकाश ॥ ७ ॥

विद्वानों का कहना है कि आलस्य में बदकिस्मती का आवास रहता है और आलस्यरहित व्यक्ति के अध्यवसाय में कमलवासिनी लक्ष्मी वास करती है। [परिश्रमी व्यक्ति श्री का अधिकारी होगा और आलसी व्यक्ति दुर्भाग्य का शिकार होगा।] ॥ ७ ॥

पॊऱियिन्मै यार्क्कुम् पऴियन्ऱु अऱिवऱिन्दु
आळ्वित्ऩै इन्मै पऴि ॥ ८ ॥

कर्तव्यों का ज्ञान न रखना, श्रम से बचना, है अपमान।
भाग्य अगर विपरीत, न इससे विक्षत[4] होता है सम्मान ॥ ८ ॥

अनुकूल भाग्य का न होना किसी के लिए अपमानजनक नहीं है। किन्तु उचित ज्ञान के साथ परिश्रम न करना ही अपमानजनक होगा। ['ज्ञान' से यहाँ कार्य की उचित जानकारी का अर्थ लिया जाता है।]॥८॥

दॆय्वत्तान् आहादॆऩिऩुम् मुयऱ्चि तन्
मॆय्वरुत्तक् कूलि तरुम् ॥ ९ ॥

कर्मशील के कर्मों का फल सुलभ न होने दे दुर्दैव!
फिर भी कर्मी के श्रम के फल में निश्चित उत्कर्ष[5] सदैव ॥ ९ ॥

चाहे भाग्य कर्म का फल प्रदान न करे, फिर भी अध्यवसाय शारीरिक श्रम का फल प्रदान करेगा ही। [अध्यवसाय कदापि निष्फल नहीं होगा। श्रमशील में निरंतर उत्साह और तेज की वृद्धि होती है; एक दिन भाग्य भी साथ देता है।] ॥ ९ ॥

ऊऴैयुम् उप्पक्कम् काण्बर् उलैविऩ्ऱित्
ताऴा तुऩट्ऱु पवर् ॥ १० ॥

अथक निरंतर श्रमसेवी से, हार मानता है दुर्भाग्य।
कर्मठ के श्रम से असाध्य भी क्रमशः हो जाता है साध्य ॥ १० ॥

जो व्यक्ति निरन्तर अथक परिश्रम करते हैं उनके पास प्रतिकूल नियति

---

१ अकर्मण्य २ दरिद्रता की मूर्ति ३ लक्ष्मी ४ घायल ५ उन्नति।

की पहुँच नहीं होती। उन्हें देखकर वह पीठ दिखाकर भाग जाती है। [उऱट्रु पवर् = अध्यवसायी, परिश्रमी] ॥ १० ॥

अदिहारम् (अध्याय) ६३

इडुक्कणळियामै (बाधाओं में अविचलित रहना)

इडुक्कण् वरुङ्काल् नहुह अदऩै
अडुत्तूर्व दःदॊप्प दिल् ॥ १ ॥

रहो प्रफुल्ल सदा संकट में, उचित न, मन को करो उदास।
संकट सदा क्षणिक हैं; उन पर जय पाना अनुपम उल्लास ॥ १ ॥

जब कठिनाई उपस्थित होती है तब आप उल्लास का अनुभव कीजिए। क्योंकि उस कठिनाई पर विजय पाने से होनेवाले आनन्द से से बढ़कर कोई दूसरा आनन्द नहीं होता ॥ १ ॥

वॆळ्ळत्तऩैय इडुम्बै अऱिवुडैयान्
उळ्ळत्तिऩ् उळ्ळक् कॆडुम् ॥ २ ॥

बुद्धिमान् पर बाढ़ उमड़ती दुःखों की जब-जब प्रतिकूल।
साहस-धैर्य-विवेक-शक्ति से वह करता उनको निर्मूल ॥ २ ॥

जब अपार बाढ़ जैसा कोई दुःख उपस्थित होता है तब यदि बुद्धिमान् व्यक्ति उसपर अपनी बुद्धि से विचार करे तो वह दूर होगा। [अर्थात वह अपनी बौद्धिक क्षमता से उस दुःख पर विजय प्राप्त करेगा।] ॥ २ ॥

इडुम्बैक् किडुम्बै पडुप्पर् इडुम्बैक्कु
इडुम्बै पडाअ दवर् ॥ ३ ॥

विपत्तियों में अविचल रहकर नहीं मानता उर में क्लेश।
उस साहसी धीर के सम्मुख क्लेश हार कर होते शेष ॥ ३ ॥

जो व्यक्ति कठिनाइयों में अविचलित रहता है उससे कठिनाइयाँ स्वयं विचलित हो जाएँगी। [अर्थात् जो व्यक्ति कठिनाइयों से भयभीत नहीं होता उससे कठिनाइयाँ कोसों दूर भाग जाएँगी।] ॥ ३ ॥

मडुत्तवायेल्लाम् पहडऩ्ऩान् उट्ऱ
इडुक्कण् इडर्प्पाडु उडैत्तु ॥ ४ ॥

वृषभ-तुल्य[1] दुर्गम-पथ से गाड़ी को खींच लगाता पार।
सहनशील उस धीर पुरुष से संकट स्वयं मानते हार ॥ ४ ॥

विषम पथ से गाड़ी को खींच ले जानेवाले बैल की तरह जो व्यक्ति कठिनाइयों के बीच से कर्म करता है उसके मार्ग में आनेवाली कठिनाइयाँ स्वयं विचलित हो जाएँगी ॥ ४ ॥

अडुक्कि वरिऩुम् अऴिविलाऩ् उट्ऱ
इडुक्कण् इडुक्कट् पडुम् ॥ ५ ॥

धीरवंत पर चौतरफ़ा से उमड़ें दुख पर दुःख अनन्त।
अविचल से, दुख स्वयं हार कर अपना शीघ्र बुलाते अन्त ॥ ५ ॥

भले ही निरन्तर नाना प्रकार की बाधाएँ उपस्थित क्यों न हों; फिर भी यदि कोई व्यक्ति उनमें भी चंचल नहीं हो तो बाधाएँ स्वयं लज्जित होंगी ॥ ५ ॥

अट्ऱेमॆऩ् ऱल्लऱ् पडुपवो पॆट्ऱेमॆऩ्
ऱोम्बुदल् तेट्ऱादवर् ॥ ६ ॥

गर्व नहीं सम्पन्न दशा में, दुखी नहीं जब हुए विपन्न।
अविचल की मति सदा शान्त है, कभी न प्रमुदित, कभी न खिन्न ॥ ६ ॥

जो व्यक्ति संपन्नतता के समय उपलब्धि पर गर्व नहीं करते, क्या वे अभाव के समय मन मसोसेंगे ? [नहीं] ॥ ६ ॥

इलक्कम् उडम्बिडुम्बैक् कॆऩ्ऱु कलक्कत्तैक्
कैयाऱाक् कॊळ्ळादाम् मेल् ॥ ७ ॥

मानव-तन है दुःख-हेतु—मतिमानों को इसका है ज्ञान।
इसी लिए दुःखों-क्लेशों का मन में कभी न लाते ध्यान ॥ ७ ॥

महान् व्यक्ति कठिनाइयों को बदकिस्मती नहीं समझते; क्योंकि वे जानते हैं कि इस शरीर का गुण कठिनाइयों का शिकार होना है ॥ ७ ॥

इऩ्बम् विळैयाऩ् इडुम्बै इयल्बॆऩ्बाऩ्
तुऩ्बम् उऱुदल् इलऩ् ॥ ८ ॥

सुख की उर में नहीं लालसा, दुख है सहज जगत्-व्यापार।
ऐसे मतिमानों पर दुःखों-क्लेशों के निष्फल हैं वार[2] ॥ ८ ॥

जो व्यक्ति सुख की कामना नहीं करता, प्रत्युत यह स्वीकार करता है कि दुःख स्वाभाविक है, उसे कभी दुःख का अनुभव नहीं होता ॥ ८ ॥

---

१ बैल के समान २ चोटें, प्रहार।

और ऐश व इशरत में मस्रूफ़ हो गये। वह अपने मग़रिबी दोस्तों के इताअ़त-केश[1] दोस्त थे जो उनके इशारों पर चलते और उनके मशविरों के आगे किसी की न सुनते।

इस ख़ुलूसे[2]-अक़ीदत[3] के सिले में अंग्रेज़ों ने रुहेलखंड पर इनका क़ब्ज़ा करा दिया। अपनी माँ बहू बेगम साहिबा को सताने और लूटने के लिए जब इन्होंने अंग्रेज़ों से मदद मांगी तो निहायत फ़ैयाज़ी के साथ इन्हें अख़्लाक़ी मदद दी गई और इनकी तरफ़दारी की गई। इस पर भी इनके ज़माने तक इन्हें या लखनऊ की रिआया को भी ऐश-परस्त व इशरत-तलब बना दिया था और किसी को मौजूदा राहत व आराम के आगे अंजाम पर ग़ौर करने की ज़रूरत ही न महसूस होती थी। इस ऐशपरस्ती का नतीजा था कि ज़ाहिरी सूरत में उन दिनों लखनऊ के दरबार में ऐसी शान व शौकत पैदा हो गई जो कहीं और किसी दरबार में न थी और ऐसा सामाने-ऐश जमा हो गया था जो किसी जगह न नज़र आता। उन दिनों शहर लखनऊ ऐसी रौनक़ पर था कि हिन्दोस्तान ही नहीं शायद दुनिया का कोई शहरे लखनऊ के औज व उरूज[4] का मुक़ाबिला न कर सकता होगा। शुजाउद्दौल: जो रुपया फ़ौज और जंगी तैयारियों में सर्फ़ करते थे उसे आसफ़उद्दौल: ने अपनी ऐश-तलबी के ज़ौक़ और शहर की आरायश व ख़ुशहाली में सर्फ़ करना शुरू कर दिया और चन्द ही रोज़ के अन्दर सारी दुनिया की धूमधाम अपने यहाँ जमाकर ली। उनका हौसला बस यही था कि निज़ाम हैदराबाद हों या टीपू सुलतान, किसी दरबार का कर्र व फ़र्र और किसी की शौकत व हश्मत मेरे दरबार से ज़ियाद: न हो सके।

अपने बेटे वज़ीर अली ख़ाँ की शादी में इन्होंने ऐसा हौसला दिखाया कि बरात का तुज़ुक[6] व इहतिशाम[5] तारीख़े-अर्ज़ के तमाम तकल्लुफ़ात[7] से बढ़ गया। बरात के जुलूस में बारह सौ हाथी थे। दूल्हा जो शाही ख़िलअ़त पहिने था, उसमें बीस लाख के जवाहिरात टँके हुए थे। महफ़िले तरब[8] के लिए दो अज़ीमुश्शान और पुरतकल्लुफ़ ख़ेमे बनवाये गये। जिनमें हर एक ६० फुट चौड़ा १२०० फ़ुट लम्बा और ६० फ़ुट बलन्द था। और ऐसा उम्द: नफ़ीस और क़ीमती कपड़ा लगाया गया था कि उन दोनों की तैयारी में सल्तनत के दस लाख रुपये सर्फ़ हो गये।

उन्होंने दरिया के किनारे मच्छी-भवन के मग़रिब तरफ़ दौलतख़ाना, रूमी दरवाज़ा और अपना यकतायें-रोज़गार इमामबाड़ा तामीर कराया। सन् १२१३ मुहम्मदी (सन् १७८४ ई०) में अवध में क़हत[9] पड़ गया था और शुरफ़ाए शहर तक फ़ाक़ाकशी में मुब्तला थे। उस नाज़ुक मौक़े पर रिआया की दस्तगीरी के लिए इमामबाड़े की इमारत छेड़ दी गई। चूँकि शरीफ़ लोग दिन को मज़दूरी करने में अपनी बेइज़्ज़ती ख़याल करते थे, इसलिए तामीर का काम दिन की तरह रात को भी जारी रहता और

---

१ आज्ञाकारी २ निष्ठा ३ दृढ़ विश्वास ४ विकास ५ शोभा, वैभव ६ प्रतिष्ठा ७ शिष्टाचार ८ सम्मान ९ अकाल।

ग़रीब व फ़ाक़ाकश शुरफ़ाए-शहर रात के अँधेरे में आकर मज़दूरों में शरीक हो जाते और मशालों की रौशनी में काम करते। इस इमारत को नव्वाब ने जैसे ख़ुलूसे अक़ीदत और जोशे-दीनदारी से बनवाया था, वैसे ही ख़ालिस और सच्चे दिली जोश से लोगों ने तामीर भी किया। नतीजा यह हुआ कि ऐसी नफ़ीस और शानदार इमारत बनके तैयार हो गई जो अपनी नौईयत[1] में बेमिस्ल और नादिरे रोज़गार है। उसका नक़्शा बनाने के लिए बड़े-बड़े मशहूर मुहन्दिस[2] और मेमार[3] (मेअ़मार) बुलाये गये और सबने कोशिश की कि हमारा नक़्शा दूसरों के मुजव्विज़ा[4] नक़्शे से बढ़ जाये। मगर किफ़ायतुल्ला नाम के एक बेमिस्ले ज़माना मेमार का नक़्शा पसन्द किया गया और उसी के मुताबिक़ इमारत बनना शुरू हो गई। जो १६७ फ़ुट लम्बी, ५२ फ़ुट चौड़ी है। ईंट और निहायत आला दरजे के चूने से यह इमारत बनाई गई है, जिसमें फ़र्श से छत तक लकड़ी का नाम नहीं है। इस इमारत को शाहाने मुग़लिया की संगीन इमारतों से किसी क़िस्म का तअ़ल्लुक़ नहीं है। लखनऊ में उस कस्रत से संगमर्मर दस्तयाब नहीं हो सकता था। लेकिन इमामबाड़े और आसफ़उद्दौलः की दूसरी इमारतों को देखिए तो एक नई ख़ुशनुमाई और निराली अज़्मत[5] व शान रखती हैं। इमामबाड़े की लदाव की छत, जो कड़ा देकर के बनाई गई है इतनी बड़ी है कि उतनी बड़ी लदाव की छत सारी दुनिया में कहीं नहीं है और इसी वजह से यह भी दुनिया की अजूबः रोज़गार कारीगरियों में शुमार की जाती है।

आसफ़उद्दौलः की इमारतों पर योरुप की इमारतों का ज़रा भी असर न था। वह अपनी नौईयत[6] में ख़ालिस एशियाई हैं, जिनमें नुमायशी नहीं, असली व हक़ीक़ी शान व शौकत पाई जाती है। नव्वाब आसफ़उद्दौलः के बाद यह इमारतें कस्मपुरसी में पड़ी रहीं। ग़दर के बाद अंग्रेज़ों ने इन पर क़ब्ज़ा करके गिर्द-व-पेश के मकानों को मुनहदिम[7] कर दिया और सिवा उस जानिब के जिधर दरिया है, बाक़ी तीनों तरफ़ मैदान करके इमामबाड़े को क़िला और रूमी दरवाज़े को उसका फाटक बना लिया। उस ज़माने में इस इमामबाड़े में गोरे रहते थे, इसके बड़े हाल में सिलह-ख़ाना[8] था और उसके फ़र्श पर बड़ी-बड़ी तोपें दौड़ती फिरती थीं। मगर न कभी ज़मीन खुदी न दर व दीवार की कोई चीप उखड़ी। अब सरकारे अंग्रेज़ी ने इमामबाड़े को छोड़ कर फिर मुसलमानों के हवाले कर दिया है। उसकी मस्जिद में एक मुजतहिद साहब[9] नमाज़ पढ़ाते हैं और इमाम बाड़े में ताज़ियःदारी होती है।

नव्वाब आसफ़उद्दौलः की इमारतों की मज़बूती का अन्दाज़ः इससे हो सकता है कि इन्हें तामीर हुए अगरचिः सवा सौ बरस से ज़ियादः की मुद्दत गुज़र गई, मगर आज तक अज़्मत व शुकोह[10] और उसी मज़बूती व पायदारी से अपनी जगह पर क़ायम हैं,

---

१ विशेषता २ नक़्शानवीस ३ थवई ४ प्रस्तावित ५ महत्ता ६ विशेषता ७ गिराया हुआ ८ शस्त्रागार ९ धार्मिक आचार्य १० बड़प्पन।

न कोई ईंट अपने मुक़ाम से हटती है और न किसी जगह चूने ने ईंटों को छोड़ा है। ब-ख़िलाफ़ उनके, दीगर शाहानें अवध ने करोड़ों रुपये सर्फ़ करके जो इमारतें बाद को बनवाईं वह क़ौमी व मुल्की वज़अदारी (वज़ादारी[1]) के मफ़क़ूद[2] हो जाने के अलावा निहायत कमज़ोर हैं और अगर वक़्तन् फ़वक़्तन् मरम्मत न होती रहती तो आज तक मुन्हदिम हो चुकी होतीं।

आसफ़उद्दौल: इमामबाड़े और मच्छी-भवन के मुत्तसिल अपने महल "दौलतख़ाने" में रहते थे। शहर के बाहर और दरिया पार हुजूमें ख़लायक़ से दूर और दुनियवी झगड़ों से अलग रहके मसरूफ़े-ऐश होने के लिए बिबियापूर का महल बनवाया। अक्सर जब वह सैर व शिकार के लिए जाते तो इसी मकान में क़ियाम करते। इसी तरह चिनहट में एक पुर-फ़िज़ा व नुज़हतबख़्श[3] मकान, और चारबाग़ और ऐशबाग़ में कोशकें बनवाईं और उसी ज़माने में यहियागंज में और इसके मुत्तसिल अस्तबल बने। फिर मुहल्ला वज़ीरगंज क़ायम हुआ जो आसफ़उद्दौल: के बेटे वज़ीर अली ख़ाँ की क़ियामगाह होने के बायस इन्हीं की तरफ़ मन्सूब और उन्हीं की यादगार है।

अब लखनऊ में हाकिम और फ़रमाँ-रवा के मुस्तक़िल तौर पर सुकूनत-पिज़ीर हो जाने की वजह से आम ख़िलक़त का रुख़ लखनऊ की तरफ़ फिर गया। जो लोग शुजाउद्दौल: के ज़माने में फ़ैज़ाबाद में बस गए थे, उन्होंने फ़ैज़ाबाद को छोड़-छोड़कर, लखनऊ में आ-आकर बसना शुरू किया। दूसरी तरफ़ देहली के लोग अपने वतन को ख़ैर बाद कह-कहकर सीधे लखनऊ में आते थे और फिर जाना न नसीब होता था। ख़िलक़त के इस हुजूम ने नए मुहल्ले आबाद करना शुरू कर दिए, इसलिए कि बाहर के आनेवालों में से जिसे जहाँ जगह मिल जाती, आबाद हो जाता और सैकड़ों मुहल्ले आबाद होते चले जाते।

चुनाँचि: अमानींगंज, फ़तहगंज, रकाबगंज, नख़ास, दौलतगंज, बेगमगंज, नव्वाबगंज, ख़ानसामा का इहाता (जिसे नव्वाब आसफ़उद्दौल: के एक ख़ानगी दारोग़ा ने आबाद किया और इफ़्तताह[4] की तक़रीब में ख़ुद इन्हें बुलाया), टिकैटगंज, टिकैटराय का बाज़ार, (जो वज़ीरे आज़म महाराजा टिकैटराय की जानिब मन्सूब हैं), तिरमिनीगंज, टुकड़ी या टकली, हुसैन-उद्दीन ख़ाँ की छावनी, हसनगंज, बावली, भवानीगंज, बालकगंज, कश्मीरी मुहल्ला, सूरतसिंह का इहाता, निवाज़गंज, तहसीनगंज, ख़ुदागंज, नगरिया (जिसकी नव्वाब आसफ़उद्दौल: की माँ बहूबेगम साहिबा ने उसी दिन बुनियाद डाली जिस दिन दरिया पार ख़ुद इन्होंने अलीगंज की बुनियाद रखी थी), अम्बरगंज, महबूब-गंज, तोपदरवाज़ा, ख़यालीगंज, झाऊलाल का पुल, (इन दोनों मुहल्लों के बानी राजा झाऊलाल, सल्तनते अवध के वज़ीरे-ख़ज़ाना थे)—यह सब वह मुहल्ले हैं जो अहदे

---

१ तरहदार २ गुम, जिसका कुछ पता न लगे ३ सुखद, आनन्द बढ़ानेवाला
४ शुरु करना, उद्घाटन।

आसफ़ी में बसे और तामीर हुए और इन्हीं दिनों दरिया के पार हसन रज़ा ख़ाँ ने हसनगंज बसाया।

नव्वाब आसफ़उद्दौलः की फ़ैयाज़ियों[1] की ख़ास व आम में शुहरत थी और दूर-दूर के शहरों में उनकी दाद व दिहश[2] (उदारतापूर्वक देने की यह कसरत थी कि मांगने वालों की ज़ुबाँ पर हमेशा यह तराना "जिसको न दे मौला, उसको दे आसफ़उद्दौलः" विर्द रहता था, का तज़किरा हो रहा था) लोग उठते-बैठते इज़्ज़त व मुहब्बत के साथ उनका नाम लेते और उनके तमाम ज़ाती उयूब[3] फ़ैयाज़ी के दामन में छिपकर नज़रों से ग़ायब हो गये थे और अवाम को नव्वाब की सूरत में एक ऐशपरस्त फ़रमाँ-रवा नहीं बल्कि एक बेनफ़्स और दरवेश[4]-सिफ़त वली नज़र आता। हिन्दू दूकानदार आज तक सुबह को आँख खुलते ही जोशे-अक़ीदत से कहते हैं "या आसफ़उद्दौलः वली"।

उसी ज़माने में जनरल क्लाडमार्टिन नाम एक बहुत बड़ा दौलतमंद फ़्रान्सीसी ताजिर लखनऊ में आके रह पड़ा था। इसने एक निहायत ही आलीशान कोठी का नक़्शा बनाकर, नव्वाब आसफ़उद्दौलः के मुलाहिज़े में पेश किया। नव्वाब ने उसे इस क़दर पसन्द किया कि उसकी क़ीमत में दस लाख अशर्फ़ियाँ देने को तैयार हो गये। बैअ़[5] का मुआहदः तक्मील को नहीं पहुँचने पाया था कि नव्वाब आसफ़उद्दौलः ने सफ़रे आख़िरत किया और इमारत हनोज़[6] तक्मील को नहीं पहुँची थी कि मसयूमार्टिन दुनिया से रुख़सत हो गये। इन्होंने चूँकि दौलते-बेपायाँ छोड़ी थी और वारिस कोई न था, इसलिए मरते वक़्त वसीयत कर दी कि मेरी लाश इसी कोठी के अन्दर दफ़्न की जाये ताकि मेरे बाद इसे हुक्मरानाने अवध ज़ब्त न कर सकें। इस इमारत का नाम इन्होंने कानिस्टेन्शिया (क़ुस्तुनतुनिया) क़रार दिया था। मगर अवाम में वह आजकल "मारकीन (मार्टीन ?) साहब की कोठी" मशहूर है और देखने के क़ाबिल है। मरने के बाद वह इसी कोठी में दफ़्न हुए। वह मदरसा आज तक जारी है, जिससे बहुत से तलबा[7] को खाना और कपड़ा मिलता है। मगर सुनते हैं कि मार्टिन साहब ने उस स्कूल और उसके वज़ायफ़[8] को किसी मज़हब और क़ौम के साथ मख़्सूस[9] नहीं किया था। बल्कि वसिय्यत की थी कि ईसाई, हिन्दू, मुसलमान सब ही यकसाँ तौर पर इससे फ़ैज़याब हो सकते हैं। लेकिन अब यह मदरसा सिर्फ़ योरूपियन बच्चों के लिए मख़्सूस है, किसी हिन्दोस्तानी को वज़ीफ़ः मिलना दरकिनार, इसकी तालीम में भी शरीक नहीं किया जाता। शायद यह इस वजह से हो कि ग़दर के ज़माने में जाहिल व पुरजोश बलवाइयों ने क़ब्र खोदकर मिस्टर मार्टिन की हड्डियाँ निकाल लीं और उन्हें इधर उधर फेंक दिया, अंग्रेज़ों को बाद-तसल्लुत[10] इत्तिफ़ाक़न् एक हड्डी मिल गई, जो फिर उसी

---

१ दानशीलता २ दान-पुण्य ३ "ऐब" का बहुवचन ४ फ़क़ीर ५ बै करना, विक्रय ६ अब तक ७ विद्यार्थी लोग ८ वृत्ति या आर्थिक सहायता ९ ख़ास तौर पर अलग १० पूर्ण अधिकार।

ख़ाक में दबा दी गई। लेकिन उन बलवाइयों के फ़ेल के ज़िम्मेदार आम हिन्दोस्तानी नहीं हो सकते।

सन् १२२७ मुहम्मदी (सन् १७९८ ई०) में नव्वाब आसफ़उद्दौल: ने सफ़रे आख़िरत किया और इनकी जगह नव्वाब वज़ीर अली ख़ाँ मसनद-नशीन हुए जिनकी शादी की धूमधाम का हाल हम बता चुके हैं। मगर चार ही महीने में इनसे ऐसे बेहूदा और क़ाबिले नफ़रत हर्कात ज़ाहिर हुए कि अक्सर लोग उनसे नाराज़ थे। ख़ुद बहूबेगम साहिबा इनके मुक़ाबिल अपने सौतेले बेटे यमीनउद्दौल: नव्वाब सआदत अली ख़ाँ को ज़ियाद: पसन्द करती थीं। इधर इस ख़बर की शुहरत हुई कि वज़ीर अली ख़ाँ आसफ़उद्दौल: के बेटे ही नहीं हैं। क्योंकि आसफ़उद्दौल: की निस्बत बहुतेरों का ख़याल था कि पैदायशी इन्नीन[1] थे।

नव्वाब सआदत अली ख़ाँ, आसफ़उद्दौल: की मुख़ालिफ़त के बायस उनके ज़माने में मुद्दतों क़लम-रौ से बाहर और दूर-दूर रहते थे। मुद्दतों कलकत्ते में रहे और एक ज़माने दराज़ तक बनारस में क़ियाम रहा। वज़ीर अली ख़ाँ की निस्बत यह ख़याल क़ायम होने के बाद क़ुरए[2] इन्तख़ाब सआदत अली ख़ाँ पर पड़ा। वह बनारस से लाए गए और बिबियापूर की कोठी में ख़ुद गवर्नर जनरल बहादुर ने दरबार फ़रमाकर वज़ीर अली ख़ाँ की मअज़ूली[3] और नव्वाब सआदत अली ख़ाँ की मसनदनशीनी का फ़ैसला किया। वज़ीर अली ख़ाँ फ़ौरन् गिरफ़्तार करके बनारस भेज दिये गये। जहाँ इन्होंने तैश में आकर मिस्टर चेरी को मार डाला और इसकी सज़ा में गिरफ़्तार करके चुनारगढ़ भेजे गये और वहीं मरे। इनकी मुसीबतों और सरगरदानियों[4] का एक भारी क़िस्सा मशहूर है जिसका यह मुख़्तसर मज़मून मुतहम्मिल[5] नहीं हो सकता।

आधा मुल्क अंग्रेज़ों की नज़र

नव्वाब सआदत अली ख़ाँ ने सन् १२२७ मुहम्मदी (सन् १७९८ ई०) में तख़्त पर बैठते ही आधा मुल्क अंग्रेज़ों की नज़र कर दिया, मशहूर है कि वह सल्तनत से मायूस व नाउम्मीद बनारस में पड़े हुए थे कि ख़बर पहुँची, नव्वाब आसफ़उद्दौल: बहादुर ने सफ़रे आख़िरत किया और मसनदे हुकूमत पर वज़ीर अली ख़ाँ बैठ गये। यह सुनते ही सल्तनत की रही सही उम्मीदें भी ख़ाक में मिल गईं। इस क़तई-यास[6] के आलम में थे कि बनारस के किसी योरोपियन हाकिम ने आकर पूछा—"नव्वाब साहब! अगर आप को अवध की हुकूमत मिल जाए तो अंग्रेज़ी हुकूमत को क्या दीजियेगा?" जो चीज़ हाथ से जा चुकी हो, इन्सान के दिल में उसकी क़दर ही क्या हो सकती है?

---

१ नपंसक, नामर्द २ लाटरी ३ अपने पद से हटाना ४ दुर्दशा ५ बर्दाश्त पूरी निराशा।

बे-इख़्तियार ज़बान से निकला—"आधा मुल्क अंग्रेज़ों की नज़र करूँगा"। यह वादा सुनकर इस अंग्रेज़ हाकिम ने कहा—"तो आप ख़ुश हों और मैं आप को ख़ुश ख़बरी सुनाता हूँ कि आप ही फ़रमाँ-रवायें लखनऊ मुन्तख़ब[1] हुए हैं। सआदत अली ख़ाँ यह मज़्दए[2] ग़ैर-मुतरक़्क़िब:[3] सुन के ख़ुश तो ज़रूर हुए मगर अपने वादे का ख़याल आया तो एक सन्नाटे में आ गये और आख़िर तख़्तनशीनी के बाद उस वादे के ईफ़ा[4] में इन्हें अपनी आधी क़लम-रौ बाँट देना पड़ी, जिसका काँटा ज़िन्दगी भर उनके दिल में खटकता रहा।

अंग्रेज़ी तारीख़ों में उनसे वादा लिए जाने का तो ज़िक्र नहीं है, मगर इसको सब तस्लीम करते हैं कि नव्वाब सआदत अली ख़ाँ को चूँकि अंग्रेज़ों ने तख़्त पर बिठाया था, इसलिए इन्होंने अपना आधा मुल्क शुक्रिए के तौर पर अंग्रेज़ों की नज़र कर दिया। बहर तक़दीर, जो कुछ हो, सआदतअली ख़ाँ की तख़्तनशीनी के वक़्त अवध की हुकूमत आधी रह गई। लखनऊ के पुराने लोगों में मशहूर है कि इसी कोफ़्त[5] में सआदत अली ख़ाँ ने निहायत ही किफ़ायत-शआरी से काम ले के और तहसील वसूल में बेइन्तहा मुस्तैदी व बेदार-मग़्ज़ी ज़ाहिर करके बाईस-तेईस करोड़ रुपया जमा किया और इंग्लिस्तान में ब्रिटिश गवर्नमेण्ट से मुरासलत[6] करके यह तय कर लिया था कि हिस्दोस्तान की हुकूमत का ठेका ब-एवज़ ईस्ट इंडिया कम्पनी के उनको दे दिया जाये। और मुआहदे की तक्मील होने ही को थी कि उनके साले ने किसी साज़िश में शरीक होकर ज़हर दे दिया और वही मसल पूरी हुई कि 'आन क़दह बशिकस्त व आन साक़ी न मानद"[7]। यह और इसी क़िस्म के बीसियों वाक़िआत मशहूर हैं, जिनका सुबूत सिवाय अफ़वाही रिवायतों के और कुछ नहीं मिल सकता। लेकिन इसमें शक नहीं कि सआदत अली ख़ाँ इस क़दर जुज़रस[8] और मुन्तज़िम वाक़िअ़ हुए थे कि उनके हाकिम ने क़लमरौ का कोई जुज़ आसानी से न दिया होगा। दूसरे उनके तर्ज़े[9]-अमल और पालिसी में एक ऐसी मुज़्तरिबाना[9] होशियारी और पुर असरार बेक़रारी नज़र आती है कि चाहे पता न चले, मगर साफ़ मालूम होता है कि वह कोई बड़ा काम करने वाले थे, और उनके तेवर बहुत ही पुर-मानी थे।

मुल्क को बाँट देने की वजह से इन्हें सब से बड़ी मुश्किल यह पेश आई कि सल्तनत की निस्फ़ आमदनी घट गई। और आसफ़उद्दौल: मरहूम ने मसारिफ़[10] हद से ज़ियाद: बढ़ा रक्खे थे। चुनाँचि: इन्हें दरबार के मसारिफ़ घटाना पड़े, जो निहायत ही मुश्किल चीज़ थी। इस कोशिश में इन्होंने हिसाबात की जाँच की। अदना-अदना रक़मों पर नज़र डाली, माफ़ियों और जागीरों की निहायत सख़्ती के साथ

---

१ निर्वाचित २ ख़ुश ख़बर ३ अजनबी प्रतिद्वन्द्वी से ४ वचन पूरा करना ५ दुःख ६ पत्र-व्यवहार ७ वह प्याला टूट गया और वह साक़ी न रहा ८ जोड़-तोड़वाला ९ बेचैनी १० अनेक प्रकार के व्यय या उनकी मदें।

छान-बिनान की, दरबार के मसारिफ़ में जहाँ तक बना, कमी की। ग़रज़ जिस तरह हो सका बदनामियाँ उठाके और लोगों पर सख़्त बे-रहमियाँ करके इन्होंने सल्तनत की आमदनी बढ़ाई और ख़र्च घटाया।

यह कार्रवाईयाँ देखकर ज़ीहोश[1] और मुन्सिफ़ मिज़ाज लोग तो सआदत अली ख़ाँ की लियाक़त और ख़ुश तदबीरी के क़ायल हो गये मगर अवाम में बे-इन्तिहा नाराज़ी फैली। एक तरफ़ उन मुआफ़ीदारों और जागीरदारों का गरोह शाकी[2] था, जिनकी जायदादें ज़ब्त हुई थीं। दूसरी तरफ़ वह फ़िज़ूल और अज़कार-रफ़्त: मुलाज़िमीन रोते फिरते थे जिनकी जगहें तख़्फ़ीफ़[3] में आ गई थीं। इसी क़दर नहीं, मुल्क में एक बड़ा भारी गरोह उन लोगों का भी था, जो वज़ीर अली ख़ाँ के तरफ़दार थे। उनको जायज़ और सच्चा हक़दारे सल्तनत ख़याल करके नव्वाब सआदत अली ख़ाँ को ग़ासिब[4] बताते थे। ग़रज़ मुल्क में हज़ारों दुश्मन थे, जिनसे ख़तर: था कि नव्वाब की जान पर हमला न कर बैठें। रिआया के अलावा फ़ौज भी नए नव्वाब से निहायत नाराज़ थी। बे-शुमार फ़ौज का टीड़ी-दल जो नव्वाब शुजाउद्दौल: के अहद में था, उसमें आसफ़उद्दौल: ही के ज़माने से सरकार अंग्रेज़ बहादुर के मश्विरे से तख़्फ़ीफ़ शुरू हो गई थी। मगर आसफ़उद्दौल: की फ़ैयाज़ियों और फ़िज़ूलख़र्चियों ने बहलाये रखा और शिकायत की आवाज़ ज़ियाद: नहीं बलन्द होने पाई; सआदत अली ख़ाँ ने जब ज़ियाद: तख़्फ़ीफ़ की और इसके साथ जुज़रसी भी इख़्तियार की तो हर तरफ़ हाय-हाय पड़ गई, और जो था उनकी जान को रो रहा था।

नतीजा यह हुआ कि जान की हिफ़ाज़त के लिए सरकारे अंग्रेज़ी को ज़रूरत मालूम हुई कि अंग्रेज़ी बाज़ाब्ता फ़ौजी गार्ड ख़ास शहर के अन्दर रक्खा जाए क्योंकि शहर के मुफ़्सिदों और सरकशों की सरकोबी के लिए, और नीज़ अमन व अमान क़ायम रखने की ग़रज़ से, एक बेरूनी ज़बरदस्त क़ुव्वत का हर वक़्त शहर में रहना बहुत ही ज़रूरी था, जिसकी निस्बत सुना जाता है कि नव्वाब सआदत अली ख़ाँ ने इनको निहायत ही नागवारी के साथ मंज़ूर किया।

फ़रमाँ-रवायाने अवध ने इससे पेश्तर अपने रहने सहने के मुतअल्लिक़ निहायत ही सादगी ज़ाहिर की थी। पहले तीन हुक्मरानों यानी नव्वाब बुरहानुल्मुल्क, नव्वाब सफ़दरजंग और नव्वाब शुजाउद्दौल: ने जिन सादे मकानों में ज़िन्दगी बसर की, वह भी इनकी ज़ाती मिलकियत नहीं; बल्कि किराये पर थे। उन्होंने अपना असली मकान या तो मैदाने जंग को ख़याल किया या सारी ममलिकत को जिसमें दौरा करते रहते और सारी ममलूक:[5] ज़मीन के हर हिस्से को अपना मस्कन व मकान तसव्वुर करते। नव्वाब आसफ़उद्दौल: अगरचि: निहायत ही मुस्रिफ़[6] थे, ऐयाशी व फ़िज़ूल ख़र्ची में बदनाम थे,

---

१ ज्ञान रखनेवाला २ शिकायत करनेवाला ३ कमी ४ बलपूर्वक किसी की वस्तु ले लेनेवाला ५ सल्तनत १ व्यर्थ और अधिक व्यय करनेवाला।

मगर उनके लिए भी सिर्फ़ एक सादा पुरानी क़ितअ़ का मकान यानी पँचमहला काफ़ी था, हालाँकि इन्हें इमारत का बड़ा शौक़ था। इससे ज़ियादः क्या होगा कि बीस लाख रुपए एक इमामबाड़े और मस्जिद की तामीर में सर्फ़ कर दिये और इससे ज़ियादः ही रक़म चौक, मुख़्तलिफ़ बाज़ारों, मंडियों, पुलों और सरायों वग़ैरः की तामीर में ख़र्च की। ग़रज़ पहले तीन फ़र्मा-रवाओं का शौक़े तामीर अगर क़िलों, गढ़ियों की तामीर और फ़ौजी सामान के फ़राहम करने में पूरा होता था, तो आसफ़उद्दौलः का शौक़ दीनदारी की इमारतों या नफ़ारसानी ख़ल्क़-अल्लाह के कामों में। इसके साथ इमारत का क़दीम[1]-मज़ाक़[2] भी अब तक निभता चला जाता था। आसफ़उद्दौलः के इमामबाड़े तक की इमारतें क़दीम-मज़ाक़े[3] तामीर का मुकम्मलतरीन नमूना हैं। देहली व आगरे में शाहजहाँ बादशाह को आला दरजे का संगे-रख़ाम, और संगे-सुर्ख़, क़रीब की कानों[4] में मिल गया था, जिसने वहाँ की इमारतों में ख़ास क़िस्म की नफ़ासत और आला दरजे की शान पैदा करा दी। लखनऊ में पत्थर का मिलना ग़ैर मुमकिन था और आगरे और जयपुर से लाना इस क़दर दुश्वार था कि किसी को मंगवाने की जुरअत[5] न हो सकती थी। आसफ़उद्दौलः ने ईंट और चूने से वही काम लिया और वैसी ही शानदारी दिखा दी।

नव्वाब सआदत अली ख़ाँ को बावजूद किफ़ायतशआरी, जुज़रसी और रुपया जमा करने की हविस के, मकानों और इमारतों का शौक़ था; मगर अफ़सोस उनका यह शौक़ कलकत्ते वग़ैरा में रहने और मुख़्तलिफ़ मक़ामात की इमारतों के देखने की वजह से ऐसा ग़ारत[6] हो गया था कि उनके अहद की इमारतों से वह पुरानी ख़ुसूसियतें जुदा हो गईं और उस वक़्त से गोया इमारत का मज़ाक़[7] ही बदल गया।

लखनऊ में इस इन्क़िलाबे तामीर का असली बाअस, कुछ तो तख़्तनशीनी से पहले नव्वाब सआदत अली ख़ाँ की ग़रीबुल-वतनी, ख़ाना-बदोशी, और अक़वामे योरुप से मिलना-जुलना था; और ज़ियादःतर यह चीज़ थी कि जनरल मार्टिन ने अपने मज़ाक़[8] की दो एक कोठियाँ यहाँ बनवा के, एक नई वज़्अ़[9] इमारत फ़रमाँ-रवाओं[10] के सामने पेश कर दी जो ब-लिहाज़ मज़बूती के नाक़िस और ब एतबार ज़ुरूरीयाते ज़िन्दगी के निहायत ही दिलफ़रेब थी। इन इमारतों की हालत बिलकुल उन खिलौनों की सी थी जो बच्चों के हाथ में दे दिये जाते हैं और रोज़ टूटते और नये ख़रीदे जाते हैं। नाक़दीने[11] योरुप तनक़ीद करते वक़्त बड़े ज़ोर शोर से एतराज़ करते हैं कि आसफ़उद्दौलः के बाद वाले फ़रमाँ-रवायाने लखनऊ का मज़ाक़े इमारत बिलकुल बिगड़ गया था और इनकी तमाम इमारतें लड़कों के खिलौने या लड़कियों के घरौंदे हैं।

---

१ पुरानी २ रुचि ३ प्रवृति ४ खदान ५ हिम्मत ६ नष्ट, बरबाद ७ रुचि ८ रुचि ९ बनावट १० आज्ञा देनेवाले ११ जो गुणों का आदर न करे।

२४८ मिस्कीन[1] की तारीफ़

हज़्रत अबू हुरैरः (र०) से रिवायत है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया, मिस्कीन वह नहीं है कि एक लुक़मा या दो लुक़मे एक खजूर या दो खजूरें उसको पलटा‡ दें। मिस्कीन वह है जो मुहतात[2]+ रहे। [बुख़ारी-मुस्लिम]

और इन दोनों की एक रिवायत में यह भी है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया, मिस्कीन वह नहीं है जो लोगों के पास आये जाये और एक या दो लुक़मा एक खजूर या दो खजूरें उसको पलटा दें। मिस्कीन वह है कि ऐसी दौलत न पाये जो उसके लिए काफ़ी हो न किसी को उसकी मुफ़्लिसी का इहसास हो और न लोगों के सामने हाथ फैलाता फिरे।

२४९ बेवा और मिस्कीन की ख़बरगीरी का सवाब

हज़्रत अबू हुरैरः (र०) से रिवायत है कि नबी (स०) ने फ़रमाया, बेवा और मिस्कीन की ख़बर लेने वाला अल्लाह के रास्ते में लड़ने वाले की तरह है। और मेरा ख़याल है कि यह भी फ़रमाया, ऐसे आ़बिद की तरह जो सुस्त न पड़े। या ऐसे रोज़ःदार की तरह जो इफ़्तार न करे[3]। [बुख़ारी-मुस्लिम]

२५० बुरी दावत

हज़्रत अबू हुरैरः (र०) से रिवायत है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया, बुरा खाना वलीमा[4] का वह खाना है कि उन लोगों को रोका जाये जो ख़ुद से आयें और उनको बुलाया जाये जो इन्कार§ करें। और जो दावत क़ुबूल न करेगा वह अल्लाह और उसके रसूल की नाफ़रमानी करेगा। और मुस्लिम, बुखारी की एक रिवायत में हज़्रत अबू हुरैरः (र०) ही से रिवायत है कि एक बात रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने यह भी फ़रमायी कि बदतरीन वलीमा का वह खाना है जिसमें अमीरों को बुलाया जाये और ग़रीबों को छोड़ दिया जाये। [बुख़ारी-मुस्लिम]

---

१ दीन, असहाय २ (मांगने में) संकचोशील ३ रोज़ः खोलने के लिए कुछ न खाए। ४ बिवाह-भोज।

---

‡ यानी इतने में उसका भला हो जायेगा।

+ यानी सवाल (मांगने) वग़ैरह से बचे।

§ यानी खाते पीते आसूदः लोगों और उमरा को बुलाया जाये और ज़रूरतमन्द ग़रीबों को रोका जाये, जैसा आम तौर पर होता है।

३५७ लड़कियों की परवरिश

हज़्रत अनस (र०) से रिवायत है कि नबी (स०) ने फ़रमाया, जो दो लड़कियों की परवरिश उस वक्त तक करे कि वह जवान हो जायें तो क़ियामत के दिन वह आयेगा (जब) मैं और वह इस तरह होंगे और आपने अपनी उँगलियों को मिला† दिया। [मुस्लिम]

हज़्रत आयशः (र०) से रिवायत है कि मेरे पास एक औरत आई। उसके साथ दो लड़कियाँ थीं। उसने मुझसे सवाल किया, मेरे पास एक खजूर के सिवा कुछ भी नहीं था, वही मैंने उसको दे दिया। उसने अपनी दोनों लड़कियो में तक़सीम कर दिया। ख़ुद कुछ न खाया और चली गयी। नबी (स०) तशरीफ़ लाये तो मैंने आपसे यह क़िस्सा बयान किया। आपने फ़रमाया, जो लड़कियों में किसी चीज़ के साथ आज़माया§ जाये और उनके साथ अच्छे सुलूक करे तो वह लड़कियाँ उसके लिए आग से पर्दा बन जायेंगी। [बुख़ारी-मुस्लिम]

हज़्रत आयशः (र०) से रिवायत है कि मेरे पास एक औरत आई, उसके साथ उसकी दो लड़कियाँ थीं। उसने मुझसे खाना माँगा, मैंने उसको तीन खजूरें दीं। औरत ने एक एक खजूर अपनी दोनों लड़कियों को दी और एक खजूर खाने की नीयत से अपने मुँह तक ले जाने लगी थी कि लड़कियों ने फिर माँगा। औरत ने खजूर के दो टुकड़े करके एक एक दोनों को दे दिया और चली गयी। मुझको उसकी हालत पर तअ़ज्जुब हुआ। मैंने इसका ज़िक्र रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम से किया। आपने फ़रमाया, अल्लाह तआला ने उन दोनों लड़कियों के ज़रीये उस पर जन्नत वाजिब की और दोज़ख से आज़ाद किया। [मुस्लिम]

३५८ यतीमों[1] ज़ईफ़ों[2] और औरतों का हक़

हज़्रत ख़ुवैलिद (र०) बिन अम्र से रिवायत है कि रसूलुल्लाह

---

† लड़कियों का परवरिश करना बड़ा मुश्किल काम है। और यों भी कि अ़रब के लोग ज़िन्दः दफ़न कर दिया करते थे। अब जो उनकी परवरिश करेगा वह अल्लाह की ख़ुशी के लिए करेगा। फिर लड़कियों से उन माली व दुनयावी फ़वायद की तवक़्क़ुअ़ भी नहीं जो लड़कों से होती है।

§ यानी उनकी परवरिश उसके ज़िम्मे हो।

---

१ अनाथों २ वृद्धों।

सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने फ़रमाया, ऐ अल्लाह ! मैं यतीमों, ज़ईफ़ों और औरतों के हक़ से डरता हूँ। [निसाई]

३९० ज़ईफ़ों की बर्कत से रिज़्क़[1]

हज़्रत मुस्अ़ब (र०) बिन सऽद बिन अबी वक़्क़ास (र०) से रिवायत है कि सऽद को ख़याल पैदा हुआ कि लोगों पर उनको फ़ज़ीलत हासिल है। नबी (स०) ने फ़रमाया तुम्हारी जो मदद की जाती है और तुमको जो रिज़्क़ दिया जाता है वह तुम्हारे ज़ईफ़ों ही की बदौलत। [बुख़ारी]

हज़्रत अबू दर्दा (र०) अुवैमिर से रिवायत है कि मैंने रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम से सुना है फ़रमाते थे कि मुझे कमज़ोरों में तलाश करो। कमज़ोरों की वजह से तुमको रिज़्क़ मिलता है और उन्हीं की वजह से तुम्हारी मदद की जाती हैं। [अबूदावूद]

औरतों के साथ हुस्ने सुलूक[2]

आयात

...व आशिरूहुन्न बिल्मऽरूफ़ ‡... ।

औरतों से भलाई के साथ मेल जोल रक्खो।

[सू० निसा, रु० ३ आ० १९]

व लन् तस्ततीअू अन् तऽदिलू बैनन्निसा'अि व लौ हरस्तुम् फ़ला तमीलू कुल्लल्मैलि फ़तज़रूहा कल्मुअ़ल्लक़त्रि ‡ व अिन् तुस्लिहू व तत्तक़ू फ़अिन्नल्लाह कान ग़फ़ूरर्रहीमन् ।

औरतों के दर्मियान हरगिज़ तुम पूरा अद्ल[3] न कर सकोगे अगरचि तुमको हिर्स हो। पस एक तरफ़ न झुक जाओ कि दूसरी को लटकी हुई छोड़ दो; और अगर तुम इस्लाह कर लो और डरो तो बेशक अल्लाह तआ़ला बख़्शने वाला है। [सू० निसा, रु० १९ आ० १२९]

‡ यानी मैं हुज्जत तमाम कर देता हूँ, अब भी जो न डरे वह ख़ुद ज़िम्मेदार है।

१ रोज़ी, जीविका २ व्यवहार में शिष्टता, सद्व्यवहार ३ न्याय।

अहादीस

२८१ औरत की फ़ित्रत[1] बदलने के दरपै न होना चाहिए[2]

हज़्रत अबू हुरैरः (र०) से रिवायत है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया, औरतों के साथ भलाई करो। औरत पसली से पैदा की गयी है। और पसलियों में सबसे ज़ियादः ऊपर का हिस्सा टेढ़ा है। और उसको सीधा करोगे तो टूट जायेगी§। और अगर उसको छोड़ दोगे तो टेढ़ी ही रहेगी। पस औरतों के साथ भलाई करो। [बुख़ारी-मुस्लिम]

२८२ औरत शरीकँ ज़िन्दगी है, उससे लौंडी-ग़ुलाम का सा सुलूक अच्छा नहीं

हज़्रत अब्दुल्लाह बिन ज़मअः (र०) से रिवायत है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ख़ुतबा दे रहे थे। आपने नाक़ये समूद[3] का और जिसने उसकी कूचें[4] काट दी थीं उसका ज़िक्र किया। आपने फ़रमाया, इज़िन्मबअ़स अशक़ाहा (जबकि क़ौम का सबसे बदबख़्त आदमी उस ऊँटनी को ज़िबह करने के लिये आमादा हुआ) की तफ़सीर फ़रमाते हुए फ़रमाया कि एक ज़बरदस्त आदमी जो अपने ख़ान्दान की क़ुव्वत व हिमायत की वजह से मज़बूत व महफ़ूज़ था इस काम के लिए तैयार हुआ।

फिर औरतों का ज़िक्र फ़रमाया और उनके बारे में बहुत नसीहतें कीं। फ़रमाया, क्या बात है कि एक वक़्त मर्द अपनी बीवी को ग़ुलाम की तरह पीटे फिर मुमकिन है उसी दिन रात को उसके साथ रहे। फिर रियाह ख़ारिज होने पर हँसने के मुतअ़ल्लिक़ नसीहत फ़रमायी कि आदमी दूसरे के इस फ़ेल पर क्यों हँसता है। जबकि उससे ख़ुद भी ऐसी हरकत होती है। [बुख़ारी-मुस्लिम]

२८३ मोमिन मर्द मोमिनः औरत से नफ़रत न करे

हज़्रत अबू हुरैरः (र०) से रिवायत है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया, मोमिन मर्द मोमिनः औरत से नफ़रत न करे। अगर उसकी एक आदत नापसन्द है तो दूसरी आदत उसको ख़ुश कर सकती है। [मुस्लिम]

---

§ यानी फ़ित्रत निसवानी[5] को तब्दील करने की अगर कोशिश करोगे तो उससे उसकी फ़ित्रत मस्ख़[6] हो जायेगी।

---

१ स्वभाव, प्रकृति २ पीछे न पड़ना चाहिए ३ समूद क़ौम की ऊँटनी ४ टाँगें ५ नारी-स्वभाव ६ विकृत (और बिगड़ जायगी)।

३६४ औरतों के हुक़ूक़

हज़्रत अम्र बिन अलअहस से रिवायत है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने हज्जतुल्वदाअ में अल्लाह की तारीफ़ और सना बयान की और फ़रमाया औरतों के साथ भलाई करो, वह तुम्हारे यहाँ बतौर क़ैदी के हैं। इसके सिवा तुम उनके किसी चीज़ के मालिक नहीं हो। अगर वह ग़लती कर बैठें तो उनसे अलग रहो और उनको ऐसा मारो कि उनको तकलीफ़ न हो। पस अगर वह मान लें तो उन पर कोई तकलीफ़ न डालो और सुन लो कि तुम्हारी बीवियों पर तुम्हारा हक़ है और तुम्हारी बीवियों का तुम पर हक़ है। तुम्हारा उन पर यह हक़ है कि तुम्हारे बिस्तरों पर उनको न बिठायें जिन को तुम नापसन्द करते हो और तुम्हारे घरों में उनको न बुलायें जिनका आना तुम्हें नापसन्द हो। और तुम पर उनका हक़ यह है कि उनके खिलाने-पहनाने में भलाई करो।

[तिर्मिज़ी]

३६६ औरतों के हुक़ूक़

हज़्रत मुआवियः (र०) बिन हैदः से रिवायत है कि मैंने रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम से अर्ज़ किया कि हमारी बीवियों का हम लोगों पर क्या हक़ है। आपने फ़रमाया कि जब तुम खाओ तो उनको भी खिलाओ और जब पहनो तो उनको भी पहनाओ और उनके मुँह पर न मारो और उन्हें गालियाँ न दो और उनको न छोड़ो मगर घर में।

[अबूदावूद]

३६६ कामिलतरीन मोमिन[1] की तारीफ़

हज़्रत अबू हुरैरः (र०) से रिवायत है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने फ़रमाया सबसे ज़ियादः कामिल मोमिन वह है जो इख़्लाक़[2] में और अपने घर वालों के लिए अच्छा हो। [तिर्मिज़ी]

३६७ बदसुलूक शौहर

हज़्रत अयास (र०) बिन अब्दुल्लाह से रिवायत है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने फ़रमाया अल्लाह की बन्दियों को न मारो। हज़्रत उमर (र०) रसूलल्लाह सल्लल्लाह अलैहि व सल्लम के पास आये और अर्ज़ किया या रसूलल्लाह ! औरतें अपने शौहरों पर बहुत दिलेर हो गयीं तो आपने उनको मारने की इजाज़त दी। पस औरतें रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम के घरों के गिर्द फिरने लगीं और अपने शौहरों

---

१ पूरी तौर पर ईमान वाला २ आचार।

की शिकायत करने लगीं। आपने फ़रमाया कि मुहम्मद (स०) के घर वालों को बहुत सी औरतों ने घेर लिया जो अपने शौहरों की शाकी हैं। उनके शौहर अच्छे लोग नहीं हैं। [अबूदावूद]

३६८ दुन्या की बेहतरीन दौलत

हज़्रत अब्दुल्लाह (र०) बिन अम्र बिन अलआस से रिवायत है कि नबी (स०) ने फ़रमाया, दुनिया एक पूँजी है। और उसकी बेहतरीन दौलत नेकबख़्त बीवी है। [मुस्लिम]

बीवी पर शौहर का हक़

आयत

अर्रिजालु क़व्वामून अलन्निसा[1]अि बिमा फ़ज़्ज़लल्लाहु बऽज़हुम् अला बऽज़िव्व बिमा अन्फ़क़ू मिन् अम्वालि हिम् ... फ़स्सालिहातु क़ानितातुन् हाफ़िज़ातुल्लिल्ग़ैबि बिमा हफ़िज़ल्लाहु ...

मर्द औरतों के मुन्तज़िम और निगराँ हैं, क्योंकि अल्लाह ने उन को फ़ज़ीलत दी है बाज़ को बाज़ पर, वह इसलिए कि वह अपने मालों को ख़र्च करते हैं। पस नेकबख़्त औरतें फ़रमाबरदार होती हैं और शौहर की ग़ैरमौजूदगी में निगहबानी करती हैं अल्लाह की हिफ़ाज़त से। [सू० निसा, रु० ६ आ० ३४]

अहादीस

३६९ शौहर की नाराज़गी

हज़्रत अबू हुरैरः (र०) से रिवायत है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि व सल्लम ने फ़रमाया, जो शौहर अपनी बीवी को बुलावे और वह न आवे उसका शौहर रात को उससे नाराज़ रहे तो फ़िरिश्ते उस पर सुबह तक लानत करते रहते हैं। [बुख़ारी-मुस्लिम]

और इन दोनों की एक रिवायत में है, जब औरत अपने शौहर से बिगड़ कर रात गुज़ारती है तो फ़िरिश्ते उस पर सुबह तक लानत करते हैं।

---

१ शिकायत करने वाली।

और एक रिवायत में है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया, क़सम है उस ज़ात की कि जिसके क़ब्ज़ए क़ुद्रत में मेरी जान है। जो मर्द अपनी बीवी को अपने पास बुलाये और औरत आने से इन्कार करे तो आसमान वाले सब उस पर नाराज़ होंगे यहाँ तक कि उसका शौहर उससे राज़ी हो।

२६८ शौहर की इजाज़त

हज़्रत अबू हुरैरः (र०) से रिवायत है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया, किसी औरत को जाइज़ नहीं कि उसका शौहर मौजूद हो और वह उसके बग़ैर इजाज़त नफ़्ल[1] के रोज़े रक्खे और उसकी बग़ैर इजाज़त दूसरों को उसके घर में बुलाये। [बुख़ारी-मुस्लिम]

२६९ तुम में का हर एक ज़िम्मेदार

हज़्रत इब्नि उमर (र०) से रिवायत है कि नबी (स०) ने फ़रमाया तुम में का हर एक ज़िम्मेदार है। हर एक से अपनी रअ़िय्यत[2] के मुतअ़ल्लिक़ पूछा जायेगा। मर्द अपने घर वालों पर ज़िम्मेदार है। औरत अपने शौहर की और उसके लड़कों की ज़िम्मेदार है। तुम सबसे उसकी रअ़िय्यत के मुतअ़ल्लिक़ पूछा जायेगा। [बुख़ारी-मुस्लिल]

२७० शौहर की इताअ़त[3]

हज़्रत तल्क (र०) बिन अ़ली से रिवायत है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया, जब मर्द अपनी बीवी को बुलाये तो वह आये अगरचि तनूर[4] पर बैठी हो। [तिर्मिज़ी-निसाई]

२७१ शौहरों की ताज़ीम की इन्तिहा

हज़्रत अबू हुरैरः (र०) से रिवायत है कि नबी (स०) ने फ़रमाया, अगर मैं किसी को सिज्दे का हुक्म देता तो औरतों को हुक्म देता कि वह अपने शौहरों को सिज्दः करें। [तिर्मिज़ी]

२७२ शौहर की रज़ामन्दी का नतीजा

हज़्रत उम्मुल मोमिनीन उम्मे सल्मः (र०) से रिवायत है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अ़लैहि व सल्लम ने फ़रमाया, जब औरत मर जाये और उसका शौहर उससे राज़ी हो तो वह जन्नत में दाख़िल होगी। [तिर्मिज़ी]

---

१ वह रोज़े जो लाज़िम न हों, सवाब के लिए रखे जायँ। २ रैयत, प्रजा, जनता (यहाँ अपने सम्बन्धित जन) ३ फरमाँबरदारी, आज्ञापालन ४ तन्दूर (यानी रोटी भी पका रही हो)।

३६४ शौहर को तकलीफ़ देना

हज़्रत मआज़ (र०) बिन जबल से रिवायत है कि नबी (स०) ने फ़रमाया बीवी जब अपने शौहर को दुनिया में तकलीफ़ देती है तो फ़राख़चश्म[1] हूरों में से जो उस की बीवी होगी, वह कहती है कि तेरा बुरा हो, वह तेरा मेहमान है, तू उसको तकलीफ़ न दे, क़रीब है कि अल्लाह तुझसे जुदा कर दे और हमारी तरफ़ कर दे। [तिर्मिज़ी]

३६५ औरतों का फ़ित्ना[2]

हज़्रत उसामः (र०) बिन ज़ैद से रिवायत है कि नबी (स०) ने फ़रमाया, मैंने अपने बाद कोई फ़ित्ना मर्दों के लिए औरतों से ज़ियादः नहीं छोड़ा। [बुख़ारी-मुस्लिम]

घरवालों पर ख़र्च

आयात

…व अलल्मौलूदि लहू रिज़्क़ुहुन्न व किस्वतुहुन्न बिल्मअ़रूफ़ि …

जिसका बच्चा है उस पर लाज़िम है (दूध पिलानेवाली औरतों का) खाना और कपड़ा भलाई के साथ। [सू० बक़र, रु० ३० आ० २३३]

लियुन्फ़िक़ ज़ू सअ़तिम्मिन् सअ़तिहि व मन् क़ुदिर अ़लैहि रिज़्क़ुहू फ़ल्युन्फ़िक़ मिम्मा आताहुल्लाहु ला युकल्लिफ़ुल्लाहु नफ़्सन् अिल्ला मा आताहा …।

और अपनी वुस्अत के मुताबिक़ ख़र्च करो जितनी गुञ्जाइश हो और जिसपर ख़र्च तंग हो गया हो तो उसको चाहिए कि उस चीज़ को ख़र्च करे जो उसको अल्लाह ने दिया। [सू० तलाक़, रु० १ आ० ७]

व मा अन् फ़क़्तुम्मिन् शैअिन् फ़हुव युख़्लिफ़ुहू

और अल्लाह किसी को तकलीफ़ नहीं देता मगर उसकी वुस्अ़त के मुताबिक। [सू० सबअिन् रु० ५ आ० ३९]

तुमने किसी चीज़ से जो कुछ ख़र्च किया उसका निअ़मल्बदल अ़ता होगा।

---

१ दिल खोलकर सुख देने वाली २ फ़िसाद, उपद्रव (का कारण)।

सरलार्थ—रामचन्द्र के उस धनुष की प्रत्यंचा को बलपूर्वक खींचने से वह ऐसे टूट गया जैसे किसी मल्ल के हाथ में पड़कर एरण्ड वृक्ष का काण्ड टूट जाता है। धनुष के भंग का प्रचंड शब्द ब्रह्माण्ड में पूर्ण हो गया और जिस प्रकार प्रलय के समय चार मेघ इकट्ठे होकर गर्जन करते हैं, उससे भी वह शब्द बढ़ गया। स्वर्ग में देवता लोग मूर्च्छित हो गये। फिर सचेत होकर उन्होंने सोचा, "इस समय अमृत ने ही हमलोगों के प्राण बचाये। (अमृत भोजन के कारण ही हम लोग जीवित रह गये। नहीं तो इस शब्द के कारण अभी जान से हाथ धो बैठते।)" (३९)

विगूढ़वशे—बलपूर्वक; एरण्डदण्ड—रेंड वृक्ष का काण्ड; चार मेघ—आवर्त्तक, संवर्तक, द्रोण और पुष्कर; ताकु गर्ज्जिला—उससे (चार मेघों के गर्जन से) बढ़ गया; विवुधे—देवता लोग; बेळे—इस समय। (३९)

बसुधाभृते[1] टळिले बसुधाभृते[2] चळिले
सेहि तरळित धातु धारा हेलाटि।
बळि-वर-वळी वर आन कि होइब मोर
भावे शतकोटि[1] शतकोटि[2] त वृष्टि।
विचित्र कि नरे-किन्नरे।
विचेतन हेले य़हिँ नारकि - नरे। ४०।

सरलार्थ—धनुष-भंग के शब्द को सुनकर उपस्थित नृपमण्डली (भय से मूर्च्छित होकर) ढलपड़ी और सब पर्वत काँपने लगे। उन पर्वतों से तरल गैरिक धातु धारा के मिस (बहाने से) बहने लगी। वीरश्रेष्ठ राजा बलि ने वह शब्द सुनकर सोचा, "क्या एक साथ ही सौ करोड़ बज्रों की वृष्टि हुई है? मेरा चिरंजीवी होने का वर क्या विफल हो जायगा? (बलिराजा को अपने विनाश की आशंका हुई। इससे शब्द के पाताल में फैलने की सूचना मिली।) जिस शब्द से नरक में यन्त्रणा भोगने वाले पापी लोग भी अपनी यन्त्रणा को भूलकर स्तम्भित हो गये, उससे नर-किन्नरों के स्तम्भित होने में क्या आश्चर्य? (४०)

वसुधाभृते[1]—नृपति लोग; वसुधाभृते[2]—पर्वत सब (यमक); बळीवर—वीरों या बलवानों में श्रेष्ठ; आन—दूसरा; शतकोटि[1]—सौ करोड़; शतकोटि[2]—बज्र (यमक); विचेतन—स्तब्ध, स्तम्भित; नारकि नरे—नरक में पतित लोग। (४०)

विभ्रष्ट य़े ब्रह्मचारी ध्यान तहिँकि विचारि
विभ्रष्ट य़े ब्रह्मा चारिमुखुँ वेदहिँ ।
विखण्डन चण्डी[1]-मान ईशरे[1] स्नेही न घेन
विखण्डन चण्डी[2]-मान ईशरे[2] स्नेही ।
बाहारन्ते ब्रह्माण्ड फुटि ।
विरब समस्तङ्कर ज्ञान प्रकटि । ४१ ।

सरलार्थ—उस शब्द से जो ब्रह्मचारियों का ध्यान भग्न हुआ, उस पर हम क्या विचार करें ? ब्रह्मा के चार मुखों से वेद भी विभ्रष्ट हुआ । (ब्रह्मा वेदपाठ नहीं कर सके ।) कोपिनी स्त्री का मान विशेष रूप से खण्डित होने पर वह अपने नायक के प्रति स्नेह-युक्त हुई । इसमें कौन सी बड़ी बात है ? यहाँ तक कि डर के मारे पार्वती ने मान-परित्याग करके स्नेह से शिव को गले लगाया । वह विशेष शब्द ब्रह्माण्ड को बेधकर निकलते ही अचेत प्राणियों को चेतना-लाभ हुआ । (४१)

चण्डी[1]—कुपिता रमणी; ईश[1]—पति, नायक; चण्डी[2]—पार्वती (यमक); ईश[2]—शिव (यमक); विरव—विशेष शब्द । (४१)

वीरेश्वर करि पूजा कला से मिथिला राजा
बसाइ रघूत्तमङ्कु सिंहासनरे ।
विहायसे देवे आसे रामदर्शन लाळसे
शब्द शुणि रावण मिळिला सेठारे ।
वीर से[1] बाहुड़े विरसे[2] ।
बयाळिश पदे छान्द उपेन्द्र भाषे । ४२ ।

सरलार्थ—धनुर्भंग करने से रामचन्द्र जी को मिथिला-राजा जनक ने सिंहासन पर बैठाया और वीर-श्रेष्ठ के रूप में उनकी पूजा की । उस समय रामचन्द्र जी के दर्शन की अभिलाषा से देवता लोग आकाश-मार्ग में आये । धनुभंग का शब्द सुनकर रावण भी वहाँ आ मिला । परन्तु यह सुनकर कि रामचन्द्र ने धनुष भंग किया है वह वीर उदास मन से लौट गया । उपेन्द्र भञ्ज ने बयालिस पदों में यह छान्द कहा । (४२)

वीरेश्वर—वीरश्रेष्ठ; रघूत्तम—रामचन्द्र; विहायसे—आकाश मार्ग में; वीर से[1]—वह वीर (रावण); विरसे[2]—विषाद से (यमक); (४२)

॥ इति नवम छान्द ॥

दशम छान्द

राग—रसकुल्या

विभूषण[1]-पुष्पे य़ा कान्ति जाण। विभूषण[2] करि कन्याकु आण।
बारणशिरे पद देइ आसु। बरण करि राम मन तोषु से।
बोलि देले कउशिक य़े।
बोळि देला प्राये गोळि चन्दनकु होइले रघुवंशिक य़े। १।

सरलार्थ—विश्वामित्र ने जनक से कहा, "हे विभु (विभो)! सनफूल की जैसी कान्तिवाली सीता को, जो अभी तक कन्या (अविवाहिता) है, उसे विशेष रूप से मण्डित करके (अथवा स्वभाव-सुन्दरी सीतादेवी का और भूषण-विधान न करके) यहाँ ले आओ। विघ्नों के विनाश के लिए प्रत्येक शुभ कर्म में पहले गणेशजी की पूजा की जाती है। सीता भी विघ्नराज गणेश के निमित्त पदार्थ (पूजोपहार) अर्पण करके यहाँ आवे (अथवा विघ्नों के मस्तकों पर पदाघात करके यहाँ आवे) और रामचन्द्रजी को वरण करके उनके मन को सन्तोष-प्रदान करे।" विश्वामित्र के इन वचनों ने रामचन्द्रजी के हृदय को शीतल तथा आनन्दित किया, मानो किसी ने उन के शरीर पर तरल चन्दन का लेपन कर दिया हो। अर्थात् विश्वामित्र के वचन सुनकर रामचन्द्रजी अत्यन्त प्रसन्न हुए। (१)

विभु—हे विभो! ; षण-पुष्पे[1] या कान्ति—सन फूलों की जैसी कान्तिवाली (सीता); विभूषण[2]—विशेष रूप से मण्डन (अथवा स्वभाव-सुन्दरी होने से विवर्जित-भूषण) (यमक); वारणशिरे—वारण (हाथी) के जैसे शिर वाले अर्थात् विघ्नेश गणेश (वारण अर्थात् विघ्नों के सिरों पर); कउशिक—विश्वामित्र; (१)

विधान होइछि य़ा नाम सीता। वर्ण्णने शोभा अति मधुरता।
बुड़ि नेत्र आज हेब पवित्र। विशेषे कर्षि देइ हृद-क्षेत्र से।
बुणिलाणि स्नेह-बीज य़े।
विचारु एमन्त जनक सम्मत शुणिले सखी-समाज य़े। २।

सरलार्थ—रामचन्द्र ने अपने मन में सोचा, उस कन्या का नाम विधानानुसार जो 'सीता' हुआ है, वह वास्तव में सत्य है। क्योंकि उसके शोभा वर्णन के समय सुनने वाले मधुर रसका आस्वादन करते हैं, मानो

खाँड (या शक्कर) भक्षण कर रहे हों। फिर जो स्वर्गंगा में स्नान करता है, उसका शरीर पवित्र होता है। सीता-रूपणी गंगा के लावण्य-रूपी जल में गोता लगा कर मेरे नेत्र आज पवित्र होंगे। विशेषतः लांगल की नोक से खेत जोतने की तरह उसने मेरे हृदय-रूपी क्षेत्र को जोतकर उस पर स्नेह के बीज बोये हैं। इस प्रकार वह 'सीता' नाम-धारण-पूर्वक अपने नाम की सार्थकताएँ प्रतिपादन कर रही है।" रामचन्द्र के इस प्रकार विचार करते समय सखियों ने सुना कि जनकजी ने विश्वामित्र की बात को स्वीकार कर लिया है। (२)

या नाम—जिसका नाम; सीता—सीतादेवी, शक्कर या खाँड, स्वर्गङ्गा, लाँगल की नोक या रेखा (श्लेष); बुणिलाणि—बोये हैं; एमन्त—इस प्रकार, ऐसा; शुणिले—सुना। (२)

बेशकारी डाकि पीठे बसाइ। बेश बिरचिले चित्त रसाइ।
बिम्ब देखाइले छामुरे केहि। बिम्बाधरी आड़म्बरकु बहि से।
बिबन्ध कले कुन्तळ ये।
विचित्र मणि नीळमणि प्रतिभा ऊर्ध्व, प्रकाशित तळ ये। ३।

सरलार्थ—सखी-समूह ने वेशविन्यासनिपुण स्त्रियों को बुला कर सीताजी को आसन पर बैठाया और रामचन्द्रजी का मनोरंजन करने के योग्य वेश की रचना की। वेश-रचना-कारिणियों में से किसी ने सीता के सम्मुख आईना दिखाया। आईने ने प्रतिविम्ब के मिस विम्बाधरी सीताजी के सौन्दर्य को अपने शरीर में धारण किया। इसके बाद किसी ने जूड़ा बाँधने के लिए केशों को विमुक्त किया तो उनके पृष्ठदेश पर केश बिलम्बित हुए। कवि विस्मित होकर उत्प्रेक्षा कर रहे हैं, केश रूपी नीलकान्त मणियों की यह प्रभा क्या ऊपर से नीचे की ओर प्रकाशित हो रही है! (नीलकान्तमणि की प्रभा नीचे से ऊपर की ओर उठती है। परन्तु यहाँ उसका वैपरीत्य सूचित होने पर कवि विस्मित हो कर यह उत्प्रेक्षा कर रहा है।) (३)

पीठ—आसन; बिम्ब—आईना, आरसी; छामुरे—सम्मुख, आगे; केहि—किसी ने; बिम्बाधरी—बिम्बोष्ठी, बिंबाफल के समान होठोंवाली; कुन्तळ—केश, बाल; विचित्र मणि—आश्चर्य समझते हैं। (३)

बिलेपि अळ्प तइळ शामळि। बारणदन्त प्रसाधनी चाळि।
विभावसुजा कल्लेळरे भासे। बिकशि आसिला कुमुद कि से से।
बान्धिले जूड़ा यतने ये।
बन्दी होइला मर्कत कुबेणीरे बन्दी हेबे मन-मीने ये। ४।

सरलार्थ—वेश-रचना-कारिणियों ने केशों में थोड़ा-सा तेल लगाकर उनको संवार दिया। इसके बाद उन पर हस्ती-दन्त-निर्मित कंघी चलाते समय ऐसा प्रतीत हुआ मानो यमुना की लहरों में विकासोन्मुख कुमुद उतरा रहा हो। (केश यमुना के गाढ़े कृष्ण वर्ण के जल के समान अतिशय काले तथा उसकी लहरों के समान कुंचित हैं। जल में कुमुद की तरह केशों पर सफ़ेद तथा सुन्दर कंघी चल रही थी।) अनन्तर यत्नपूर्वक उन्होंने जूड़ा बाँधी। जूड़ा-रूपी मरकत-मणियों की बंधनोपयोगी मत्स्यधानी में दर्शकों के मन-रूपी मीन बन्दी होंगे। (४)

तइळ—तैल, तेल; शामळि—संवार करके; वारणदन्त—हस्तीदन्त, हाथी का दाँत; प्रसाधनी—कंघी; विभावसुजा—सूर्यसुता, यमुना; कल्लोळरे—तरंगों में, लहरों में; भासे—उतराता है; बन्दी होइला—बन्धनोपयोगी; मरकतकुबेणी—मर्कत से बनी मत्स्यधानी, मछली रखने का झाबा। (उत्प्रेक्षा) (४)

बितुळ मथामणि माणिक्यर। विभाग सीमन्त सिन्दूरगार।
बन्दवस्ते भिड़ि पाट सूत्ररे। विधुन्तुद गळ मित्र हस्तरे से।
विधिवशे किवा पड़ि य़े।
बकुळ-गर्भक सुधा उद्गारुछि भयरु न देइ छाड़ि य़े। ५।

सरलार्थ—अनन्तर उन्होंने सीताजी के केशों का विभाग करते हुए माँग में सिन्दूर की रेखा खींची। कपाल पर अतुलनीय चूड़ामणि (बेंदा) पहना कर जूड़ा की जड़ को पट्ट-सूत्रों से दृढ़ता से बाँध दिया। उन रक्तवर्ण के पट्ट-सूत्रों के बीच काले रंग के जूड़े को देख ऐसा प्रतीत हुआ, मानो सूर्य के कवल (ग्रास) में राहु का गला दैववश पड़ गया हो! सूर्य इस भय के हेतु उसे नहीं छोड़ते कि कहीं छोड़ देने पर यह राहु मुझे फिर न निगल ले। इस प्रकार राहु का कण्ठ रुद्ध हो जाने से ऐसा प्रतीत होता था मानो वह जूड़ा-मध्यस्थित वकुल पुष्पों की माला के मिस अमृत उगल रहा है! (राहु काला, केशजूड़ा काला; सूर्य लाल तथा रेशम की डोरी लाल; पट्ट-डोरी-रूपी सूर्य जूड़ा-रूपी राहु को निगलने से वह जूड़ारूपी राहु मौलसिरी फूलों-रूपी अमृत उगल रहा है।) (५)

वितुल—अतुल्य; सीमन्त—मस्तक की मध्यरेखा, माँग; बन्दवस्ते—दृढ़ता से; भिड़ि—बान्धकर; विधुन्तुद—राहु; मित्र—सूर्य; वकुलगर्भक—केशमध्यस्थित मौलसिरी फूलों की माला; सुधा-अमृत; उद्गारुछि—उगल रहा है (उत्प्रेक्षा)। (५)

विभूषि किआपत्री मोतिजाली । विपिने तमाळर किवा झळि ।
बन्धन कृत पाश जाल दुइ । विशिख झराकाठिकि देखाइ से ।
बक्र-डउँरा हिँ धनु य़े ।
बिबिध धैर्य्य-मृगकु बिन्धिबाकु एठारे करे अतनु य़े । ६ ।

सरलार्थ—इसके बाद वेश-रचना-कारिणियों ने स्वर्ण किआपत्री तथा मुक्ताजाली नामक शिरोभूषण केशों में पहनाये । उन्हें देखकर ऐसा प्रतीत हुआ, मानो कन्दर्प ने केशोंरूपी तमाल-वन में धैर्यरूपी मृग को उक्त अलंकार-द्वय के सदृश फाँस या जाल से बाँधकर उसका वध करने को वक्रडउँरा-रूपी धनुष पर झराकाठि-रूपी शर सन्धाना हो । (अर्थात् उन भूषणों की सुन्दरता देखते ही देखने वाले का धैर्य-लोप हो जाता है ।) (६)

किआपत्री—केवड़े के पत्राकारविशिष्ट स्वर्णनिर्मित शिरोभूषण विशेष; मुक्ताजाली—मोतियों की जाली, शिरोभूषण विशेष; विशिख—शर; झराकाठि—जूड़ा की भूषण-काष्ठिका; वक्रडउँरा—जूड़ा का धनुषाकृति-विशिष्ट आभूषण विशेष; अतनु—कन्दर्प । (उत्प्रेक्षा तथा रूपक अलंकार) (६)

बिबिध कुसुममाळा खञ्जन । व्योमे इन्द्रधनु-प्रभा गञ्जन ।
बिहुँ चन्द्रझुम्पि झिलिमिलिका । विभावरी-प्रान्त स्वत अळका से ।
बेनि सप्तऋषि शशी य़े ।
विमोहित करे मन एकाबेळे पड़िला पराये खसि य़े । ७ ।

सरलार्थ—अनन्तर उन्होंने सिर पर नाना वर्णों के फूलों से निर्मित मालाएँ सजायीं । उस शोभा ने आकाश के इन्द्रधनुष की शोभा की निन्दा की । फिर चन्द्रझुम्पी तथा झिलमिली आदि भूषण सजा देने से वे कुंचित केशों के प्रान्त-भाग में झूलकर अपने-अपने सौन्दर्य से मन को यों मुग्ध करने लगे मानो निशावसान के समय चन्द्र तथा सप्तर्षि दोनों एक साथ आसमान से खिसक पड़े हों । (७)

गञ्जन—निन्दा; बिहुँ—विधान करने से; चन्द्रझुम्पि—अर्द्धचन्द्राकृतिविशिष्ट कान का भूषण (ear-ring); झिलिमिलिका—स्त्रियों के सीमन्तों पर पहनने का जालीदार भूषण विशेष, झिलिमिली; विभावरी प्रान्त—रात के अन्तिम आग में; बेनि—दोनों; सप्तऋषि—मरीचि, अंगिरा, अत्रि आदि सप्तर्षि, (झिलमिली रूपी सप्तर्षि); शशी—चन्द्र (चन्द्रझुम्पि-रूपी चन्द्र); एकाबेळे—एक साथ; (व्यतिरेक तथा उपमा) (७)

बेण्टुला श्रवणे सखी खञ्जिले । बज्रे व्याकुळ अग्नि जात कले ।
बिहित फुल तहिँ स्फुट करि । बाळीकि भज बोलि बाळी ठारि से।
बन्दिआ चक्र भंगुर य़े ।
बिच्छेदि बुड़ाइदेब य़ोगी-य़ोग य़न्त्रित दुइ प्रकार य़े । ८ ।

सरलार्थ—अनन्तर सखियों ने सीता के कानों पर मल्लीकढ़ी नामक गहने पहनाये । उन मल्लीकढ़ियों ने बज्र में व्याकुलता-रूपी अग्नि को उत्पन्न किया । (बज्र की शोभा उनकी शोभा से समकक्ष न होने पर वह सन्तापाग्नि से दग्ध हुआ ।) तदनन्तर यह जताने के लिए कि कली के खिलने पर फूल होता है, सखियों ने कर्णफूल पहनाये । यह उचित ही हुआ ! फिर जो 'बाली' नामक कर्णभूषण पहनाये, उनके द्वारा यह संकेत दिया कि इस बाली (बाला) को भजो । इसके बाद 'बन्दिआ' नामक कर्णालंकारों को कानों के निम्न प्रदेशों में सजा दिया । वे गहने चक्र के सदृश योगियों के योग का छेदन करके उनके मन को भँवर में डुबा देंगे । इस प्रकार दोनों प्रकारों में बन्दियेरूपी चक्र (सुदर्शन चक्र तथा भँवर) शृंखला सहित अपना विधान संपादन कर रहे हैं । (८)

बेणुला—मल्लीकढ़ी नामक कर्णाभूषण विशेष ('मल्ली कलिका' शब्दज); श्रवणे—कानों में; वाळीकि—युवती को; बाळी—सोने या तार का छल्ला जो कान में पहना जाता है, यमक; ठार—संकेत या इशारा करके; बन्दिआ—कर्णाभूषण विशेष; यन्त्रित—शृंखलित । (८)

विधायक चित्र भाल पटरे । वर्ण्णक छळे कस्तूरी सिन्दूरे ।
विश्वकु तिळके करिब वश । विधृत ए घेनि तिळक भाष से ।
बेनि हीरा अवतंस य़े ।
बर्णि आसुँ मूक किवा गुरु कवि सेहि चित्रकर य़श य़े । ९ ।

सरलार्थ—सखियों ने सीताजी के ललाट-पट पर अंगरागों के मिस कस्तूरी तथा सिन्दूर से तिलक का विधान किया । वह तिलक का चित्र अपनी तिल मात्रा से (अथवा बहुत थोड़े ही समय में, एक ही मुहूर्त्त में) संसार भर को वशीभूत कर देगा । इसलिए उस टीका का नाम तिलक बन पड़ा है । सीता के कानों में भूषित दोनों कर्णाभूषणों को देखने पर ऐसा प्रतीत होता है मानो बृहस्पति और शुक्र उसी तिलक-चित्र की शोभा का वर्णन करने को आये थे, परन्तु वर्णन करने में असमर्थ होकर मूक रह गये । (मूक हो दोनों कानों में कर्णभूषणों के रूप में स्थित हो कर रह गए ।) (९)

वर्णक—लेपनद्रव्य (चन्दन, कस्तूरी आदि का); तिळके—तिल मात्रा से, एक मुहूर्त्त में; वेनि—दोनों; हीरा अवतंस—हीरकयुक्त कर्णाभूषण; गुरु—बृहस्पति; कवि—शुक्र; सेहि—उसी; चित्रक का यश—तिलककी शोभा का गौरव। (उत्प्रेक्षा) (९)

बयसी माणिक्य गुणा मुकुता। बेनिपुटे देउँ नासा शोभिता।
वदनकु चाहिँ चन्द्रकु चाहिँ। विमळ एहि त समळ सेहि य़े।
व्यभिचारी हेले परा से।
विधिरे आरद्रा-चित्तरे आरद्रा रोहिणी ए बेनि तारा य़े। १०।

सरलार्थ—समवयस्का सखियों ने नाक के दोनों छिद्रों में माणिक्य के छल्ले तथा मोती के नकबेसर आदि पहनाये। तो नाक बहुत सुन्दर दिखाई दी। सीता के मुख व चन्द्र को देखने पर मन में यह प्रतीत होता है कि मुख विमल (निर्मल, अर्थात निष्कलंक) है, जब कि चन्द्र समल (मलयुक्त, अर्थात् सकलंक) है। उक्त माणिक्य तथा मुक्ता के दोनों नासा-भूषण आर्द्रा तथा रोहिणी नक्षत्रों के सदृश हैं, जो क्रमशः लाल तथा शुक्ल वर्ण के हैं। चन्द्र की इन दोनों पत्नियों ने मानो चन्द्र को सकलंक देखकर उसको त्याग दिया हो और सीताजी के निष्कलंक मुख-मण्डल के दर्शन से द्रवीभूत हो उसे पति के रूप में वरण किया हो। इस प्रकार चन्द्र की ये दोनों पत्नियाँ मानो व्यभिचारिणी हो गई हों। (१०)

माणिक्यगुणा—लालवर्ण रत्नविशेष के छल्ले जो चन्द्र की रक्तवर्णा पत्नी आर्द्रा के समान है; मुकुता—शुक्लवर्ण मोती की नथ जो चन्द्र की शुक्लवर्णा पत्नी रोहिणी के समान है; व्यभिचारी—कुलटा स्त्री; आद्रा—(आर्द्रा) द्रवीभूता, नक्षत्र विशेष; रोहिणी—नक्षत्र विशेष (यमक तथा व्यतिरेक)। (१०)

बल्लभ रथे य़ा केतु मकर। वल्लभी रथे ता मकरीकर।
विवेकी सजनी सौन्दर्य्य गोळे। बळे छड़ाइ देखाइ कपोळे से।
बिन्दु ए मृगमदरे य़े।
बिहे के चिबुके मधुमक्षिका ए स्थकित संग भंगरे य़े। ११।

सरलार्थ—"जिस (रति) के वल्लभ (स्वामी) अर्थात् कन्दर्प के रथ पर मकर-चिह्नित पताका शोभायमान होती है, उस रति की वल्लभी (स्वामिनी, प्रभु, मालकिन) सदृशा सीता के रथ (शरीर) में " 'मकरी' का चित्र अंकित करो"—यह कहती हुई सखियाँ जब 'मकरी' चित्र सीता के शरीर पर लिखने जा रही थीं, तब सौन्दर्य-ज्ञान के बारे में उनमें वाद-विवाद छिड़ गया।

पाववीन सिद्धी। महाराक्षस वधोनि युद्धीं। गाधितनय तोषवीन। ११२ शिवचाप परम प्रचंड। मोडूनि करीन दुखंड। माझी ज्ञानशक्ति जे अखंड। पण जिंकोनि आणीन ते। १३ जेणें निःक्षत्री केली अवनि पूर्ण। त्याचा गर्व हरीन न लागतां क्षण। मी एकपत्नीव्रत रघुनन्दन। पितृवचन पाळीन मी। १४ मी सेवीन घोर विपिन। परिवारेंसीं त्रिशिरा खर दूषण। क्षणमात्रें टाकीन वधोन। अग्नि तृण जाळी जेवीं। १५ रिसां वानरांहातीं। लंका घालीन पालथी। माझा वज्रदेही मारुती। परम पुरुषार्थी महावीर। १६ क्षणें जाळील राक्षसनगर। शत्रूंचीं शिरें छेदीन अपार। पाषाणीं पालाणोनि समुद्र। लंकापुर घेईन मी। १७ कौसल्या हांक फोडी दारुण। लंकेपुढें माजवीन रण। महाढिसाळ कुंभकर्ण। टाकीन छेदून क्षणार्धें। १८ सहपरिवारें वधोनि दशशिर। बंदींचे सोडवीन सुरवर। माझा बिभीषण प्रियकर। छत्र धरवीन तयावरी। १९ स्वपदीं स्थापोनि निजभक्त। मी अयोध्येसी येईन रघुनाथ। आधि व्याधि

अति प्रचण्ड शिवधनुष को तोड़कर मैं उसके दो टुकड़े बना डालूँगा और प्रण (बाज़ी) को जीतकर अपनी जो अखण्ड ज्ञान शक्ति है, उसे ले आऊँगा। ११३ जिसने समूची पृथ्वी को क्षत्रिय-हीन किया उसका गर्व क्षण की देर न लगते छुड़ा दूँगा। मैं एकपत्नी-व्रती रघुनन्दन राम, पिता के वचन का पालन करूँगा। १४ मैं भीषण वन में निवास करूँगा। (और) जैसे आग घास को जलाती है, वैसे मैं क्षण मात्र में त्रिशिरा, खर और दूषण का परिवार सहित वध कर डालूँगा। १५ रीछों और बन्दरों के हाथों मैं लंका को पराजित करूँगा। मेरा परम पुरुषार्थी महावीर वज्रदेही मारुति राक्षसों की नगरी लंका को क्षण में जला डालेगा। पत्थरों से समुद्र को बाँधकर मैं अनगिनत शत्रुओं के सिर तोड़ डालूँगा। और लंकानगरी को (जीत) लूँगा।' १६-१७ कौसल्या भीषण गर्जन करती है—'लंका के सामने (निकट) युद्ध ठान (मचा) दूँगा। अतिशय प्रचण्ड (शरीरधारी) कुम्भकर्ण को क्षणार्ध में काट डालूँगा। १८ मैं दशशिर रावण का परिवारसहित वध करूँगा; मैं बन्दीशाला (कैदखाने) में रखे हुए श्रेष्ठ देवों को मुक्त करूँगा; विभीषण मेरा प्रिय (भक्त) है, उस पर मैं छत्र धरवा दूँगा। १९ उसके अपने उचित स्थान पर अपने भक्त (विभीषण) की स्थापना करके मैं रघुनाथ अयोध्या (में) आ जाऊँगा; (और) अपनी प्रजा को आधि (दुःख-चिन्ता), व्याधि (बीमारी), बुढ़ापा

जरा मृत्य । यांविरहित करीन प्रजा । १२० स्त्रीपुरुषनपुंसकभेद। यांवेगळा मी ब्रह्मानंद । मायाचक्रचाळक शुद्ध । निष्कलंक अभेद पैं । २१ मी प्रळयकाळासी शासनकर्ता । आदिमायेचा निजभर्ता । कर्ता हर्ता पाळिता । मजपरता नसेचि । २२ मी अज अजित सर्वेश्वर । मीच नटलों चराचर । धरोनि नाना अवतार । मी मजमाजी सामावें । २३ ऐसें ऐकतां दशरथ । म्हणे हे भूतें घेतली यथार्थ । फांटा फुटलासे बहुत । बडबडत भलतेंचि । २४ पंचाक्षरी आणा पाचारून । महाराज सद्गुरु ज्ञानघन । तो सरसिजोद्भवनंदन । बोलावून आणा वेगीं । २५ जेणें दर्भावरी धरिली अवनी । कमंडलु ठेविला सूर्यासनीं । इंद्रसभेसी नेला वासरमणी । अद्भुत करणी जयाची । २६ वसिष्ठ आला धांवोन । राजा दृढ धरी चरण । म्हणे कोसल्येसारिखें निधान । भूतें संपूर्ण ग्रासिलें । २७ म्यां याग केला सायासीं । कीं पुत्र होईल कौसल्येसी । तों मध्येंच

और मृत्यु से रहित (मुक्त) बना दूँगा । १२० स्त्रीत्व, पुरुषत्व, नपुंसकत्व जैसे भेद के परे मैं ब्रह्मानन्द, माया के चक्र का चलानेवाला, शुद्ध, निष्कलंक, अभेद्य (राम) हूँ । २१ मैं प्रलय-काल के लिए शासन-कर्ता हूँ; आदि-माया का अपना पति हूँ; मुझसे भिन्न कोई कर्ता, हर्ता (हरण करनेवाला) पालनकर्ता नहीं है । २२ मैं अज (अजन्मा), अजित, सर्वेश्वर हूँ । मैंने ही चराचर का वेष (रूप) धारण किया है । नाना अवतार धारण करके मैं मुझ अपने में ही समा जाता हूँ ।' २३ ऐसा सुनकर दशरथ ने कहा—'इसे तो भूत ने सचमुच वश में कर लिया (है) । (पिशाच आदि के प्रभाव से) यह बहुत पागल हुई है, (इसलिए) मनमाने (निरर्थक) बड़बड़ा रही है । २४ (भूत-पिशाच के प्रभाव को झाड़-फूँककर दूर करनेवाले किसी) ओझा को बुला लाओ । ब्रह्माजी के पुत्र वसिष्ठ को—ज्ञानधन सद्गुरु महाराज को शीघ्र बुला लाओ । २५ जिन्होंने दर्भ (की नोक) पर पृथ्वी को धर रखा, सूर्य के आसन पर कमण्डलु रखा, इन्द्र की (राज) सभा में जो सूर्य को ले गये, जिनकी करनी ऐसी अद्भुत है, वे वसिष्ठ दौड़ते हुए आये, तो राजा ने उनके पाँव दृढ़ता से पकड़ लिये; (और) कहा—'कौसल्या जैसे (रत्न) भण्डार को (किसी) भूत-पिशाच ने पूर्णतः ग्रस (बुरी तरह पकड़) लिया (है) । २७ मैंने प्रयत्न पूर्वक इसलिए यज्ञ किया कि कौसल्या के पुत्र (उत्पन्न) हो; परन्तु बीच में यह बुरी स्थिति हो उठी । हे ऋषि ! मैं क्या करूँ ?' २८ इसपर

हे विवशी । उठली ऋषि काय करूं । २८ मग म्हणे ब्रह्मसुत । इच्या पोटा येईल रघुनाथ । तीस गोष्टी हे विपरीत । कालत्रयीं घडेना । २९ अंधकूपीं पडेल तरणी । कोरान्न मागेल चिंतामणी । सुधारस गेला कडवटोनी । हें कालत्रयीं घडेना । १३० क्षुधेनें पीडिला क्षीरसागर । सुरतरूसी येईल दरिद्र । तीव्र तपेल रोहिणीवर । हें कालत्रयीं घडेना । ३१ अंधत्व आलें अग्नि-नेत्रीं । ताम्रनाणें मागे कनकाद्री । अंत्यज नांदेल श्रोत्रिय-मंदिरीं । हें कालत्रयीं घडेना । ३२ असो वसिष्ठ कौसल्येजवळी । येऊनि विलोकी तये वेळीं । तंव ती श्रीरामरूप जाहली । अंतर्बाह्य समूळ । ३३ न दिसे स्त्रियेची आकृती । धनुष्यबाण घेऊनि हातीं । आकर्ण नयन विराजती । देखे मूर्ति जगद्वंद्य । ३४ मूर्ति पाहतां आनन्दघन । सद्गद जाहला ब्रह्मनन्दन । अष्टभाव दाटले पूर्ण । गेला विसरोनि देहभाव । ३५ वसिष्ठ कौसल्या

वसिष्ठ ने कहा—'इसके पेट से रघुनाथ (राम) उत्पन्न होंगे । (इसलिए) इसके लिए ऐसी विपरीत बात भूत-वर्तमान-भविष्य–त्रिकाल में न (घटित) होगी । २९ अंधकूप (अंधकार से भरे-पूरे कुएँ) में सूर्य गिर पड़ेगा ? (दूसरों की चिन्ता दूर करनेवाला) चिन्तामणि नामक रत्न सूखे अन्न की भिक्षा माँगेगा ? अमृत रस कड़ुआ हो जाएगा ?—ये बातें असम्भव हैं–ये त्रिकाल में नहीं होंगी । क्षीर समुद्र भूख से पीड़ित हो गया (जाएगा) ? कल्पवृक्ष को दरिद्रता आएगी ? रोहिणीपति चन्द्रमा तीव्रता से तप्त हो जाएगा ?–ये घटनाएँ त्रिकाल में घटित नहीं होंगी । अग्नि की आँखों में अन्धत्व आ गया (जाएगा) ? सुवर्ण (मेरु) पर्वत (भिक्षा में) ताँबे का सिक्का माँगता है ? अन्त्यज (अछूत) श्रोत्रीय ब्राह्मण के घर में निवास और निर्वाह करेगा ?—ये बातें त्रिकाल में नहीं होंगी । (ये बातें असम्भव हैं; वैसे ही कौसल्या का पिशाचों द्वारा ग्रस्त होना असम्भव है ।' १३०-३२

अस्तु । उस समय कौसल्या के पास आकर वसिष्ठ ने देखा तो (उसे दिखायी दिया कि) वह अन्तर्बाह्य मूल सहित (पूर्णतः) राम रूप हो गयी (है) । ३३ (उन्हें दिखायी दिया कि वहाँ) स्त्री की आकृति नहीं दिखायी दे रही है; (परन्तु) हाथ में धनुष-बाण लिए हुए जगन्वंद्य भगवान् (राम) की मूर्ति (उन्होंने) देखी । उसके आकर्ण (कानों तक फैले हुए अर्थात् विशाल) नयन शोभायमान थे । ३४ उस आनन्दघन (राम की) मूर्ति को देखते ही वसिष्ठ गद्गद हो उठे । स्तम्भ, स्वेद, रोमांच आदि आठों भाव पूर्णतः उमड़ आये और वे देह का भान

ते अवसरीं । मुरालीं ब्रह्मानन्दसागरीं । दशरथ परम अंतरीं । घाबरा जाहला नेणोनियां । ३६ वसिष्ठासारिखा महामुनी । भूतें झडपिला ये क्षणीं । या भूताची करिता झाडणी । कोणी त्रिभुवनीं दिसेना । ३७ मी हतभाग्य संपूर्ण । मज कैंचें पुत्र संतान । कौसल्याही गेली झडपोन । ब्रह्मानन्दें मूर्च्छित । ३८ निरपराध वधिला श्रावण तेणें हें दुःख दारुण । ऐसा तो महाराज अजनन्दन । जळाला पूर्ण अंतरीं । ३९ तों स्वानन्दलहरी जिरवून । वसिष्ठें उघडिले नयन । राजा धांवोन धरी चरण । आनन्द न माय अंतरीं । १४० रायासी कैसी परी जाहली । कीं पूरीं बुडतां नौका आली । अंधकूपीं पडतां तात्काळीं । हस्त सूर्यें दीधला । ४१ सर्प डंखितां गरुड धांवे । गजें कोंडितां केसरी पावे । कीं क्षुधितापुढें हेलावे । क्षीरसागर येऊनियां । ४२ कीं वणव्यांत जळतां वरुषे घन । कीं हुडहुडी भरतां धडके

भूल गये । ३५ उस अवसर पर वसिष्ठ और कौसल्या ब्रह्मानन्द रूपी सागर में पग गये–एकात्म हो गये । यह क्या हो गया—यह समझ में नहीं आने पर दशरथ मन में अतिशय घबरा उठे । ३६ (उन्होंने सोचा–) वसिष्ठ जैसे महामुनि को (भी) इस क्षण भूत ने झपेट लिया । इस भूत को झाड़नेवाला त्रिभुवन में कोई दिखायी नहीं दे रहा है । ३७ मैं पूर्णतः हतभागा हूँ । मेरे पुत्र सन्तान कैसे हो ? कौसल्या भी झपेटी गयी—वह मारे ब्रह्मानन्द के अचेत हो गयी है । ३८ मैंने निरपराध श्रवण का वध किया । इससे यह दारुण दुःख (उत्पन्न) हो गया । इस प्रकार अजराज के पुत्र दशरथ महाराज मन में (दुःख रूपी आग में) पूर्णतः दग्ध हो गये ।३९ तब (इतने में) आत्मानन्द की लहरों को दबाकर वसिष्ठ ने आँखों को खोल लिया, तो राजा ने दौड़ते हुए उसके पाँव पकड़ लिये । उसके अन्तःकरण में आनन्द नहीं समाया । १४० (इस समय) राजा की कैसी स्थिति हो गयी ? मानो (उसके) बाढ़ में डूबते समय (पास में बचाने के लिए) नौका आ गयी; अथवा अन्धकूप में–अँधेरे से भरेपूरे कुएँ में पड़ते ही सूर्य ने (आधार के लिए) हाथ बढ़ा दिया; अथवा साँप के डसने पर गरुड़ दौड़कर आ गया; अथवा हाथी (हाथियों) द्वारा (किसी के) घेरे जाने पर सिंह आ पहुँचा; अथवा भूखे लोगों के सामने आकर क्षीरसागर उमड़ने लगा अथवा दावानल में (किसी के) जलने लगते ही मेघ बरसने लगा; अथवा (मारे ठण्ड के) कँपकँपी शुरू होते ही अग्नि आ धमका अथवा दरिद्रता से पीड़ित होने पर स्वयं धन की देवी लक्ष्मी

कृशान । कीं दरिद्रें पीडितां लक्ष्मी आपण । घरीं येऊन बैसली । ४३ ऐसा आनन्दला राजा दशरथ । म्हणे सद्गुरु स्वामी तूं समर्थ । मज नवल हें वाटत । तुजही भूतें झडपिलें । ४४ आम्ही अत्यंत भाग्यहीन । कैचें देखों पुत्रसंतान । मग हांसिन्नला ब्रह्मनन्दन । काय गर्जोन बोलत । ४५ जो नीलग्रीव-हृदयरत्न । जो कमलोद्भवाचें देवतार्चन । सनकादिक करोनि यत्न । हृदयसंबळींत वाहती पैं । ४६ तो वैकुंठपुरविलासी । आला कौसल्येच्या गर्भासी । मारूनि सकळ दुष्टांसी । देव सोडवील बंदींचे । ४७ जें जें कौसल्या बोलिली सत्य । तितुकें होईल यथार्थ । तुज होतील चार सुत । सत्य वचनार्थ राजेंद्रा । ४८ शंख चक्र शेष नारायण । चतुर्धा रूपें प्रकटेल जगज्जीवन । ज्याची कथा ऐकतां पापी जन । उद्धरोनि तरतील । ४९ माध्यान्हा येईल चंडकिरण । पुष्य नक्षत्र साधून । अवतरेल रघुनन्दन । पूर्णब्रह्म जगद्गुरू । १५० ऐसीं वसिष्ठाचीं वचनें । कीं स्वानन्दनभींचीं उडुगणें । कीं सत्य-

---

घर में आकर विराजमान हो गयी । ४१-४३ (ऐसे समय जैसे वह आनन्दित हो जाए, राजा दशरथ वैसे आनन्दित हो गये ।) उन्होंने (वसिष्ठ से) कहा—'हे सद्गुरु स्वामी, तुम समर्थ हो । (इसलिए) मुझे अचरज हो रहा है कि भूत ने तुम्हें भी झपेट लिया । ४४ हम तो अत्यन्त भाग्यहीन हैं । हम पुत्र सन्तान कैसे देखें ? तब वसिष्ठ हँस पड़े और गरजकर वे क्या कहते हैं, (सुनो) । ४५ 'जो नीलकण्ठ भगवान् शिवजी के हृदय में सुरक्षित रत्न (के समान) हैं, जो ब्रह्माजी के लिए पूज्य देवता हैं, जिन्हें सनकादिक ऋषिवर यत्नपूर्वक हृदय रूपी सम्पुट में रखकर वहन करते हैं, जो वैकुण्ठ नगर में विलास करते हैं, वे ही भगवान् कौसल्या के गर्भ में आये हैं । वे सब दुष्टों (दुर्जनों) को मार डालकर (रावण द्वारा) वन्दीशाला में रखे हुए देवों को मुक्त करेंगे । ४६-४७ सचमुच कौसल्या ने जो जो कहा है, वह (उतना सब) यथार्थ हो जाएगा । हे गजेन्द्र, तुम्हारे चार पुत्र उत्पन्न होंगे । इस उक्ति का अर्थ सत्य समझो । ४८ वे जगज्जीवन भगवान् शंख, चक्र, शेष और नारायण—इन चार प्रकार के रूपों से प्रकट हो जाएँगे, जिनकी कथा का श्रवण करने पर पापी जनों का उद्धार होगा और वे भवसागर को तैर जाएँगे । ४९ जब सूर्य मध्याह्न (तक) आएगा, तो पुष्य नक्षत्र का मुहूर्त साधकर पूर्ण ब्रह्म जगद्गुरु रघुनन्दन (राम) अवतरित हो जाएँगे । १५० दशरथ ने बसिष्ठ के ऐसे वचन सुन लिये । ये वचन मानो आत्मानन्द रूपी गगन में स्थित नक्षत्र हैं अथवा

वैरागरींचीं रत्नें। निवडोनि दिधलीं दशरथा। ५१ तेणें कर्णद्वारें त्वरित। सांठविलीं हृदयसंदुकेंत। धांवोनि गुरूचे पाय धरीत। म्हणे कृतार्थ जाहलों मी। ५२ असो भरलिया नवमास। प्रसूतिसमय कौसल्येस। कवण ऋतु कवण दिवस। सावकाश ऐका तें। ५३ वसंतऋतु चैत्रमास। शुक्लपक्ष नवमी दिवस। सूर्यवंशीं जगन्निवास। सूर्यवासरीं जन्मला। ५४ मध्यान्हा आला चंडकिरण। पुष्य नक्षत्र साधून। अवतरला रघुनन्दन। पूर्णब्रह्म जगद्गुरु। ५५ श्रीराम केवळ परब्रह्म त्यासी जाहला म्हणतां जन्म। संत हांसतील परम। तत्त्व-ज्ञानवेत्ते जे। ५६ ज्याची लीला ऐकतां अपार। खंडे जन्म मृत्यु दुर्धर। त्या रामासी जन्मसंसार। काळत्रयीं घडेना। ५७ दाविली लौकिक करणी। कीं कौसल्या जाहली गर्भिणी। तो ब्रह्मानंद मोक्षदानी। जन्मकर्म त्या कैंचें। ५८ क्षीरसागरींहून नारायण। येऊन अयोध्येसी जाहला सगुण। शेषलक्ष्मीसहित

सत्य रूपी हीरे की खान में उपलब्ध रत्न हैं, जिन्हें चुनकर दशरथ को दिया। ५१ तो दशरथ ने उन्हें कानों के द्वारा शीघ्र (भेजकर) हृदय रूपी मंजूषा में संचित कर दिया। दौड़कर गुरु के पाँव पकड़ते हुए उन्होंने कहा—'मैं कृतार्थ हुआ।' ५२

अस्तु। अब यह धीरे से सुनो कि नौ महीने पूर्ण होने पर कौसल्या के प्रसूत होने के समय कौन-सी ऋतु थी, कौन-सा दिन था। ५३ वसन्त ऋतु (में) चैत्र मास (के) शुक्ल पक्ष (की) नवमी तिथि (और) रविवार के दिन जगन्निवास (राम) ने सूर्यवंश में जन्म लिया। ५४ सूर्य मध्याह्न पर आ गया (ठीक दोपहर हो गयी) तो पुष्य नक्षत्र (का शुभ मुहूर्त) प्राप्त कर पूर्णब्रह्म जगद्गुरु रघुनन्दन राम अवतरित हुए। ५५ श्रीराम (तो) शुद्ध परब्रह्म हैं, (अतः) उनका जन्म हुआ—ऐसा कहने पर, जो परम तत्त्वज्ञान के ज्ञाता हैं, वे सन्त हँसेंगे। ५६ जिनकी असीम लीला (का वर्णन) सुनने पर दुर्धर जन्म और मृत्यु (का फेरा-क्रम) खण्डित हो जाता है, ऐसे राम को जन्म तथा संसार-वास तीनों कालों में (कदापि) प्राप्त नहीं होता। ५७ उन्होंने (यह) लौकिक करनी (लीला) दिखायी कि कौसल्या गर्भवती हुई (वे कौसल्या के गर्भ में रहे)। वे ब्रह्मानन्द, मोक्षदाता हैं। उनके लिए जन्म जैसी सांसारिक क्रिया कैसे? ५८ नारायण क्षीरसागर (में) से अयोध्या में आगमन कर सगुण (रूपधारी) हो गये। परन्तु शेष और लक्ष्मी—दोनों सहित जगज्जीवन भगवान् वहाँ वैसे ही (संचार करते) रहे। ५९ जो अनन्त

जगज्जीवन। तैसाचि तेथें संचरला। ५९ जो अनंतकल्याण-दायक। अज अजित निष्कलंक। भक्त तारावयासी देख। जगन्नायक अवतरला। १६० देव करिती जयजयकार। करोनि राक्षससंहार। म्हणती आतां अवतरेल हा रघुवीर। बंधमुक्त करील आम्हां। ६१ असो अयोध्यापुरीं निराळीं। विमानांची दाटी जाहली। दुंदुभींची घाई लागली। पुष्पें वर्षती अपार। ६२ असो ते कौसल्या सती। बैसली असतां एकांतीं। तों अष्टादश वरुषांची मूर्ती। सन्मुख देखे अकस्मात। ६३ निमासुर वदन सुंदर। तेजें भरलें निजमंदिर। ज्या तेजासी शशि मित्र। लोपोनि जाती विलोकितां। ६४ पदकमल-मकरंद-सेवना। भ्रमरी जाहली क्षीराब्धिकन्या। कदाही न विसंबे चरणां। कृपण धनालागीं जैसा। ६५ संध्याराग अरुण बालार्क। दिव्य रत्नांचे काढिले रंग देख। तळवे तैसे सुरेख। श्रीरामाचे वाटती। ६६ चंद्र क्षयरोगें कष्टी होउनी। निजांगाचीं दश

कल्याणदाता, अजन्मा, अजित और निष्कलंक हैं, देखो वे जगन्नायक भक्तों का उद्धार करने के लिए अवतरित हुए। १६० तब देवों ने जयजयकार किया और कहा—अब ये रघुवीर राम अवतरित होंगे और राक्षसों का संहार कर हमें (रावण के) बन्धन से (बन्दीवास से) मुक्त करेंगे। ६१

अस्तु। अयोध्या नगरी में (अर्थात् ऊपर) आकाश में (देवों के) विमानों की भीड़ हो गयी। दुन्दुभी (नगाड़ों) का गर्जन हो गया। (लोग तथा देव) अपार फूल बरसाते हैं। ६२ अस्तु। वह सती कौसल्या जब एकान्त में (अकेली) बैठी हुई थी तो उसने अठारह वर्षीया (एक) मूर्ति यकायक (अपने) सामने देखी। ६३ उस मूर्ति का मुख लावण्ययुक्त एवं सुन्दर था। (कौसल्या को दिखायी दिया कि) उसके ऐसे तेज से अपना मन्दिर (प्रासाद) भरा है, जिसे देखते ही चन्द्र और सूर्य लुप्त हो जाएँगे। ६४ (उसके) चरण रूपी कमलों के मधु का सेवन करने के लिए (क्षीरसमुद्र की कन्या) लक्ष्मी भ्रमरी हो गयी (है)। जैसे कंजूस मनुष्य धन से अलग नहीं हट जाता, वैसे ही वह कभी भी उन चरणों को नहीं छोड़ती। ६५ संध्याकाल (के आकाश में दिखायी देने वाले रंग), ऊषाकाल (के समय आकाश में दिखायी देनेवाले रंग), बाल सूर्य (का लाल-सा रंग) और दिव्य रत्नों (अथवा आकाश में उदित होने वाले तारे रूपी रत्नों) के रंग निकालकर देखो—श्रीराम के तलुवे वैसे ही सुन्दर (रंगीन) जान पड़ते हैं। ६६ (जान पड़ता है,) क्षयरोग से

शकलें करोनी । सुरवाडला रामचरणीं । स्वानंदधणी घेतसे । ६७ रमा पदीं रंगली दिवसनिशीं । तों बंधु पाहुणा आला शशी । तोही राहिला अक्षय व्हावयासी । नव जायचि माघारा । ६८ ध्वज वज्रांकुश पद्म । ऊर्ध्वरेखा चक्रादि चिन्हें उत्तम । यांचा अर्थ ऐकतां परम । सुख होय भक्तांसी । ६९ सात्विक प्रेमळासी देखा । ऊर्ध्व संकेत दावी ऊर्ध्वरेखा । सत्यशील धार्मिकां भाविकां । ऊर्ध्वपंथ दाविती । १७० विद्यामदें मत्त गज । एक भाग्यमदें डुलती सहज । त्यांसी आकर्षावया सहज । अंकुश पायीं झळकतसे । ७१ पायीं झळके दिव्य पद्म । तें पद्मेचें राहातें धाम । तें जगमाउली सप्रेम । तये पदीं सुरवाडली । ७२ अहंकार जड पर्वत । शरणागतां बाधक यथार्थ । तो फोडावयासी तळपत । वज्र पायीं रामाच्या । १७३ भवसागर

पीड़ित होकर, अपने शरीर के दस अंश (भाग) करके चन्द्र राम के चरणों (की अंगुलियों के रूप) में लवलीन हो गया और आत्मानन्द की तृप्ति को अनुभव कर रहा है। ६७ रमा (लक्ष्मी) रात-दिन (भगवान् विष्णु के चरणों में आनन्द पूर्वक) तल्लीन हो गयी, तो उसका बन्धु चन्द्र अतिथि के रूप में आ गया। वह भी अक्षय हो जाने के हेतु (वहाँ चरणों के निकट) रहा और नहीं लौट जाता। ६८ (उस मूर्ति के) चरणों में ध्वज, वज्र, अंकुश, कमल, ऊर्ध्वरेखा, चक्र इत्यादि उत्तम चिह्न (अंकित) हैं। भक्तों को उनका अर्थ सुनते ही परम सुख होता है। ६९ (यह) ऊर्ध्व रेखा (नामक चिह्न) सात्त्विक प्रेमशील व्यक्ति को, देखो कैसे ऊर्ध्व (ऊपर) की ओर इशारा कर दिखाती है। वह सत्यशील, धार्मिक और श्रद्धालु जनों को ऊर्ध्वपंथ (ऊपर स्वर्ग की ओर जाने का मार्ग) दिखाती है। १७० (कोई-कोई) विद्या के मद से उन्मत्त हाथी-से हो जाते हैं, तो (कोई-कोई) सद्भाग्य के घमण्ड से स्वभावतः झूमते हैं। उनको सहजता से वश में कर लेने के लिए भगवान् के पाँव में (तलुवे में) अंकुश (नामक चिह्न) चमकता है। ७१ उनके पाँव में दिव्य कमल झलकता है। वह लक्ष्मी का निवास-स्थान है। वह जगन्माता लक्ष्मी प्रेमपूर्वक (भगवान् के) चरणों में लीन (हुई) है। ७२ अहंकार (मानों) जड़ पर्वत (के समान) है; सचमुच वह शरणागत लोगों के लिए बाधा (उत्पन्न) करनेवाला होता है। उसे तोड़ डालने के लिए राम के पाँव में वज्र (नामक चिह्न) दमकता है। १७३ राम के चरण संसार रूपी अथाह सागर को तैर कर पार करने के लिए (साधन रूप) अद्भुत जहाज़ हैं।

एकशत जन्म मोत भक्ति करा जेवे * इटो पातकर बिप्र मुक्त हैबि तेवे
जेवे दरशन तइ पास श्रीरामक * एके जन्मे तोर तेवे खंडिब पातक ७३
एहि सीमा थैया गंगा दिला मोक शाप * उपजिलो चंडाल योनित मइ पाप
भैला नारायण रघुबंशे अवतार * तयु दरशने पाप गुचिल आमार ७४
तोमार चरणे आवे लैलोहो शरण * तुमि बिने मोर गति नाहि आन जन
सदा सेवा करि मइ थाकिबो तोमात * तोमार पितृत मागि लैयोक आमाक ७५
शुनि राघवर महा करुणा मिलिल * अनेक विनय करि पितृक बुलिल
शुनियोक पितृ कृपा करियोक मोक * गुह नृपतिक मेलि मोहोक दियोक ७६
जगतर पति राम देवर बचन * शुनि दशरथर सन्तुष्ट भैल मन
स्वभावे रामत दाया राजार बिस्तर * मेलिया गुहक तांक दिला नृपबर ७७
पाइलन्त गुहक रामे पितृत मागिया * करिला आश्वास बस्त्र अलंकार दिया
अनेक शासन रामे दिला ग्राम देश * निर्भय बचने तांक बुलिला अशेष ७८
आजि धरि गुह तुमि भैला मोर मिता * थाकियोक सुखे किछु नकरिबा चिन्ता
हेन शुनि गुह चंडालेर अधिपति * रामक बुलिल करि अनेक भकति ७९
कैर मइ हीन जाति चंडाल अधम * तुमि त्रिजगत् गुरु ईश्वर परम
ब्रह्मा हरे न जानन्त जाहार महिमा * चारि बेदे कहि यार नपारन्त सीमा ८०
अधमो उद्धरे जार नाम लैले मात्र * मइ केने तोमार मित्रर भैलो पात्र
कमने तर्किबे प्रभु तोमार लीलाक * करा अनुग्रह केने केतिक्षणे काक ८१

तेरा मन जब मेरे प्रति होगा, जन्म-जन्म तू मेरी भक्ति करेगा ॥ ७२ ॥ जब एक सौ जन्म तू मुझसे भक्ति करता रहेगा हे ब्राह्मण, तब तू इस पातक से मुक्त होगा। (किन्तु) जब तू श्रीराम का दर्शन पा लेगा तब एक ही जन्म में तेरा पाप खंडित हो जायगा ॥ ७३ ॥ यह प्रतिकार रखकर गंगा ने मुझे शाप दिया। तो मैंने अपने पाप-कर्मों के कारण चंडाल योनि में जन्म लिया। हे नारायण, तुमने रघुवंश में अवतार लिया है। अब तुम्हारे दर्शन से मेरा पाप दूर हो गया ॥ ७४ ॥ तुम्हारे चरणों में अब शरण ले ली। तुम्हारे सिवा अब मेरी अन्य कोई गति नहीं। सदा तुम्हारी सेवा करते हुए तुम्हारे पास रहूँ। अपने पिता से मुझे माँग लो ॥ ७५ ॥ यह सुनकर राघव को बड़ी करुणा आई। बड़े विनय से उन्होंने अपने पिता से कहा, सुनो पिता, मुझ पर कृपा करो और गुह नृपति को मुझे दे दो ॥ ७६ ॥ जगत् के पति देवता राम के वचन सुनकर दशरथ का मन प्रसन्न हुआ। स्वाभाविक रूप से राजा की राम पर बड़ी दया है। नृपवर ने उसे खुलासा गुहक को दान कर दिया ॥ ७७ ॥ पिता से माँगने पर राम को गुहक मिल गया। उन्होंने उसको वस्त्र-आभूषण देकर आश्वस्त किया। तथा अपने अधीन रख उसे कई गाँव दे दिये। फिर उसे भयशून्य वाक्यों से सम्बोधित किया ॥ ७८ ॥ हे गुह! आज से तुम मेरे मित्र बन गये। तुम सुख से रहो और कोई चिन्ता मत करो। ऐसा सुनकर चंडालों के अधिपति गुह ने अति भक्तिपूर्वक राम से कहा ॥ ७९ ॥ कहाँ तो मैं नीच जाति का अधम चंडाल हूँ और कहाँ तुम तीनों लोकों के गुरु परमेश्वर हो। ब्रह्मा और हरि भी जिनकी महिमा नहीं जानते और चारों वेद भी जिसके बारे में बता कर अन्त नहीं पाते ॥ ८० ॥ जिनका केवल नाम लेते ही अधम का उद्धार हो जाता है ऐसे तुम जैसे मित्र के योग्य मैं कैसे बन गया। तुम्हारी लीला के बारे में कौन विचार कर सकता है। तुम किस समय, किसलिए, किस पर अनुग्रह करते हो यह कोई क्या जाने ॥ ८१ ॥ तुममें जात-पाँत का भेदभाव नहीं है। तुम्हारे चरणों में शरण

नाहिके तोमात जाति आचार बिचार * तयुपदे शरण करोक मात्र सार
एतेके तोमार तात करुणा मिलय * येइ सेइमते येन अमृत पिवय ८२
एतेके अजरामर होवे सिटो जन * लैलो आजि मात्र मइ तोमात शरण
एतेकते मोक मित्र बुलिया धरिला * एहिटो अतर्क तयु बिपरीत लीला ८३
आनो नाना स्तुति नति करिला भकति * पाचे तांक बिदाय दिलन्त रघुपति
रामत मेलानि पाया करि योरहात * दंडवते परि आति करि प्रणिपात ८४
माथात माखिल चरणर धूलि आनि * पुनरपि कृतांजलि बुलिलन्त बाणी
तोमार चरणे रति नुगुचोक मोर * याक दरशने पाप एराइलो दुर्घोरि ८५
धरिबाहा आमाक दासर बुलि दास * जन्मे जन्मे एहि चरणत हौक आश
एहि बुलि कतो दूर गैला पाचभरि * पुनरपि प्रणामिला दंडवते परि ८६
राम पादपद्म दुइ मने धरि रैल * सैन्यसमे गुह निजस्थाने चलि गैल
अनन्तरे दशरथ नृपति प्रधान * पात्र पुत्र ससैन्ये करिया गंगास्नान ८७
चलिबाक चान्ते दिनकर अस्त गैल * देखि भरद्वाजर आश्रम गैया पाइल
चारि पुत्र समन्विते राजा शुद्धमने * करिलन्त नमस्कार ऋषिर चरणे ८८
भरद्वाजे बेदमंत्र करिया सम्बाद * पुत्रे समे राजाक करिला आशीर्ब्बाद
नानाबिध द्रव्य मुनिराज कौतूहले * अतिथिर ब्यवहार करिला सकले ८९
रामक देखिया मुनि भैला रंगमन * कोले लैया ऋषिराज करिला शयन
निद्रा गैल रामचन्द्र ऋषिर लगत * इन्द्रे समे आसिलन्त देवगण यत ९०
रामक करिला अभिषेक पुरन्दर * मंत्र समे दिला सबे दिब्य धनुशर
पाचे इन्द्रे दिलन्त रामक समिधान * एहि धनुशरे शत्रु करिबा निर्व्याण ९१

लेना सभी धर्मों का एकमात्र सार है। इसी कारण तुम्हारे पास करुणा मिलती है। जो भी आता है वह इस अमृत का पान करता है ॥ ८२ ॥ वह व्यक्ति तो इससे अजर-अमर हो जायगा। मैंने केवल आज ही तुम्हारी शरण ली। इतने में ही तुमने मुझे अपना मित्र कहकर अपना लिया। तुम्हारी यह विपरीत लीला बड़ी अटपटी है ॥ ८३ ॥ इस प्रकार उसने और भी कितने ही भक्तिपूर्ण नमन और स्तुति की। इसके पश्चात् रघुपति ने उसे बिदा दी। राम से बिदा पाकर उसने हाथ जोड़ा और दंडवत् लेट कर उनको प्रणाम किया ॥ ८४ ॥ चरण की धूलि लेकर सिर से लगा ली। फिर हाथ जोड़ कर बोला, तुम्हारे उन चरणों में प्रेम कभी समाप्त न हो जिनके दर्शन से मेरा घोर पाप दूर हो गया ॥ ८५ ॥ मुझको अपने दास का दास समझना। जनम-जनम इन्हीं चरणों की आशा बनी रहे। यह कहकर कितनी ही दूर तक पीछे की ओर (बिना मुँह किये) चलता रहा, फिर दंडवत् लेटकर प्रणाम करने लगा ॥ ८६ ॥ मन में राम के चरण-कमलों को स्मरण करता हुआ गुह अपनी सेना के साथ अपने स्थान को चला गया। इसके बाद दशरथ ने पात्र-मित्र-पुत्र और सेना के साथ गंगा में स्नान किया ॥ ८७ ॥ जब वे चलने को उद्यत हुए तो सूर्य अस्त हो गया। यह देखकर वे भरद्वाज के आश्रम में गये। चारों पुत्रों के साथ राजा ने शुद्धमन से ऋषि के चरणों में प्रणाम किया ॥ ८८ ॥ भरद्वाज ने वेदमंत्र का पाठ कर पुत्रों सहित राजा को आशीर्वाद किया। मुनिराज ने अतिथियों के सत्कार के लिए विभिन्न प्रकार के द्रव्य दिये ॥ ८९ ॥ राम को देखकर मुनि बड़े प्रसन्न हुए। ऋषिराज ने उन्हें गोद में लेकर शयन किया। रामचन्द्र ऋषि के पास सो गये। इसके बाद वहाँ इन्द्र के साथ सारे देवता आ गये ॥ ९० ॥ इन्द्र ने राम का अभिषेक किया। मंत्र के साथ सुन्दर धनुष-बाण दिया। इसके

नाना दिब्य कामे धनुबाण अनुपाम * मंत्र समे पाया रंगमन भैला राम
धनुशर दिया चलि गैला देवगण * रात्रि अवसाने राम पाइलन्त चेतन ९२
देखन्त हातते आछे दिब्य धनुशर * करे फटफट मने मंत्र निरन्तर
देखि धनुर्ब्बाण ऋषि रामर हातत * परम बिस्मय भैल मुनिर मनत ९३
प्रभाते उठिया राम करिलन्त स्नान * ऋषि समे दशरथ भैला एकस्थान
करि करजोर रामचन्द्र महाभागे * कहन्त स्वप्नर कथा दुहान्तर आगे ९४
ऐरावत स्कन्धे आसिलन्त पुरन्दर * मंत्रे समे दिला मोक दिब्य धनुशर
देवगण समे आरो बुलिला बचन * एहि धनुर्ब्बाणे जिनिबाहा शत्रुगण ९५
एहि बुलि चलि गैला देवगण जत * जागि देखो धनुर्ब्बाण आछय हातत
मनत सुमरो महामंत्रगण जत * एहि बुलि रामचन्द्रे दुहानो आगत ९६
स्वपनर लब्ध धनु शर आनि दिल * देखि समस्तर मने बिस्मय मिलिल
भरद्वाज ऋषि धनु देखि बिद्यमान * अद्भुत मानिया मने करिलन्त ध्यान७९७
जानिलन्त ऋषि राम नुहिके मनुष * भैला अवतार बिष्णु परम पुरुष
दिलन्त अजय धनुर्ब्बाण देवराजे * बधिवन्त रावणक संग्रामर माजे७९८
जानि महामुनि मने भैल कौतूहल * पाचे रामचन्द्रक स्वप्नर दिला फल
स्वप्नत तोमाक धनु दिला पुरन्दर * जिनिबा शत्रुक यश बाढ़िब बिस्तर७९९
नपारि कहिबे राम तोमार महत * स्वप्न शुनि हासिलन्त राजा दशरथ
भरद्वाज ऋषिक करिया सतकार * चारिपुत्र सहिते करिला नमस्कार८००

पश्चात् इन्द्र ने राम से कहा—इस धनुष-बाण से तुम शत्रु का नाश करोगे ॥ ९१ ॥ विभिन्न सुन्दर पच्चीकारी से बने वे धनुष-बाण बड़े अनुपम थे। मंत्रसहित उनको पाकर राम बड़े प्रसन्न हुए। धनुष-बाण देकर सारे देवता चले गये। रात्रि के अन्त में राम को चेतना आई ॥ ९२ ॥ उन्होंने देखा कि हाथों में सुन्दर धनुष-बाण हैं। मन में निरन्तर वह मंत्र गूँज रहा था। राम के हाथों में ऋषि ने धनुष-बाण देखा तो मन ही मन मुनि को बड़ा विस्मय हुआ ॥ ९३ ॥ सबेरे उठकर राम ने स्नान किया। ऋषि और दशरथ एक स्थान पर इकट्ठा हुए। महाभाग रामचन्द्र दोनों हाथ जोड़कर दोनों के सामने खड़े होकर स्वप्न की बातें कहने लगे ॥ ९४ ॥ ऐरावत की पीठ पर सवार होकर इन्द्र आए और मुझे मंत्रसहित यह धनुष-बाण दे गये। देवताओं के सहित उसने कहा, इसी धनुष-बाण से तुम शत्रु को जीतोगे ॥ ९५ ॥ यह कहकर जितने देवता थे वे चले गये। तब जागकर मैंने देखा कि मेरे हाथों में धनुष-बाण हैं। और मन में वह महामंत्र स्मरण हो रहा है। यह कहकर रामचन्द्र दोनों के सामने आये ॥ ९६ ॥ राम ने स्वप्न में पाये धनुष-बाण लाकर दिये। यह देखकर सभी का मन विस्मय से भर उठा। भरद्वाज मुनि ने जब धनुष को साक्षात् देखा तो अद्भुत जानकर ध्यान करने लगे ॥ ७९७ ॥ ऋषि ने जान लिया कि राम मनुष्य नहीं हैं। परमपुरुष विष्णु ने (राम के रूप में) अवतार लिया है। देवराज ने रावण को संग्राम में वध करने के लिए इन्हें अजय धनुर्बाण दिया है ॥ ७९८ ॥ यह जानकर महामुनि के मन में बड़ा कौतूहल हुआ, इसके पश्चात् उन्होंने रामचन्द्र को स्वप्न का फल बताया। स्वप्न में पुरन्दर ने तुमको धनुष दिया है, तुम शत्रु पर विजय प्राप्त करोगे और तुम्हारा यश बढ़ेगा ॥ ७९९ ॥ हे राम! मैं तुम्हारी महत्ता का वर्णन नहीं कर सकता। स्वप्न का वृत्तान्त सुनकर राजा दशरथ हँसे। और चारों पुत्रों सहित ऋषि का सत्कार करते हुए उन्होंने प्रणाम किया ॥ ८०० ॥ इसके

मागिया मेलानि आति बुलि प्रियबाणी * पुत्र समे अयोध्याक गैल महामानी
निज मन्दिरत राजा रैल रंगमने * मिलय आनन्द पुत्रमुख दरशने८०१
महागुणे गुणवन्त चारिओ तनय * यत अस्त्र शस्त्र शास्त्र चारिओ जानय
केवल धर्म्मत मात्र रति सर्व्वक्षणे * करन्त भकति निते रामर चरणे८०२
चारि भाइर माजे रामचन्द्र गुणे चार * तान्त आतिशय प्रीति बाढ़य राजार
रामर समान आरो नाहि त्रिभुवने * ताहान गुणर अन्त कहिबेक कोने८०३
देखय गम्भीर कोटि समुद्रत करि * क्षमागुणे कोटि बसुन्धरा नुहि सरि
धैर्य्ये कोटि एक मेरु नुहि पटन्तर * श्रमत समान नुहि कोटि महेश्वर८०४
कोटि एक सूर्य्य सम नुहि प्रतापत * एक कोटि जम सम नुहिके क्रोधत
बिलासत सम नुहि कोटि पुरन्दर * शीतलत चन्द्र कोटि नुहि समसर ५
गजेन्द्र कोटिको जिनि गमन गम्भीर * कोटि हेमवन्त जिनि निष्कम्प शरीर
अमृत कोटितो करि देखिय मधुर * रूपे कोटि कन्दर्परो दर्प करे चूर ६
नुहि दुर्गा कोटि सम शत्रुमर्द्दनत * इतिनि भुवने सम नाहिके दानत
कोटि एक बह्नि नुहि तेजत समान * बृहस्पति कोटि जिनि शास्त्रत सुजान ७
एक कोटि ब्रह्मा सम नुहिके मानत * धनुर्गुणे सम नाहि इतिनि लोकत
आनो नाना गुण जत आछय रामत * त्रिभुवन माजे कोने बर्णाइबे शकत ८
अनन्त शकतिधर परम ईश्वर * जाहार किंकर हर ब्रह्मा पुरन्दर
जाक योगेश्वर सबे चिन्तंत ध्यानत * तेन्ते रामरूपे आसि भैलन्त बेकत ९

बाद बिदा माँगकर और बहुत मधुर वचन बोलते हुए पुत्र के साथ महामानी दशरथ अयोध्या चले गये। प्रसन्न होकर राजा अपने मन्दिर में रहने लगे। पुत्र का मुख देखकर उनको बड़ा आनन्द मिलता ॥ ८०१ ॥ चारों पुत्र महान् गुणों से युक्त हैं। चारों सभी अस्त्र-शस्त्रों से परिचित हैं। उन सभी का केवल धर्म में मन है। वे राम के चरण प्राप्त करने को भक्ति करते ॥ ८०२ ॥ चारों भाइयों में रामचन्द्र गुणों में चौगुने हैं। उनके प्रति राजा की प्रीति बहुत बढ़ती जाती थी। त्रिभुवन में राम के समान कोई अन्य नहीं। उनके गुणों का अन्त कौन कह सकता है ॥ ८०३ ॥ रामचन्द्र कोटि समुद्र के समान गम्भीर हैं, कोटि बसुन्धरा से अधिक क्षमाशील हैं, धैर्य में कोटि मेरु उनके समान नहीं और परिश्रम में कोटि महेश्वर भी उनके समान नहीं ॥ ८०४ ॥ प्रताप में कोटि सूर्य भी उनके समान नहीं। क्रोध में कोटि यम भी उनके समान नहीं। विलास-व्यसन में कोटि पुरन्दर भी उनके समान नहीं। शीतलता में कोटि चन्द्र भी उनके समान नहीं हैं ॥ ५ ॥ उनकी चाल कोटि गजरज के समान गंभीर है। उनका शरीर कोटि हिमालयों के समान धीर-स्थिर है। उनकी चितवन कोटि अमृत के समान मधुर है। रूप में वे कोटि कन्दर्पों का भी दर्प चूर्ण करते हैं ॥ ६ ॥ शत्रुमर्दन में कोटि दुर्गा भी उनके समान नहीं। दान करने में उनके समान इन तीनों भुवनों में कोई नहीं। तेज में कोटि अग्नि भी उनके समान नहीं। कोटि बृहस्पति से भी बढ़कर शास्त्रों के जानकार हैं ॥ ७ ॥ सम्मान में एक कोटि ब्रह्मा भी उनके समान नहीं। इन तीनों लोकों में धनुर्गुण में उनके समान कोई नहीं। और भी कितने ही गुण जो राम में हैं उनकी वर्णना करने की शक्ति त्रिभुवन में किसके पास है ॥ ८ ॥ वे अनन्त शक्तिधारी ईश्वर हैं, शंकर, ब्रह्मा और इन्द्र उनके किंकर हैं। सारे योगेश्वर ध्यानावस्था में जिनका चिन्तन करते हैं वे ही राम के रूप में आकर प्रकट हो गये ॥ ९ ॥ उनके गुण और धर्म का

निज गुण यश महाधर्म्म माजे सार * कृपाय करिला आसि लोकत प्रचार
आक शुनि भणिया तरोक सर्व्वजने * ईश्वरर अवतार एहिसे कारणे १०
रावण मारण तान कोन प्रयोजन * यार कटाक्षेते कोटि ब्रह्मांड उछन
मारिला रावण कोन पौरुष ताहार * याक जिनिलेक बालि बनर बानर ११
हेन राम चरणत करियोक रति * आन परिहरि राम देवत करा मति
अनित्य संसार बिलम्बत काज नाइ * चिन्तामणि जन्म हेरा हातते हराय १२
शुना सभासद पद रामर चरित * एहिसे प्रधान धर्म्म जानिबा कलित
मनुष्य हैबार प्रयोजन एहिमान * बोला राम राम हौक पातक निर्य्याण८१३

मारीच-सुबाहु बधार्थे राम-लक्ष्मणक आनिबलै बिश्वामित्रर आगमन

दुलड़ी

शुना आतपरे कथा निरन्तरे चरित्र जेन रामर।
परलोक हित ऋषि विश्वामित्र आरम्भिला यज्ञबर ॥
मारीच सुबाहु नामे दुइजन राक्षस आति दुर्जन।
चतुर्द्दश कोटि राक्षस सहिति करय यज्ञ उछन ॥८१४
बारम्बारे ऋषि आरम्भंत यज्ञ अनेक करि जतन।
रक्तमय बृष्टि करिया समस्ते राक्षसे करे ध्वंसन ॥

सार हैं। कृपा कर पृथ्वी पर आकर इसका प्रचार किया। इसे सुनकर-कहकर सभी लोग तर जायें इस कारण से ही ईश्वर का अवतार हुआ है ॥ १० ॥ जिनके कटाक्ष मात्र से कोटि ब्रह्मांड ध्वंस हो सकता है, उनको रावण को मारने के लिए जन्म लेने की क्या आवश्यकता है। जिसको वन के बन्दर बालि ने पराजित किया था उस रावण को मारने में उनको पौरुष दिखलाने की क्या आवश्यकता ? ॥ ११ ॥ ऐसे राम के चरणों में ध्यान लगाओ और सब कुछ त्याग कर देवता राम के चरणों में मन लगाये रखो। संसार अनित्य है अतः विलम्ब की कोई आवश्यकता नहीं। विलम्ब करने से चिन्तामणि जैसा बहुमूल्य माणिक अर्थात् मानव-जीवन अचानक ही अदृश्य हो जायगा ॥ १२ ॥ हे सभासदो ! राम के चरित्र के पद सुनो। कलियुग में यही प्रधान धर्म है, यह जान लो। इसी का पालन करने में मनुष्य का जन्म सार्थक है। राम राम बोलो जिससे सभी पाप दूर हो जायें ॥ ८१३ ॥

मारीच-सुबाहु के वध के लिए राम-लक्ष्मण को लिवा ले जाने हेतु विश्वामित्र-आगमन

दोलड़ी

इसके बाद राम का चरित्र निरन्तर सुनो। परलोक के कल्याण के लिए विश्वामित्र ने बृहद् यज्ञ का आरम्भ किया। मारीच और सुबाहु नामक दो दुर्जन राक्षसों ने चौदह करोड़ राक्षसों के साथ यज्ञ का ध्वंस किया ॥ १४ ॥ बार-बार ऋषि बड़े यत्न से यज्ञ आरम्भ करते किन्तु बार-बार रक्त की वर्षा कर राक्षस सारा का सारा यज्ञ चौपट कर देते। यदि ऋषि शाप देने का कष्ट करें तो सारे राक्षस

समस्ते राक्षस भस्म होवे जेवे शापे ऋषि करि कष्ट ।
नशपन्त क्रोधे उपजिया मरे तपव्रत होवे नष्ट ॥ १५
सिहेतु राक्षस यज्ञ नष्ट करे ऋषिर मने असुख ।
उगुल थुगुल चित्त असन्तोष उपजय बर दुख ॥
पाचे ध्यान करि सकल बृत्तान्त जानिलन्त मुनिबरे ।
राक्षस बधिते अवतरि हरि आछा दशरथ घरे ॥ १६
तांक आति सबे राक्षस मराया करो यज्ञ समापति ।
एहि मने गुनि चलिलन्त मुनि रामक आनिबे प्रति ॥
दशरथ राजा पुत्रवते प्रजा पालि सुखे अयोध्यात ।
आछन्त नृपति येन सुरपति बसिया दिव्य सभात ॥ १७
बशिष्ठ प्रमुख्ये पुरोहित सबे बसि आछा रंगमने ।
इन्द्रर आगत बृहस्पति आदि येन महामुनिगणे ॥
सुमंत्र सहिते महामंत्री सबे राजाक आछे उपासि ।
सेहि समयत बिश्वामित्र मुनि तथाते मिलिल आसि ॥ १८
देखिया नृपति समाजे सहिति उठिला आति सत्वरे ।
प्रणाम करिया चरणर धूलि माथात लैला सादरे ॥
सुवर्ण आसन आनिया नृपति समाजर माजे दिला ।
समस्तके आशी— र्ब्बाद करि ऋषि आसने आसि बसिला ॥ १९
आपुनि चरण धुवाइ दशरथे पादोदक लैला माथे ।
परम सादरे सअर्घे ऋषिक पूजिला पृथिवीनाथे ॥
जोरहाते राजा मधुर बचने कुशल बार्त्ता पुछिल ।
तयु दरशने अमृतर पाने सन्तोष येन मिलिल ॥ २०

भस्म हो जायें । किन्तु क्रोध में आकर उनको वे शाप नहीं देते । यदि वे क्रोध उत्पन्न होते ही राक्षसों को भस्म कर देते तो इससे उनका तपव्रत नष्ट हो जाता ॥ १५ ॥ इस कारण राक्षस यज्ञ नष्ट करते रहते और ऋषि मन ही मन बड़ा कष्ट पाते । उनका मन उद्वेग से भर जाता, चित्त असन्तुष्ट होता और बड़ा दुःख उत्पन्न होता । इसके पश्चात् ध्यान करने पर मुनिवर को सारा हाल मालूम हुआ कि राक्षसों का वध करने के लिए ईश्वर ने दशरथ के घर में अवतार लिया है ॥ १६ ॥ उनको लाकर सारे राक्षसों को मरवाकर यज्ञ की समाप्ति की जाय । यही मन में विचार कर मुनि राम को लाने के लिए चल पड़े । प्रजा का पुत्रवत् पालन करते हुए नृपति बड़े सुख से अयोध्या में दिव्य सभा के बीच यों बैठे हैं जैसे सुरपति इन्द्र हों ॥ १७ ॥ वशिष्ठ आदि सारे पुरोहित बड़े आनन्द से बैठे हैं, मानों इन्द्र के सम्मुख बृहस्पति आदि महामुनि हों । सुमन्त्र आदि महामन्त्रीगण राजा की सेवा में हैं । ऐसे ही समय विश्वामित्र मुनि वहाँ आ पहुँचे ॥ १८ ॥ विश्वामित्र को देखकर राजा अपने सारे समाज के साथ उठकर झट खड़े हो गये । प्रणाम कर उनके चरणों की धूलि सादर सिर से लगा ली । समाज के बीच में सोने का आसन लाकर नृपति ने दिया । सभी को आशीर्वाद देकर ऋषि उस आसन पर बैठ गये ॥ १९ ॥ दशरथ ने स्वयं उनके चरण धोकर उनका पादोदक सिर से लगाया । पृथ्वीनाथ (राजा) दशरथ ने बड़े आदर से अर्घ्य सहित ऋषि की पूजा की, फिर हाथ जोड़कर राजा ने उनका कुशल-मंगल पूछा । हे मुनिवर ! तुम्हारे दर्शन से मानो अमृत-पान का सन्तोष प्राप्त हुआ ॥ २० ॥ हे

आपोनार निज भृत्य बुलि मोक धरिबाहा मुनिराज।
आज्ञा करियोक सम्प्रति तोमार साधो मइ किबा काज ॥
राजार बचन शुनि बिश्वामित्रे भैला आति रंगमन।
राजाक बोलन्त शुनियो नृपति येन मोर प्रयोजन ॥ २१
बारम्बारे आसि यज्ञ आरम्भिलो अनेक करि यतन।
मारीच सुबाहु राक्षसे आमार करय यज्ञ उछन ॥
अनेक सम्भार आनि आरोबार चाहो यज्ञ करिबाक।
राक्षसक मारि यज्ञ राखिबाक रामक दियोक मोक ॥ २२
शुनिया राजार माथात परिल बज्रर येन प्रहार।
उभय संकटे बाजिया नृपति देखन्त दुखे आन्धार ॥
रामक निदिले शाप दिया ऋषि करिबेक बंश छन।
ऋषिर लगत रामक पठाले हैबेक मोर मरण ॥ २३
एकभिति बाघे खेदे आरोभिति नदी घोर बारिषार।
जाम्प दिले मरे जाम्प नेदिलेओ बाघे लवे प्राण तार ॥
सेहि पटन्तर पाया आछे मोक करिबो कोन उपाय।
हेन मनदुखे थाकि राजा पाचे मातिला ऋषिक चाइ ॥ २४
बार बरिषर छावा राम मोर शिशुमति आतिशय।
किमते रणत मारिबेक रामे राक्षस बर दुर्ज्जय ॥
ब्रह्मार बरत राक्षस गणर बाढ़िल बल अपार।
सैन्यसमे गैया राक्षस मारिया राखिबो यज्ञ तोमार ॥ २५
आपुनि चलिबो रामक नेदिबो बुलिला दृढ बचन।
शुनि बिश्वामित्र राजाक बोलन्त नुबुजि तोमार मन ॥

मुनिराज, तुम मुझे अपने भृत्य के समान समझो। आज्ञा करो इस समय तुम्हारा कौन सा कार्य करूँ। राजा के वचन सुनकर विश्वामित्र बड़े प्रसन्न हुए और राजा से कहा, हे नृपति, मेरा क्या प्रयोजन है, सुनो ॥ २१ ॥ मैंने बड़े यत्न से बारबार यज्ञ आरम्भ किया, किन्तु मारीच-सुबाहु आदि राक्षस मेरा यज्ञ ध्वंस करते रहे। अब अनेक संभार जुटाकर फिर एकबार यज्ञ करना चाहता हूँ, अतः राक्षसों को मारकर यज्ञ की रक्षा करने के लिए राम को मुझे दे दो ॥ २२ ॥ यह सुनकर राजा के सिर पर मानों गाज का प्रहार हुआ। दो संकटों में फँसकर राजा दुःख से चारों ओर अंधियारा सा देखने लगे। राम को न देने पर शाप देकर ऋषि वंशनाश कर देंगे, और ऋषि के साथ राम को भेजने पर मेरी मृत्यु हो जायगी ॥ २३ ॥ एक ओर शेर पीछा कर रहा है तो दूसरी ओर वर्षा की घोर नदी है। छलांग मारने से भी मृत्यु है और छलांग न मारने से शेर प्राण ले लेगा। इसी प्रकार के संकट में मैं फँस गया हूँ—कौन सा उपाय करूँ। इस प्रकार दुःखित मन से राजा ने ऋषि की ओर देख कर कहा ॥ २४ ॥ मेरा राम बारह वर्ष का बालक है, अभी अत्यन्त शिशुमति है, वह किस प्रकार युद्ध में उस दुर्जय राक्षस को मार सकेगा। ब्रह्मा के वर से राक्षसों का अपार बल बढ़ गया है, अतः सैन्य के साथ चलकर राक्षसों को मारकर मैं तुम्हारे यज्ञ की रक्षा करूँगा ॥ २५ ॥ मैं खुद ही चला चलूँगा, राम को नहीं दूँगा, इस प्रकार राजा दृढ़ वाक्य बोले। उन वचनों को सुनकर विश्वामित्र ने राजा से कहा, तुम्हारा मन कुछ समझ में नहीं आ रहा है। राम के बिना किसमें राक्षस मारने की शक्ति है।

रामत बिनाइ राक्षस मारिते शकति आछे काहार।
आमाक भांडिया बचन बोलाहा बुजिलो बोल तोमार ॥ २६
रामक निदिया आशा भंग करि पालटाइ पठा मोक।
कोप देखि राजा बोले योरहाते महाऋषि शुनियोक ॥
तोमार क्रोधत कम्पे तरतरि ब्रह्मा आदि देवगण।
हेनय तोमार आगे कोन हओ आमि आति आल्पजन ॥ २७
कत दुखे मइ पाइलोहो रामक देवता सबर बरे।
तोमार लगत ताक पठाइ दिले मारिबेक निशाचरे ॥
धन जन यत प्राणात करिया रामेसे आति प्रधान।
एक क्षण मान देखिते नपाइले नरहे मोहोर प्राण ॥ २८
हेनय रामक किमते पठाइबो राक्षसक युजिबाक।
इन्द्र आदि करि त्रिदश सकले हारिया आछे याहाक ॥
सिटो राक्षसक किमते युजिब अबोध मोर छवाले।
निदिलेओ शपि करिबाहा भस्म जानिलो ग्रासिले काले ॥ २९
हरि हरि बिधि कि काम करिलो परिलो महा बिपाके।
राम हेन पुत्र पायाओ नपाइलो दंडिला दैवे आमाके ॥
रामक पठाइले मरिब कौशल्या आमिओ मरिबो प्राणे।
रामक नेदेखि मरिब सकले यत नरनारी माने ॥ ३०
दान्ते तृण धरि तोमात मागोहो रामक दियोक मोक।
तोमार प्रसादे अयोध्यार लोके नपाओक रामर शोक ॥
तोमार लगत आपुनि चलिबो कटक लैया अपार।
तोमार यज्ञक राखिबो करिया राक्षसक बुन्दामार ॥ ३१

तुम मुझको धोखा देकर बोल रहे हो, मैं तुम्हारी बातें समझ गया ॥ २६ ॥ राम को न देकर मेरी आशा भंगकर मुझको वापस भेजे दे रहे हो। उनका कोप देखकर राजा ने हाथ जोड़कर कहा, हे महर्षि सुनो—तुम्हारे क्रोध से ब्रह्मा आदि देवता भी थरथर काँपते हैं। तुम ऐसे प्रभाव-सम्पन्न हो, कि तुम्हारे सामने कौन खड़ा हो सकता है। फिर मैं तो बहुत ही मामूली आदमी हूँ ॥ २७ ॥ सारे देवताओं के वरदान से मुझे कितने दुख से राम जैसा पुत्र मिला। तुम्हारे साथ उसको भेज देने पर राक्षस उसको मार डालेंगे। धन, जन तथा प्राण की तुलना में राम प्रधान है। क्षणभर भी मैं उसको नहीं देख पाता तो मेरे प्राण निकलने लगते हैं ॥ २८ ॥ ऐसे राम को किस प्रकार राक्षस से युद्ध करने के लिए भेजूँ। इन्द्र आदि देवता जिससे हार माने हुए हैं, उस राक्षस से मेरा अबोध बालक कैसे लड़ सकेगा। न देने पर तुम शाप देकर मुझे भस्म कर डालोगे। मैं भी यह जान लूँगा कि काल के गाल-ग्रस्त हो गया ॥ २९ ॥ हे विधि! हे ईश्वर! यह कैसा काम किया कि मैं इस विपत्ति में फँस गया। राम जैसा पुत्र पाकर भी न पा सका—दैव ने मुझको दण्ड दिया। राम को भेजने पर कौशल्या मर जायगी और मैं भी प्राण त्याग दूँगा। राम को न देखकर जितने नरनारी हैं वे सब भी मर जाएँगे ॥ ३० ॥ मैं दाँतों में तिनका लेकर तुमसे भिक्षा माँगता हूँ कि राम को मुझे दे दो। तुम्हारे प्रसाद से अयोध्या के लोगों को राम का शोक न सहना पड़े। तुम्हारे साथ अपार सेना लेकर मैं खुद ही चलूँगा तथा राक्षसों को सम्पूर्णरूप से ध्वंस करके तुम्हारे यज्ञ की रक्षा करूँगा ॥ ८३१ ॥

निगम अगम वागीश, ईश अज सिद्ध अमर गण,
पार न पामे सकळ, लक्षणा करे विशेषण । ४ ।
मन वाणी गोतीत, अगोचर नव्य प्रमाणे,
दारू दारा सूत्रधार, करता नव जाणे । ५ ।
आत्माराम अग्राह्य, अपार अदृश्य अनादि,
अकळ रूप अविधार, सकळ सृष्टि कर आदि । ६ ।
तदपि निज इच्छाय, भक्त गो सुर द्विज कारण,
स्थापन धर्म अशेष, धरो विविध तनु धारण । ७ ।
अंश कळा युद्ध व्यूह, रूप अद्भुत वर धरता,
निज जन पूरण काम, अनुग्रह निग्रह करता । ८ ।
मच्छरूप धरी वेद ग्रह्या, शंखासुर मार्यो,
कूर्मरूप धरी निधि-मथन मंद्राचळ तार्यो । ९ ।
रूप वराह विशाळ, ग्रहण करी भूमि स्थापी,
हिरण्याक्ष हत कर्‍यो, विमळ कीर्ति जगव्यापी । १० ।

तुम वेदों के लिए (भी) अगम्य हो। वागेश्वरी सरस्वती, ईश्वर (शिव), ब्रह्मा, सिद्ध, देवतागण—ये सब तुम्हारी महिमा का पार प्राप्त नहीं कर सकते। (इसलिए उसका वर्णन करने के लिए) वे लक्षण और विशेषण का प्रयोग करते हैं। ४। तुम मन, वाणी और इन्द्रियों के परे हो। न्यायशास्त्र के नये-नये प्रमाणों के विचार से (भी) तुम अगोचर हो। (सृष्टि रूपी) कठ-पुतली को नचाने वाले सूत्रधार हो। फिर भी तुम्हें—उस कर्ता को कोई नहीं जानता। ५। तुम आत्माराम हो, अग्राह्य (पकड़ या समझ में नहीं आनेवाले), अपार, अदृश्य, अनादि हो। तुम अकल, आधार-रहित, फिर भी सकल सृष्टि के आदि (जन्म-दाता) हो। ६। फिर भी अपनी इच्छा से भक्तों, गायों, देवों (और) ब्राह्मणों के लिए और निश्शेष (पूर्ण) धर्म की स्थापना के लिए तुम अनेक शरीरों को धारण करते हो। ७। तुम अंश, कला, युद्ध-व्यूह (इत्यादि) अद्भुत श्रेष्ठ रूप अर्थात् अवतार ग्रहण करते हो और अपने (भक्त) जनों की कामनाएँ पूर्ण करते हुए उन पर अनुग्रह (कृपा) तथा (दुष्टों का) दमन करते हो। ८। तुमने मत्स्य रूप (अवतार) धारण करके वेदों की रक्षा की और शंखासुर को मार डाला। समुद्र-मन्थन के अवसर पर तुमने कूर्म (कछुआ) रूप (अवतार) धारण करके मन्द्र (मन्दर) नामक पर्वत (जिसको मथानी के रूप में प्रयुक्त किया गया था) को तारा—उठाये रक्खा। ९। विशाल वराह का अवतार ग्रहण करके

भीम भयंकर तनु, नरहरि स्थंभ विदार्यो,
हिरण्यकश्यपु हण्यो, भक्त प्रह्लाद उगार्यो । ११ ।
वामन थई बळि-द्वार, जई जाचि भू त्रिकम,
करी सुरपतिनी सहाय, विस्तर्युं अद्‌भुत विक्रम । १२ ।
भृगुकुळ कमळ पतंग, फरशुधर सहस-भुजारी,
नक्षत्री एकवीश वार, करी भुव द्विज करधारी । १३ ।
अब उदयाचळ उदर, मात कौशल्या केरो,
उदय होउ श्रीराम रवि हर विश्व अंधेरो । १४ ।
असुर सघन वन विपुल, दुष्ट दशमुख आदि सब,
जातवेद रघुवीर, जन्म धरी दहन करो अब । १५ ।
देव दीन होई रहे, वेदपथ परम निवारे,
उतारो भूभार, करो सुर संत सुखारे । १६ ।

तुमने (पाताल लोक में धँसती हुई) पृथ्वी (को बचा कर उस) की प्रतिष्ठापना की तथा हिरण्याक्ष नामक दैत्य का वध करके अपनी विशुद्ध कीर्ति को जगत् में व्याप्त कर दिया । १० । नरसिंह के रूप में प्रचण्ड, भयंकर शरीर धारण करके तुमने खम्भे को विदीर्ण किया, हिरण्यकश्यपु को मार डाला और (अपने) भक्त प्रह्लाद का उद्धार किया । ११ । (दैत्यों के राजा) बली के द्वार पर वामन रूप में जाकर तुमने तीन कदम भर भूमि माँगी और (उस निमित्त उसे पाताल में धकेलकर) तुमने इन्द्र की सहायता करके अद्‌भुत प्रताप का विस्तार किया । १२ । भृगु-कुल रूपी कमल के लिए सूर्य के रूप में और सहस्रहस्तधारी कार्तवीर्य के शत्रु परशुराम के रूप में अवतीर्ण होकर, तुमने ब्राह्मणों को हाथ में लेकर, पृथ्वी को इक्कीस बार निःक्षत्रिय कर डाला । १३ । हे श्रीराम, अब माता कौसल्या के उदर रूपी उदयगिरि पर तुम सूर्य के रूप में उदित हो जाओ और विश्व में फैले हुए (दुराचार रूपी) अँधेरे को दूर करो ।१४। दशमुख रावण आदि सब दुष्ट असुरों के रूप में बहुत घना वन (विश्व में) बढ़ा हुआ है । हे रघुवीर रूपी अग्नि ! तुम जन्म लेकर प्रकट होकर अब उसे जला डालो । १५ । (आज विश्व में) देवता दीन होकर रहते हैं । वेदों का बताया मार्ग अति अवरुद्ध हुआ है । अतः हे श्रीराम, (तुम अवतार धारण करके) भूमि का (पाप रूपी) बोझ उतार डालो और देवों तथा सज्जनों को सुखी करो । १६ । हे श्रीजगदीश ! भक्त जनों के दुःख को नष्ट करनेवाले, (भक्तों से) विमुख बने हुए लोगों

जज जय श्रीजगदीश, प्रभो जन आरत भंजन,
गंजन विमुख समूह, सदा मुनिजन मनरंजन । १७ ।
जय जय दीनदयाल, हरि शरणागत-वत्सल,
प्रगट थाओ परिब्रह्म, करो पावन पद भूतल । १८ ।
जय जय जगन्निवास, रमापति संकटमोचन,
कोटी काम लावण्य, छबी हम निरखहु लोचन । १९ ।
जय अपार गुण नाम, रूप अद्भुत चरित्र वर,
त्रिविध तापहर विमळ सुधा सम श्रवण मंगळकर । २० ।
करुणानिधान भगवान जय, पुण्यश्लोक पावन करण,
अब प्रगट होउ गिरधर प्रभु, जय रघुपति अशरण-शरण । २१ ।

दोहरो

गर्भस्तुति करी देवता, रही आकाश विमान,
पुष्प अंजलि ग्रही जुवे, जन्म समय भगवान । २२ ।

* * *

(अर्थात् भक्तों को पीड़ा पहुँचानेवालों) का विनाश करनेवाले, मुनिजनों के मन को सदा बहलानेवाले—प्रसन्न करनेवाले हे प्रभो ! तुम्हारी जय हो । १७ । हे दीनों पर दया करनेवाले, शरण में आनेवालों के प्रति वात्सल्य दिखानेवाले हरि ! तुम्हारी जय हो । हे परि (पूर्ण) ब्रह्म ! तुम प्रकट हो जाओ और अपने चरणों (के स्पर्श) से धरा-तल को पवित्र बनाओ । १८ । हे जगन्निवास, (भक्तों को) संकट से मुक्त करनेवाले श्रीरमापति भगवान् ! तुम्हारी जय हो ! करोड़ों कामदेवों के लावण्य से युक्त तुम्हारी मूर्ति को हम अपने नयनों से देखें । १९ । हे अपार गुणों और नामों एवं रूपों के धारक तथा अद्भुत श्रेष्ठ चरित्रवाले प्रभो, तुम्हारी जय हो । (आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक—इन) तीनों प्रकार के तापों को दूर करनेवाले, विशुद्ध अमृत-सदृश नाम को श्रवण करनेवाले का कल्याण करनेवाले प्रभो, तुम्हारी जय हो । २० । हे करुणानिधान ! हे पुण्यश्लोक, हे (सबको) पवित्र करनेवाले भगवान्! तुम्हारी जय हो । हे गिरिधर प्रभो ! अब प्रकट हो जाओ । हे निराधार के आधार रघुपति ! तुम्हारी जय हो । २१ ।

आकाश में विमानों में (विराजमान) रहकर देवताओं ने (भगवान् की) गर्भ-स्तुति की । और अंजलियों में फूल लेकर वे भगवान् के जन्म-समय की प्रतीक्षा करते हैं (रहे) । २२ ।

* * *

अध्याय–१६ (राम-लक्ष्मण-भरत-शत्रुघ्न-जन्म)

राग धवळ धनाश्री

श्रीराम-जन्म मंगळ सुखदायक, ग्रह सकळ अनुकूळ जी,
दशे दिशा दीप्तमान थई, शुभ लग्न छे मंगळ मूळ जी । १ ।
ऋतु वसंत चैत नौमी शुभ, शुक्ल पक्ष मध्यान जी,
पुष्य नक्षत्र रविवारे प्रगट्या, रघुवीर रूप-निधान जी । २ ।
देवदुंदुभि वाग्यां नभमां, पुष्पनी वृष्टि थाय जी,
सुर विमाननी भीड थई, गुण गंधर्व-किन्नर गाय जी । ३ ।
सूतिका गृहमां कौशल्याजी जोतां थई सावधान जी,
वर्ष अष्टादश केरी मूर्ति, प्रगट्या श्रीभगवान जी । ४ ।
शंख चक्र गदा पद्म बिराजे, चतुर्भुज घनश्याम जी,
कुंडल मुगट आभूषण-मंडित, लाजे कोटिक काम जी । ५ ।
पीळुं पीतांबर पदनखमणिद्युति कमळ कोमळता भ्राजे जी,
वज्रांकुश घट मच्छनी आदे, रेखा अष्टादश राजे जी । ६ ।

अध्याय–१६ (श्रीराम आदि के जन्म की कथा)

श्रीराम का जन्म मंगल (कल्याणकारी) और (सब के लिए) सुखदायक है। (उनके जन्म के समय) सब ग्रह अनुकूल थे। दसों दिशाएँ तेजस्वी (उज्ज्वल) हो गयीं। (जन्म-वेला का) मुहूर्त शुभ एवं मंगल-मूलक था। १। वह वसन्त ऋतु थी; चैत्र महीने के शुक्ल पक्ष की शुभ नवमी तिथि का मध्याह्न (दुपहर) समय था। (उस दिन) नक्षत्र पुष्य था। (ऐसे शुभ मुहूर्त) रविवार के दिन रूप-निधान रघुवीर श्रीराम प्रकट हुए। २। (आकाश में से) पुष्प-वर्षा हुई। (आकाश में) देवों के विमानों की भीड़ हो गयी; गन्धर्व और किन्नर भगवान् के गुणों (की महिमा) का गान करते थे। ३। सूतिका-(प्रसूति) गृह में कौशल्या (भगवान् के आविर्भाव को) देखते ही सावधान हो गयी। श्रीभगवान् अठारह वर्ष की मूर्ति के रूप में प्रकट हो गये। ४। मेघ के समान साँवले वर्णवाले भगवान् की वह मूर्ति चार हाथों से युक्त है। उनके हाथों में शंख, चक्र, गदा और कमल-पुष्प शोभायमान हैं। वे कुण्डलों, मुकुट तथा आभूषणों से सुशोभित हैं। (उनके सौन्दर्य को देखकर) करोड़ों कामदेव लज्जित हो जाते हैं। ५। (पीला) पीताम्बर, पाँवों के नखों की रत्न की-सी कान्ति और (शरीर की) कमल की-सी कोमलता उज्ज्वलता-पूर्वक झलकती है। वज्र, अंकुश, घट, मत्स्य आदि

एवा हरिने कौशल्याए, ऊभा दीठा पास जी,
पूरवनी स्मृति त्यां आवी, ओळखिया अविनाश जी । ७ ।
कौशल्याए स्तुति बहु कीधी, कर जोडी तेणी वार जी,
बाळकरूपे राम थया, पछे दशरथ राजकुमार जी । ८ ।
शिशुरूपे थई शय्या मांहे, करवाने लाग्या रुदन जी,
त्यारे सर्वे जाण्युं जे पुत्र ज प्रगट्यो, हरख वधाई धन्य जी । ९ ।
एवा सुतने जोई कौशल्या आश्चर्य प्राम्यां मंन जी,
प्रसव तणी पीडा नव जाणी, जे क्यारे प्रगट्यो तंन जी । १० ।
वाजित्र अगणित वागवा लाग्यां, देवनां दुंदुभिनाद जी,
जयजयकार तणी धुनि ऊठी, ऊपन्यो अति आह्लाद जी । ११ ।
वधामणिया ते दोड्या वेगे, मळियां जाचकवृंद जी,
अवधपुरीमां घेर घेर मंगळ, नरनारी आनंद जी । १२ ।
कनक थाळ कुमकुम दधि अक्षत, मंगळ विधि उपचार जी,
नवल त्रिया सहु मंगळ गाती, आवी राजद्वार जी । १३ ।

की अठारह रेखा-कृतियाँ शोभायमान हैं । ६ । कौशल्या ने ऐसे (रूप-धारी) हरि को अपने पास खड़े हुए देखा । तब उसे पूर्वजन्म की स्मृति हो आयी और उसने अविनाशी भगवान् को पहचान लिया । ७ । उस समय हाथ जोड़कर कौशल्या ने (भगवान् की) बहुत स्तुति की तो बाद में श्रीराम बालक के—अर्थात् दशरथ के राजपुत्र के रूप में (बदल गये)—प्रस्तुत हो गये । ८ । शय्या में शिशु-रूप में (प्रस्तुत) होकर वे रुदन करने लगे । तब सबने जाना कि (कौशल्या के) पुत्र ही प्रकट हुआ (जन्मा) । सबने (इस) सौभाग्य के लिए आनन्दपूर्वक बधाई दी । ९ । कौशल्या ऐसे पुत्र को देखकर मन में आश्चर्य-चकित हो गयी (क्योंकि) उसे प्रसूति की पीड़ा अनुभव नहीं हुई और उसने यह नहीं जाना कि पुत्र कब प्रकट हुआ । १० । (उस समय) अनगिनत बाजे बजने लगे । (आकाश में) देवों की दुन्दुभियों (नगाड़ों) की ध्वनि हो रही थी । (चारों ओर) जय-जयकार की ध्वनि उठी (उत्पन्न हुई), (और सबको) अतिशय आह्लाद उत्पन्न (अनुभव) हुआ । ११ । याचकों के समूह मिलकर बधाई देने दौड़े । अयोध्यापुरी में घर-घर मंगल अनुभव हो रहा था (और) पुरुष तथा स्त्रियाँ, सब आनन्दित हो गये । १२ । सोने की थालियों में कुंकुम, दही, अक्षत तथा (अन्य) मंगल विधि के योग्य उपचार (सामग्री) लेकर सब नववधुएँ (स्त्रियाँ) मंगल गीतों को गाती हुई राज-(प्रासाद के) द्वार के पास आ गयीं । १३ । कौशल्या को

कौशल्याने वधावे वनिता, जोती कुंवरनुं मुख जी,
शेष सहस्र शके नहि वरणवी, तेह समेनुं सुख जी । १४ ।
नृप दशरथ सुख पाम्या अति धणुं, ब्रह्मानंदमां मन जी,
मुनिमंडळमां वसिष्ठ विराजे, साधे सुग्रह जन्मलग्न जी । १५ ।
अनेक मुनिवर ते समे आव्या, दशरथने दरबार जी,
सरव मळी महापर्व विशे ज्यम, प्रयाग मोझार जी । १६ ।
ते समे ऊठ्या दशरथ, पुत्रनुं मुख जोवाने जाय जी,
वसिष्ठ आदे मुनिवर साथे, उर आनंद न माय जी । १७ ।
स्नान करी शुभ अंबर पहेर्यां, स्वस्ति-वाचन थाय जी,
कोटि कंद्रप सम रामचंद्रमुख, जोयुं दशरथ राय जी । १८ ।
जन्मअंध लोचन पामे ज्यम, निर्धन धन भंडार जी,
एम पुत्रने जोई दशरथ राजा, पाम्या हर्ष अपार जी । १९ ।
जातकर्म पछी कर्युं कुंवरनुं, वेदविदित महिमाय जी,
भीड घणी थई जाचकनी तव, दान आपता राय जी । २० ।

बधाई देते हुए वे स्त्रियाँ राजा के पुत्र को देखती हैं। उस समय के सुख का वर्णन सहस्रों शेष (भी) नहीं कर सकते । १४ । राजा दशरथ ने अति गहरा सुख पया। उनका मन ब्रह्मानन्द में (मग्न) था। (इधर) मुनियों के समूह में वसिष्ठ ऋषि विराजमान हैं (थे) जो शुभ ग्रहों तथा जन्म-लग्न को सिद्ध कर रहे हैं (थे) । १५ । उस समय राजा दशरथ की राजसभा में अनेक श्रेष्ठ ऋषि आ गये। वे सब ऐसे मिलकर आ गये, जैसे महान् पर्व के अवसर पर प्रयाग में आते हैं । १६ । उस समय राजा दशरथ उठ गये और (अपने) पुत्र का मुख देखने के लिए जाते हैं (गये)। उनके साथ वसिष्ठ आदि श्रेष्ठ मुनि थे। उनका आनन्द हृदय में नहीं समाता था । १७ । स्नान करके राजा ने मंगल वस्त्र पहन लिये। (तदनन्तर) स्वस्ति-वाचन विधि (सम्पन्न) हो गयी। (तब) राजा दशरथ ने करोड़ों कामदेवों के समान सुन्दर रामचन्द्र का मुख देखा । १८ । जन्मान्ध आँखें प्राप्त करे अथवा निर्धन मनुष्य को धन-भण्डार मिले, तो उसे जैसा आनन्द होता है, वैसा ही अपार आनन्द राजा दशरथ ने पुत्र को देखकर पाया (अनुभव किया) । १९ । तदनन्तर जिसकी महिमा वेद-विदित है, ऐसे उस पुत्र का जात-कर्म (नामक विधि) सम्पन्न किया। उस समय याचकों की बहुत भीड़ हो गयी, तो राजा उन्हें दान देते हैं (देने लगे) । २० । विशेषतः ब्राह्मण अनेक आभूषण,

आभूषण पट मुक्ता माणेक, गज रथ अश्व अनेक जी,
गो पृथ्वी गृह ग्राम विधिए, लेता विप्र विशेक जी । २१ ।
दशरथे दान कर्यां जळ मूकी, सरिता चाली त्यांहे जी,
तेनी संख्या कोण करे थयो, संगम सरज्युं मांहे जी । २२ ।
विप्र बंदीजन मागध पासे, लूंटाव्या भंडार जी,
जेणे जेम लेवाय तेम लीधुं, द्रव्य तणो नहि पार जी । २३ ।
जाचक सरव अजाचक कीधा, भिक्षुक थई गया भूप जी,
लक्ष्मीपति दशरथ घेर प्रगट्या, ईश्वर अकळ अनूप जी । २४ ।
तेणे समे नृप केरी राणी, सात सें आवी त्यांहे जी,
मुक्ता कुसुम वधावे विधिए, बेठी मंदिर मांहे जी । २५ ।
(जेम) आदिमाया भगवती पासे, अनंत शक्ति आवे जी,
एम कौशल्यानी पासे आवी, राणीओ हरखे बोलावे जी । २६ ।
रत्न जटित पर्यंकनी उपर, छत्र अनोपम झळके जी,
चंद्र-वरण चामर बे पासे, चंचळ थातां चळके जी । २७ ।

वस्त्र, मोती, मानिक-रत्न, हाथी, रथ, घोड़े, गायें, भूमि, घर, ग्राम विधि-पूर्वक (दान के रूप में) लेते हैं । २१ । दशरथ ने पानी सींचकर (उदक छोड़कर) दान दिये—उस जल से वहाँ नदी बह चली । (दशरथ द्वारा दिये हुए) दानों की गिनती कौन कर सकता है ? (बस !) उदक के जल-प्रवाह का सरयू नदी में संगम हुआ । (इससे दानों की संख्या का अनुमान करें) । २२ । (दशरथ ने) ब्राह्मणों, बन्दियों और मागधों को (धन-धान्य का) भण्डार लुटा दिया । जिससे जिस तरह लिया जा सकता, उस तरह उसने लिया । फिर भी उस द्रव्य का अन्त नहीं हुआ । २३ । राजा ने याचकों को 'अयाचक' बना दिया (अर्थात् उनको इतना धन आदि दिया कि उन्हें आगे चलकर किसी से याचना करने की आवश्यकता नहीं रही ।) और स्वयं राजा भिक्षुक (शुभ कामनाओं के याचक) बन गये, अथवा भिक्षुक (भिखमंगे) राजा (के समान धनवान्) हो गये । अकल (अगम्य), अनुपमेय ईश्वर, लक्ष्मी-पति भगवान् विष्णु (आज स्वयं) दशरथ के घर में प्रकट हो गये । २४ । उस समय राजा (दशरथ) की सात सौ रानियाँ वहाँ आ गयीं और मोतियों तथा फूलों को विधिपूर्वक स्वीकार करती हुई वे (कौशल्या के) मन्दिर (प्रासाद) में बैठ गयीं । २५ । जैसे आदिमाया भगवती के पास अनन्त शक्तियाँ आती हैं, वैसे ही वे रानियाँ कौशल्या के पास आ गयीं और उसके साथ आनन्द-पूर्वक बोलती हैं (रहीं) । २६ । रत्न-जटित

तेनी उपर कौशल्याजी बेठां, श्री रामने लेई उछंग जी,
किंकरी अनेक सेवामां सत्वर, विचरे नाना रंग जी । २८ ।
स्वस्थ थई नृप दशरथ बेठा, करी मुनिवरनी सभाय जी,
जन्मपत्रिका वसिष्ठ वांचे, सांभळो दशरथराय जी । २९ ।
ए क्षीरसागरवासी नारायण, आदि पुरुष त्यां जेह जी,
दुष्टसंहारक निजजन-तारक, अवतरिया छे एह जी । ३० ।
सकळ जीवना अंतर्यामी, उत्पत्ति स्थिति अविनाश जी,
आत्माराम रमे सघळे माटे, रामनाम अभिधान जी । ३१ ।
द्वादश वर्षना पुत्र थशे, बळ प्राक्रम विषे जेह जी,
एक मुनि जाचीने लेई जाशे, यज्ञरक्षा करशे एह जी । ३२ ।
एम भविष्य मुनि सहु कहेवा लाग्या, आगम रामचरित्र जी,
श्रवण करे दशरथ कौशल्या, पावन पुत्र पवित्र जी । ३३ ।
श्रीरामचंद्र स्तनपान करंता, जगजीवन आधार जी,
नेत्र तणी समश्या करी नाथे, गुरुने तेणी वार जी । ३४ ।

पलंग के ऊपर अनुपम छत्र झलकता है (था) और चन्द्र के-से वर्ण-वाले दो चामर साथ में (हिलाये जाने के कारण) चंचल होने से चमकते हैं (थे) । २७ । उस पलंग के ऊपर श्रीराम को गोद में लिये हुए कौशल्या बैठी (थी) और सेवा में तत्पर हुई अनेक सेविकाएँ नाना रंग-ढंग से (इधर-उधर) घूमती-फिरती हैं (थीं) । २८ । बड़े-बड़े मुनियों की सभा लगाकर, स्वस्थ (निश्चिन्त) हो कर दशरथ बैठे थे । (उसमें) वसिष्ठ ऋषि जन्म-पत्रिका पढ़ते हैं (थे) और राजा दशरथ सुनते हैं (थे) । २९ । जो (भगवान्) क्षीरसागर में निवास करनेवाले नारायण आदिपुरुष, दुष्टों के संहारक तथा अपने भक्तों के उद्धारक हैं, वे यहाँ (श्रीराम के रूप में) अवतरित हैं । ३० । वे समस्त जीवों के अन्तर्यामी हैं, उत्पत्ति-स्थिति के कर्ता तथा अविनाशी हैं । वे सब में आत्माराम के रूप में रमते हैं । उनका नाम श्रीराम है । ३१ । वह पुत्र बारह वर्ष का होगा, तो (वह) बल और पराक्रम में (विशेष व्यक्ति) सिद्ध होगा । एक मुनि उसे माँग कर ले जाएगा, तो यह (उसके) यज्ञ की रक्षा करेगा । ३२ । इस प्रकार मुनि श्रीराम का जन्म, चरित्र (आदि) का भविष्य सब को बताने लगे । दशरथ और कौशल्या अपने पावन पवित्र पुत्र के बारे में सुनते हैं (थे) । ३३ । जगत् के जीवनाधार श्रीरामचन्द्र स्तन-पान कर रहे हैं (थे) ।

अव्वारि दानमय्यज्ञवाटमुन ; । नॆव्वरेमडिगिन निच्चुचुन्नाडु ;
क्रतुवु दीऱकमुन्नॆ काविंपु माकु । हित'मंचु ब्रार्थिंचि रॆल्ल देवतलु ;
ना समयंबुन नदितो गूड । भासुर व्रतनिष्ठ बरगु कश्यपुडु
इम्मुल दपमु वॆय्येडुलु सेय । सम्मदंबुन विष्णु साक्षात्करिंचॆ ।
ना वेळ गश्यपुडानंदमंदि । वेवेग नुतुलु गाविंचि 'सर्वेश !
नी महातनुवुन निखिललोकमुलु । सोमार्कलोचन ! चूचुचुन्नाड ;
नाद्यंतरहितुंडवगु निन्नु वेद । वेद्युनि शरणंबु वेडॆद' ननिन
गरुण ना विष्णुंडु गश्यपु जूचि । 'वरमु नीकिच्चॆद; वांछितंबॆद्दि ?

८७०

यडुगुदुगा'कन्न नलरि कश्यपुडु । गडुभक्तितो गरकमलमुल् मॊगिचि
'यतिबलोद्धति नाकु नदितिकि नीवु। सुतुडवै जन्मिंचि सुरल रक्षिंपु:
मिदि कोकि नाकुनु नी देवतलकु; । मदिलो मन्निंपु मम्मुनंदऱनु'
अनवुडु ना विष्णु वदितिगर्भमुन- । ननुपमंबगु तेजमडर जन्मिंचि
वामनत्वमु दाल्चि वच्चि यद्दनुजु । भूमि मूडडुगुलु पॊसगंग नडिगि
रॆन्डडुगुलने धरित्रियु दिवियु । दंडिमै गॊलिंचि या दैत्यु बंधिंचि

उस प्रसंग में यज्ञभूमि में जो कोई भी जो कुछ मांगता है, उसे वह दे रहा है। यज्ञ के समाप्त होने से पहले ही हमारा हित करो।' ऐसा कहते हुए सभी देवताओं ने प्रार्थना की। उस समय अदिति के साथ शोभायमान व्रतनिष्ठा में निमग्न कश्यप के सुन्दर ढंग से हजार-वर्ष तपस्या करने पर प्रसन्न होकर विष्णु ने (उन्हें) दर्शन दिए। उस समय कश्यप प्रसन्न होकर शीघ्रता से सन्नुति करके बोले—'हे सर्वेश ! हे सोमार्कलोचन वाले ! तुम्हारे महाशरीर में मैं समस्त लोक देख रहा हूँ। तुम आद्यन्तरहित और वेद-वेद्य हो। तुम्हारी शरण मांग रहा हूँ।' (ऐसा) कहने पर उस विष्णु ने करुणा से कश्यप को देख कहा—'तुम्हें वर दूँगा। इच्छा क्या है ? ॥ ८७० ॥

—माँग लो।' (ऐसा) कहने पर प्रसन्न हो, कश्यप अतिभक्ति से कर-कमल जोड़कर बोले—'मेरे और अदिति के तुम अति-बलोद्धति से पुत्र रूप में जन्म लो और देवताओं की रक्षा करो। यह मेरी और देतवाओं की इच्छा है। हम सब का मन से सम्मान (इच्छापूर्ति) करो।' ऐसा कहने पर उस विष्णु ने अदिति के गर्भ से अनुपम तेजोयुक्त होकर जन्म लिया। वामनत्व को धारण कर, आकर, उस दनुज से अनुकूलता से तीन चरणों की धरती माँगी। दो पगों से ही पृथ्वी तथा आकाश को

'लोलत नी मूडु लोकमुल् वेलय । नेलुमु नी' वंचु निंद्रुनकिच्चे ;
नदिमोदलिदि वामनाश्रमंबय्यें; । निदि मदीयाश्रमं; बी पुण्यभूमि
सिद्धिचु निटुतपस्सिद्धुलु गान । सिद्धाश्रमंबु ना जल्लु नेल्लेडल ;
नीवे वामनुडवै नेगडि त्रिविक्र । मावतारमु दाल्चिनट्टि विष्णुडवु: ८८०

नाडुनु निदि नीवनंबु श्रीराम ! । नेडुनु ना रीति नीवनंबय्यें' ।
ननुचु गौशिकुडु निजाश्रमंबुनकु । जनि यंदु रामलक्ष्मणुल बूजिचे ;
नच्चटि मुनिजनंबंतयु मदिनि । मुच्चट मीर रामुनि बूजसेसे ;

विश्वामित्र यज्ञ रक्षणमु

नंतराघवुडु विश्वामित्रु जूचि । संतसंबुन 'मुनीश्वर ! नेडु मीरु
यागदीक्षकु जोरुंडनुमानमुडिगि; । यागशत्रुलनेल्ल नडचेद नेनु ;
अनिन विश्वामित्रुडंत हर्षिचि । मुनुल रप्पिचि यिम्मुल दीक्षवडसि
यागवेदुल मुनुलर्थिगाविंप । यागांगमुलु पूर्णमयि वेदियोप्पे;

गुरुता से नाप लिया, उस दैत्य को बाँध कर, 'सुन्दरता से इन तीनों लोकों पर शोभा से शासन करो' ऐसा कहते हुए इन्द्र को (लोकाधिपत्य) दिया। तब से लेकर यह वामनाश्रम प्रसिद्ध हुआ। यह मेरा आश्रम है। इस पुण्यभूमि में तप की सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। अतः सर्वत्र यह सिद्धाश्रम कहलाता है। वामन रूप में अतिशयता से त्रिविक्रमावतार धारण करने वाले विष्णु तुम्हीं हो ॥ ८८० ॥

—उस दिन भी यह वन तुम्हारा ही था। हे श्रीराम ! आज इस प्रकार यह वन तुम्हारा हुआ।' ऐसा कहते हुए कौशिक ने अपने आश्रम में जाकर (पहुँचकर) राम-लक्ष्मण की पूजा की। वहाँ के सभी मुनि-जनों ने मन में बड़े प्रेम के साथ राम की पूजा की।

विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा

—तब राघव विश्वामित्र को देख, प्रसन्न हो बोले—'हे मुनीश्वर ! आज आप सन्देह छोड़कर (निश्चन्त हो कर) यज्ञ-दीक्षा ले लीजिए। मैं यज्ञ के शत्रुओं का दमन करूँगा।' (ऐसा) कहने पर, तब विश्वामित्र हर्षित हुए और मुनियों को बुलाकर, प्रसन्नता से (यज्ञ) दीक्षा ले ली। मुनियों ने चाहकर (मन लगाकर) यज्ञ की वेदियों का निर्माण किया। यज्ञ के (आवश्यक) अंगों से परिपूर्ण वेदी शोभायमान हुई। अंचित (शोभित) आज्य (घी) की आहुतियों के यहाँ-वहाँ (जगह-जगह पर होम कुण्ड में)

नंचिताज्याहुतुलंदंद दौरुग । मिंचि यग्नुलु मंडि मिंटिकि ब्राक
होमाग्नि ब्रभविंचु नुन्नतध्वनुलु । सामादि वेद प्रसंग घोषमुलु
नातत देवताह्वानरावमुलु । होतल पुण्यमंत्रोरु नादमुलु ८९०
दिक्कुलॆल्लनु निंडि तिविरि घोषिंप। नक्कजमयि यागमटु चॆल्लुचुंड
रामभद्रुडु धनुर्धरुडुनै मैत्रि । सौमित्रियुनु दानु जागरूकतनु
रक्कसुल् वच्चु मार्गमु मुन्नॆ यॆऱिगि । यक्कौशिकुनि मौनियैयुन्न वानि
विश्वमंतयु दमोवृतमु गाकुंड । शश्वत्प्रभल गाचु चंद्रार्कुलनग
गाचिरि कंटिकि गनुरॆप्पकरणि । नेचिन भक्ति नय्यॆड नैदुनाळ्ळु;
नलवुमै गव गूडि याऱवनाडु । बलिमि मारीच सुबाहुलेतॆन्चि
मेलिखड्गद्युतुल् मॆरुगुलु गाग । ग्रालु कालांबुदोत्करमुलो यनग
बलमुलु दारु नुद्भट वृत्तिमिंट । निलिचि गर्जनमुलु निगुडिंचि मिंचि
वदलक यय्यज्ञवाटंबुलोन । मदमुन नुप्पॊन्गि मांसरक्तमुलु
गुरियुचो होतल कोलहलंबु । गरिम सदस्युल कलकलध्वनियु
९००

पड़ने पर अग्नि (की ज्वालाएँ) अतिशयता से प्रज्वलित होकर आकाश तक फैल उठीं। होमाग्नि से उद्भूत उन्नत ध्वनियाँ, साम आदि वेदपाठ के घोष, निरन्तर देवताओं के आह्वान (निमन्त्रण) के रव, होताओं के पुण्यमन्त्रों के उरु (विशाल) नाद, ॥ ८९० ॥

—(उपरोक्त ध्वनियों के) सभी दिशाओं में (व्याप्त) होने पर, अधिक घोषित (मुखरित) होने पर, आश्चर्य के साथ यज्ञ के कार्य होते रहे तो धनुर्धारी राम स्वयं तथा भाई सौमित्री (लक्ष्मण) सावधानी से, राक्षसों के आने के मार्ग को पहले से ही जानकर, उस कौशिक के, जो मौन धारण किए हुए थे (यज्ञ की रक्षा करते रहे। मानों वे) समस्त विश्व को तमोवृत होने से, (अपनी) शश्वत्प्रभाओं से रक्षा करने वाले चन्द्र-सूर्य के समान थे। अत्यधिक भक्ति से वहाँ (उस यज्ञ भूमि में) पाँच दिन तक (उन्होंने वैसे ही) रक्षा की जैसे (नेत्र की) पलकें पुतली की रक्षा करती हैं। सबल हो, जोड़ी बांधकर, छठवें दिन जबरदस्ती मारीच (और) सुबाहु आए। श्रेष्ठ खड्ग-द्युतियों की चपला के समान (दिखाई देने वाले), वे बड़े-बड़े कालांबुद के समान लग रहे थे। बलयुक्त हो वे उद्भट वृत्ति (उद्धतगति) से आकाश में खड़े रहकर, अधिक गर्जन करते हुए, उद्धत होकर, (अपने प्रयत्न को) न छोड़कर, मद से फूलकर, यज्ञवाट (भूमि) में माँस और रक्त को बरसाने लगे। (तब) होताओं का कोलाहल, सदस्यों की बढ़ी हुई कलकल ध्वनि, ॥ ९०० ॥

बरिचारकुल दीनभाषणध्वनियु । बरिकिंचि विनि, रामभद्रुंडु वोंगि 'लक्ष्मण ! चूडु ना ला' वंचु विजय। लक्ष्मी धनुर्घोषलक्षणं बेसग नेलकोनि विनुवीथि निजदृष्टि निलिपि । बलुविडि वायव्यबाणमेयुटयु नुरुवडि मारीचु नुव्वेत्तुगाग । सरभसवृत्तिमै शतयोजनमुलु गोनिपोयि यरिमुरि ग्रूर राक्षसुनि । वनधि लोपल बारवैचे ना शरमु; अडरि वज्रमुनकु नळिकि यंबोधि । बडिन मैनाकमै पडिन यय्यसुर योकरीति दरि जेरि युग्रांशुकुलुनि । यकलंक विक्रमं बंदंद पोगडि दनुजुल बासि यातत्तनिष्ठतोड । ननयंबु ना सुचंद्राश्रम भूमि शूरत विडिचि यासुर वृत्ति नडिचि। घोरतपंबु गैकोनि सेयुचुंडे; नरिमुरि रघुरामु डग्निबाणमुन । नुरक सुबाहुनि नुरमेसि चंपे; ९१० दक्किन राक्षसदळमुल नोकट । जक्काडे मानवशरमहत्त्वमुन; सुरलुमोदिंचि यच्चो बुष्पवृष्टि। गुरिसिरि; मुनिकोटि गोनियाडे नतनि; मुन्नु वृत्रासुरु मुनुमिडि चंपि । सन्नुतिपग देवसंघंबु गूडि वेलुगोन्दु देवताविभुनि चंदमुन । बलुविडि रामुडु बाहुशौर्यमुन

—परिचारकों की दीन पुकारों की ध्वनि को देख सुनकर, रामभद्र ने झुक कर कहा—'हे लक्ष्मण ! देख लो मेरी शक्ति ।' (ऐसा) कहते हुए विजयलक्ष्मी की धनुष टंकार कर, दृढता से आकाशवीथि पर अपनी दृष्टि रख (एकाग्र कर) उसी क्षण उनके वाव्ययबाण के छोड़ते ही, उस (उस बाण) ने सफलता के साथ द्रुतगति से, सरभस-वृत्ति (शीघ्रगति) से शतयोजन ले जाकर (उस) क्रूर राक्षस मारीच को वनधि (समुद्र) में डाल दिया। वज्र (के आघात) से अंबोधि (समुद्र) में गिरे मैनाक (पर्वत) के समान, (समुद्र में) गिरा वह असुर किसी रीति से तट पर पहुँचकर, जगह-जगह उग्रांशु (सूर्य)-कुल (वाले, राम) के अकलंक विक्रम की सराहना करता हुआ, दनुजों को छोड़, आतत-निष्ठा से, निरन्तर उस सुचन्द्राश्रम भूमि में, शूरत्व की प्रवृत्ति को छोड़, आसुर-प्रवृत्ति का दमन कर, घोर तप करने लगा। शीघ्र ही रघुराम ने अग्निबाण से सुबाहु का संहार किया ॥ ९१० ॥

—शेष राक्षस-दल का, एकसाथ, एक मानव-शर से संहार कर दिया। सुर (देवता) मुदित हुए (और) वहाँ पुष्पवृष्टि की। (राम की) मुनिकोटि ने सराहना की। पूर्वकाल में वृत्रासुर का संहार करने के बाद, देवता-समूह के एकत्र होकर स्तुति करने पर, विराजमान देवताविभु (इन्द्र) के समान, उस क्षण राम बाहुशौर्य से यज्ञ के शत्रुओं को दंडित कर महान्-वैभव से विलसित हुए। अतिनिष्ठा के शोभित होने पर, विश्वामित्र तब समस्त क्रतुकर्म को सम्पूर्ण कर आए (और)

गडगि यज्ञारुल गडगि शिक्षिंचि । विलसिल्लें घनमैन विभवंबुतोड;
नतिनिष्ठ वेलय विश्वामित्रुडंत । ग्रतुकर्ममंतयु गडतेंचि वच्चि,
'नेलकोनि रघुराम! नी प्रसादमुन। गलगक चेल्लिपगंटि नी क्रतुवु'
ननि'कृतार्थुडनैति' ननि कौगलिंचि। विनुतिंचि रामुदीविंचि हर्षिचें;
ननघमानसुडु विश्वामित्रमौनि । यनुरागमुनु बोन्दि यच्चोट दामु
भूवरुलारात्रि बुच्चि यिम्मुलनु । वेविन पूवह्णिविधुलाचरिंचि९२०
मुनुलकु ब्रणमिल्लि मुनुपडि गाधि । तनयुनि गनुगोनि 'तापसप्रवर !
यिक नेय्यदि कार्य? मेरिगिपु; नीकु । गिंकरुलमु; नीदु कृपकु बात्रुलमु'
अनिन नच्चटि मौनुलंदरु गाधि । तनयु मुन्निडिकोनि तामिट्टुलनिरि

मिथिलानगर प्रयाणमु

"जलजाप्तकुलवर्य! जनक भूविभुडु। चेलुवोप्प जन्नंबु चेयुचुन्नाडु
मनमंदुबोद मम्मनुजेशुनिंट । त्रिनयनु पाटिंचु दिव्यकार्मुकमु
गंधादिपूजल गरमोप्पु देव । गंधर्वयक्ष राक्षस वीर वरुलु
मोदलैन वारिकि मुन्ननेकुलकु । नदियेत्त नेक्किड नलविकाकुंडु

बोले—'हे रघुराम ! तुम्हारे प्रसाद (कृपा) से, बिना क्षुब्ध हुए, इस क्रतु को सम्पन्न कर सका। मैं कृतार्थ हुआ हूँ।' ऐसा कह (राम को) गले लगा, स्तुति कर, राम को आशीर्वाद देकर, (वे) हर्षित हुए। अनघमानस उन विश्वामित्र मुनि के अनुराग को प्राप्त कर, वहाँ उस रात को राम ने अच्छे ढंग से बिता दिया। प्रातः पूर्वाह्न् विधियों से निवृत्त हो, मुनियों को प्रणाम कर, पहले गाधितनय को देख बोले—'हे तापस-प्रवर। अब कौन-सा कार्य है (करना होगा) ? बता दो। (हम) तुम्हारे किंकर (दास) हैं। तुम्हारी कृपा के पात्र हैं।' (ऐसा) कहने पर, वहाँ के सभी मुनियों ने गाधितनय विश्वामित्र को आगे कर स्वयं यों कहा, ॥ ९२३ ॥

मिथिला नगर को प्रयाण

—"हे जलजाप्त (सूर्य)-कुल (वंश)-वर ! महाराजा जनक बड़ी शोभा के साथ यज्ञ कर रहे हैं। हम वहाँ चलेंगे। उस मुनुजेश (राजा) के यहाँ त्रिनयन (शिवजी) की आज्ञा मानने वाला दिव्य कार्मुक (धनुष) है। गंध आदि पूजाओं से वह अति शोभायुक्त है। देव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस आदि अनेक श्रेष्ठ वीरों द्वारा इससे पहले उठाकर चढ़ाते समय यह उनकी शक्ति के बाहर रहा है (वे वीर असमर्थ रहे हैं।) 'ऐसे धनुष को

नट्टि विल्लुनु बट्टि येटुलेक्कुपेट्टि । गट्टिगा नेत्तिन घनुनकु नतडु
तन कूतु निच्चेद दप्पक यनुचु । ननुचुन्नवाडनि यंदरु नपुडु
जननाथ ! याशरासन ललामंबु । जनकुनि जन्नंबु जनु जूड नीकु"९३०
ननुचु विश्वामित्रुडादिगा सकल । मुनुलु ना वीरोत्तमुल दाशरथुल
ललितपुण्युल मिथिलापुरंबुनकु । जेलुवार बयनंबु सेसि सम्मदमु
नोन्दि भागीरथि युत्तरतटमु । जेन्दि हिमाद्रियु सिद्धाश्रमंबु
वलपट निडि यक्षवल्लभु दिशकु । बोलुपार जागिन भूरिमार्गमुन
मूडु योजनमुलु मूडु जामुलकु । नाडेगि यट शोणनदमु तीरमुन
विडिसि तीर्थस्नान विहितकर्ममुलु। नडपि रम्यस्थलि नरनाथसुतुलु
संतोषमुन मुनीश्वरुलतो नुंडि ; ।रंत गौशिकु जूचि या रामुडनियें९३७

कौशांबि वृत्तांतमु

'गरमु प्रजावृद्धि गलुगु नी देश । मरय नेव्वरिदेश? मानति'म्मनिन
"भूनाथ ! विनु ब्रह्मपुत्रुंडु कुशुडु ।ना नोक्क मुनि महोन्नतकीर्ति गलडु;
अतडुनु वैदर्भियनु निंति वलन । सुतुल नल्वुरगांचे सुरुचिराकृतुल९४०

पकड़कर, (प्रत्यंचा) चढ़ाकर, सुचारु रूप से उठाने वाले महानुभाव को मैं अवश्य अपनी पुत्री दूँगा, ऐसा वह (जनक) कह रहा है।' ऐसा कहकर सब ने तब (कहा), 'हे जननाथ ! उस शरासन (धनुष) ललाम (श्रेष्ठ) को (और) जनक के यज्ञ को तुम्हें देखना चाहिए।' ॥ ९३० ॥

(ऐसा)—कहते हुए विश्वामित्र आदि सभी मुनियों ने उन वीरोत्तम, ललित-पुण्य वाले दशरथ के पुत्रों को मिथिलानगर की शोभा-यात्रा के लिए प्रस्थान करवाया। बड़े हर्ष से (वे सब) भागीरथी के उत्तर तट पर पहुँचे। (वहाँ से) हिमाद्रि (और) सिद्धाश्रम को दक्षिण पार्श्व में छोड़कर, यक्षवल्लभ (कुबेर) की दिशा (उत्तरदिशा) की ओर सुन्दर सुरम्य मार्ग पर तीसरे पहर तक तीन योजन चलकर उस दिन शोण नदी के किनारे ठहरे। तीर्थ-स्नान (आदि) विहित कर्मों से निवृत्त हुए। (उस) रम्यस्थल पर (वे) राजकुमार मुनीश्वरों के साथ आनन्द के साथ रहे। तब कौशिक (विश्वामित्र) की ओर देखकर वे राम बोले, ॥ ९३७ ॥

कौशांबी की कथा

—'अत्यधिक प्रजा-समृद्ध यह देश, किसका है ? निर्देश कीजिए।' राम के ऐसा कहने पर (विश्वामित्र ने कहा,) 'हे भूनाथ ! सुनो, (प्राचीनकाल में)

ब्रशमितात्मुल धूर्तरजसु गुशांबु ।गुशनाभु वसुवु; नक्कौमरुलु मिगिलि
यनिवार्य शौर्युलै यनुपमलील । दनरु महाक्षत्रधर्मंबु नडप
गौडुकुल चरितंबु गुणमुलु जूचि । यडरु संतसमुतो ना कुशुंडनियें,
'निल ब्रजापालनं बेलमि गाविपु । डलघुकीर्तुलु गल्गु' नन मुदमंदि
कौशलंबुन नौप्पु ना कुशांबुंडु । कौशांबि यनु पेर गाविंचे बुरमु ;
दशरथात्मज ! महोदयमनुपुरमु । गुशनाभुडौनरिंचे गुशलुडै धरणि;
शूरुंडु धूर्तरजुंडु निर्मिंचे । नारंगबुरमु धर्मारण्यमनग;
वसुवु निम्मुल गिरिव्रजमनुपेर । बसनुग निर्मिंचे बट्टणंबौकटि ;
यिदि प्रीति नव्वसुवेलुदेशंबु । मुदमंद गिरुलैदु मुंदर नौप्पु,
ना नगमध्यंबुनंदुनु माग । धानाममुन नौकतटिनि सेन्नौन्दु ; ९५०
जालि यम्मगधदेशंबेल्ल वसुबु । पालिंचुचुंडुनु बरमधर्ममुन ;
नच्चेरु वडरंग ना कुशनाभु । डच्चरलेम घृताचि यंदेलमि
गन्नुलु मरुनंपगमुलु ना नौप्पु । कन्नेल नूर्वुर गडु रूपवतुल

ब्रह्मा का पुत्र कुश नामक महान् कीर्तिवाला एक मुनि था। उसने वैदर्भी नामक स्त्री से सुरुचिर आकृति वाले, ॥ ९४० ॥

—शान्त-आत्मा धूर्तरज, कुशांबु, कुशनाभ और वसु नामक चार पुत्रों को प्राप्त किया। अतिशय शौर्य और पराक्रम से युक्त इन पुत्रों के अनुपम लीला-युक्त महाक्षत्रधर्म का आचरण करने पर, पुत्रों के चरित्र और गुणों को देखकर, कुश ने अति प्रसन्न होकर कहा—'(इस) पृथ्वी पर प्रजा का पालन सहर्ष करो, (उससे तुम लोग) अत्यन्त यशस्वी होगे।' ऐसा कहने पर प्रसन्न होकर, कुशल कुशांबु ने कौशांबी के नाम से एक नगर (का निर्माण) किया। हे दशरथात्मज। (इस) धरती (पर) कुशल कुशनाभ ने महोदय नामक पुर (का निर्माण) किया। शूर धूर्तरज ने धर्मारण्य नामक सुन्दर नगर का निर्माण किया (और) वसु ने गिरिव्रज नामक (अत्यंत) रमणीक पट्टण (नगर) बसाया। यह वही देश है, (जिस पर) वह वसु प्रेम के साथ शासन करता है। यह पाँच सुरम्य पर्वतों से सुशोभित है। उन पर्वतों के मध्य मागधा नाम की एक (नदी) बहती है ॥ ९५० ॥

—समर्थ हो उस समस्त मगध देश (पर) वसु परम धर्म के साथ (प्रजा का) पालन करता है। आश्चर्य अधिक हो, (इस रूप में) उस कुशनाभ ने अप्सरा स्त्री घृताची में (के द्वारा) प्रसन्नता से, अत्यन्त रूपवती सौ कन्याओं को जन्म दिया, जिनकी (उन कन्याओं की) आँखें कामदेव के बाणों के समान शोभायमान थीं। वे तरुणियाँ कमनीय कान्ति

गनियें ; नत्तरुणुलु गमनीयकांति । विनुत यौवनकळा विस्फूर्तुलमर
मंजीर मेखलामधुर वाचाल । मंजुल कंकण मणिशिंजितमुलु
गरमौप्पगा दाळगतुलनगूडि । मौरय लीलालास्यमुलु सल्पुवारु
मुरिपेम्बुलिपार मौगि मृदंगादि । वर वाद्यमुलु वेड्क वायिंचुवारु
बाणिपल्लवलघुस्फारितलील । वीणामृदुक्वणविततंबुगाग
माकंद मंजुल मधुपानमत्त । कोकिलध्वनि गूडिकौनि पाडुवारु
नेरिकप्पु गौप्पुलु निटलंबुलौप्पु । मरिवालु जूपुलु माटतीपुलुनु९६०
निक्किनमुक्कुलु निग्गु जेक्कुलुनु । जक्केर मोवुलु जारु नीवुलुनु
जक्कव कवनव्वु चन्नुल क्रौव्वु । जुक्करायल गोमुसौबगु नेम्मोमु
दब्बर कौनुलु दळुकु मेनुलुनु । अब्बुरंबगु तौडलंचलनडलु
नगुचु नुद्यानंबुनंदु ग्रीडिप । दगिलि या चेलुवल दप्पक चूचि
कामंधुडै सर्वगतुडैन पवनु । डा मानिनुल जूचि यर्थितो बलिकें;
'मानिनीमणुलार! मरि विनुडिंक। बूनि चेप्पेद मीकु बौसगंग निपुडु

(और) विनुत (प्रख्यात) यौवन-कला की विस्फूर्ति से युक्त हो, उद्यान में गईं। (वहाँ कुछ अपने) मंजीर, मेखला की मधुर ध्वनियों (और) मंजुल कंकणों की मणियों की ध्वनियों के साथ, परम सुन्दरता से ताल-गति के साथ, नाट्यानुगुण-शब्द-गुम्फन से युक्त लीला-लास्य करने लगीं। (कुछ) अपने गमन-विलास की शोभा के साथ, क्रम से मृदंग आदि वर (श्रेष्ठ) वाद्यों को शौक से बजा रही थीं। कुछ पाणि-पल्लवों (कर-पल्लव) को शीघ्र गति से चलाती हुई, वीणाओं को मृदु रूप से ध्वनित कर (बजा) रही थीं। कुछ (युवतियाँ) आम्रमंजरी के मंजुल मधुपान से मत्त कोकिल के स्वर के समान गा रही थीं। सुन्दर जूडाओं के सिर पर सुशोभित होने पर, बाँकी चितवन (और) वचनों की मधुरता, ॥ ९६० ॥ —ऊँची नासिका, चिकने गाल, मधुर ओष्ठ, ढीली पड़ती नीवी, चक्रवाक की जोड़ी का उपहास करने वाले स्तनों का दर्प, चन्द्रमा के सौकुमार्य से युक्त सुन्दर मुख, अस्ति-नास्ति का भाव पैदा करने वाली कमर, चमकीले शरीर, आश्चर्य चकित करने वाली जाँघ, हँसगमन (आदि) से युक्त हो वे (युवतियाँ) उद्यान में क्रीड़ाएँ करने लगीं, तो उन सखियों पर आसक्त हो (उन्हें) अनिवार्यतः देखकर, काम से अन्धा बन, सर्वगत (सर्वत्र गतियुक्त) पवनदेव उन मानिनियों को देख, प्रीति से (यों) बोले—'हे मानिनीमणियो, अब सुनो ! आपके अनुकूल हो (ऐसी) बात का उपक्रम कर कहता हूँ। हे नलिनाक्षियो ! (कमलनेत्रियो !) मेरा वरण करो (और) शोभा से अमरत्वसिद्धि को प्राप्त करो।

फुर्ने मंझि फासी, पिया जीअ जहान जा ।
सदा भवनि सामी चए, मूर्ख मवासी ।
रहे अलेपु आकास जाँ, को व्रिलो वेसासी ।
अलखु अविनासी, सम द्रिठो जँहिं साध संगि ।। २२४ ।।

सामीजी कहते हैं कि संसार के जीव भ्रमों में उलझ गये हैं। वे अहंकारी मूर्ख सदैव ही (भवसागर में) भटकते रहते हैं। वही विरला विश्वासी आकाश की भाँति निर्लिप्त रहता है, जिसने साधुओं के संग से अलख अविनाशी (आत्मा) को समान रूप से देखा है। (जिसने एक ही आत्मा को सब में देखा है) ।। २२४ ।।

फुर्ने सभि फाहे, छद्रिया जीअ जहान जा ।
भुली भवनि पाणहीं, रूप रंग ठाहे ।
सामी सटी कँहिं सूर्मे, पच्छिन्नता लाहे ।
नकी रुली राहें, नकी खणे खोआरु थी ।। २२५ ।।

सामीजी कहते हैं कि भ्रमों ने संसार के जीवों को उलझा दिया है, अतः वे अपने (स्वरूप) को भूलकर अपने ही द्वारा बनाये हुए रूप-रंगों में (माया में) भटक रहे हैं। किसी शूरवीर (ज्ञानी) ने ही मायावी भ्रमों को पटक कर उतार दिया है (माया से मुक्त हो बैठा है), अतः न तो वह अलग-अलग रास्तों (मत-मतान्तरों) में भटकता है और न ही (माया रूपी) बोझ को उठाकर बदनाम होता है ।। २२५ ।।

ब्रांभण ब्रधु म ठाठ, कूड़ो माया मोहजो ।
खणी हणंदइ खद्र में, ईहा द्राइणि द्राठ ।
छद्रे पोथ्यूं पाठ, जाग्री द्रिसु जग्रदीस खे ।। २२६ ।।

ब्राह्मण (सामीजी) कहते हैं कि (ऐ मनुष्य) माया मोह के झूठे ठाठों को मत बाँध (झूठी माया में अपने को मत खपा) क्योंकि यह हठीली डाइन तुझे उठाकर गड्ढे में डाल देगी। अतः पोथी (धार्मिक पुस्तकों का अध्ययन) तथा पूजा-पाठ को छोड़ कर जागृत होकर जगदीश्वर को देख ।। २२६ ।।

विषयुनि विग्राए, विधा जीअ जहान जा ।
स्पर्श आदिक साँ मिली, जन्म थो पाए ।
सामी साधू सूर्मो, बचियो साध सङ्गति साए ।
ब्याई बुझाए, पाए पूरणु पदवी ।। २२७ ।।

विषयों ने संसार के जीवों को नष्ट कर दिया है; वे स्पर्श आदि से मिल कर (इन्द्रियों का सुख भोग कर) जन्म प्राप्त करते रहते हैं। सामीजी कहते हैं कोई शूरवीर साधु ही सन्तों के संग तथा आश्रय से इन (विषय वासनाओं) से बच गया है। वह द्वैत मिटाकर (आत्मा तथा परमात्मा को एक समझ कर) पूर्ण-पद प्राप्त करता है ॥ २२७ ॥

वेई विश्व सारी, वही वाच वहण में।
लंघे सघे लख्य ते, को भाग्यवानु भारी।
सामी जँहिंखे सतिगुरूअ, गति मति सेखारी।
समता सचारी, मुखि रखी मौजाँ करे ॥ २२८ ॥

सारा संसार (माया के) तेज़ प्रवाह में बहता जाता है; कोई महान भाग्यशाली ही इसे (माया रूपी समुद्र को) पार कर (ज्ञान-रूपी) लक्ष्य की ओर उन्मुख हो सका है। सामीजी कहते हैं कि जिसे सद्गुरु ने गति (संसार में चलने का ढंग) तथा मति (बुद्धि) सिखाई है (उपदेश दिया है) वही समता एवं सचाई को अपना कर (परमात्मा की ओर) उन्मुख होकर आनंद लूटता रहता है। (माया से विरक्त हो, आत्म-साक्षात्कार में ही मग्न रहता है।) ॥ २२८ ॥

कल्पत कया खुआरु, सभे जीअ जहान जा।
वेही पँहिंजे घर में, करिनि कीन वीचारु।
कोर्युनि में को हिकिड़ो, हर्जनु रहे हुशारु।
कयो जँहिं दीदारु, सामी सुपिर्युनि जो ॥ २२९ ॥

सामीजी कहते हैं कि (माया के) प्रपंच ने संसार के जीवों को बदनाम कर दिया है। वे (हृदय रूपी) घर में बैठ कर विचार नहीं करते हैं (आत्मा का चिंतन नहीं करते हैं)। करोड़ों में से हरि के किसी एक भक्त ने ही सावधान होकर प्रियतम का दर्शन किया है ॥ २२९ ॥

कल्पत किरोधी, कया जीअ जहान जा।
सीतलु रहे स्वभाव में, ब्रह्मण को ब्रोधी।
गुर्गम जँहिं सोधी, काया पर्ची पँहिंजी ॥ २३० ॥

ब्राह्मण (सामीजी) कहते हैं कि (माया के) प्रपंच ने संसार के जीवों को क्रोधी बना दिया है। कोई ज्ञानवान् शिष्य, जिसने सन्तुष्ट

होकर अपनी काया (शरीर) ढूँढी है (काया में स्थित आत्मा को ढूँढ लिया है), वही अपने भावों में शीतल रहता है ॥ २३० ॥

कल्पत कुती छिती, कँहिंखे छड्डे कीन की ।
सामी कयाईं सभ खे, खपाए ख़फ़िती ।
इस्थीत रहे आकास जाँ, को जोगेस्वरु जुगिती ।
गुज़र जी ग़णती, सटे विधी जँहिं साध सङ्गि ॥ २३१ ॥

सामीजी कहते हैं कि (माया का) प्रपंच पागल कुत्ते की तरह किसी को भी नहीं छोड़ता (जिस प्रकार पागल कुत्ता सबको काटता है उसी प्रकार माया भी सब को काटती रहती है) । इस (माया) ने सब को फँसाकर नष्ट कर दिया है । वही युक्तिनिपुण योगीश्वर आकाश की भाँति स्थिर रहता है, जिसने साधुओं के संग से जीवन-निर्वाह की चिन्ता त्याग दी है ॥ २३१ ॥

कल्पत कुती छिती, द्राड़े फाड़े द्रन्दरी ।
सामी छड्डियाईं क्षण में, ख़लिक करे ख़फ़िती ।
साबितु रहे स्वभाव में, को जोगेश्वर जुगिती ।
गुज़र जी ग़णिती, फिटी कई जँहिं फहम साँ ॥ २३२ ॥

सामीजी कहते हैं कि (माया रूपी) प्रपंच, बड़े दाँतों वाले पागल कुत्ते की तरह सब को चीरता-फाड़ता रहता है । वह एक क्षण में ही संसार के लोगों को अपने फन्दे में फँसा देता है । वही युक्तिनिपुण (विचारवान्) योगीश्वर अपने ही विचारों में सकुशल (माया से सुरक्षित) रहता है, जिसने चतुराई से जीवन-निर्वाह की चिन्ता त्याग दी है ॥ २३२ ॥

कल्पत जी कहिरी, सिन्धु वहे सामी चए ।
तँहिं में जीअ जहान जा, लुढ़िया वञनि लहरी ।
को प्रेमी लंघे पारि पियो, तौकलि साणु तरी ।
ड्रिठो जँहिं वरी, पँहिंजे अख्यें पाण खे ॥ २३३ ॥

सामीजी कहते हैं कि प्रपंच का ऐसा समुद्र बह रहा है, जिसकी लहरों में संसार के जीव बह जाते हैं । वही प्रेमी युक्ति से (मायारूपी समुद्र को) तैर कर पार हो गया है जिसने उलट कर (विरक्त होकर) अपनी आँखों से अपने आप (परमात्मा) को देख लिया है ॥ २३३ ॥

कल्पत जी कूड़ी, छोति लगी हिन जीअ खे ।
चाह रख्याईं चित में, चमाड़ी चुहुरी ।
तँहिं विञायसि घरजी, निजु निर्मल मूड़ी ।
कढे करूड़ी, त सुखी थिए सामी चए ॥ २३४ ॥

इस जीव को झूठी माया की ऐसी छूत लग गई है कि उसने अपने चित्त में चमड़े की बुरी चाहना रख ली है (आत्मा में आसक्त न होकर चमड़े के बने शरीर में ही आसक्त हो बैठा है)। इस इच्छा से वह (हृदय रूपी) घर की पवित्र पूँजी तक खो बैठा है (शरीर में मोह रखने के कारण वह आत्म-धन से वंचित हो गया है)। सामीजी कहते हैं जब वह (जीव) (अपने हृदय से) झूठी आशाएँ निकाल देगा, तभी सुखी होगा ॥ २३४ ॥

कल्पत मुठो जीउ, वञी पियो विस्तार में ।
भर्म मंझि भुली करे, दह दिस फोले पीउ ।
तप तीर्थ साधन करे, सहे गर्मी सीउ ।
घर में पहिड़े पीउ, सामी ड्रिसे कीनकी ॥ २३५ ॥

माया का मारा हुआ जीव (प्रपंच के झूठे) विस्तार में जा पड़ा है। वह भ्रम में भूलकर, प्रियतम को दसों दिशाओं में ढूंढता है। वह (प्रियतम से मिलने के लिए) तप-तीर्थ आदि साधन करता है तथा शीत-उष्णता सहन करता है, पर (हृदय रूपी) घर में झाँक कर प्रियतम को नहीं देखता ॥ २३५ ॥

कल्पत में काहे, मूर्ख पिया मर्म रे ।
चढ़नि चौरासीअ जे, फिरी फिरी फाहे ।
सामी सटी कँहिं सूर्मे, पच्छिन्न पिण्डु लाहे ।
नकी की ग़ाहे, नकी खणे ख़ुआरु थी ॥ २३६ ॥

बुद्धिहीन मूर्ख माया में ऐसे फँस गये हैं कि वे बार-बार चौरासी (लाख योनियों के चक्कर) में फँस जाते हैं। सामीजी कहते हैं कि किसी शूरवीर (ज्ञानी) ने ही परिछिन्नता (भेदभाव) का पिण्ड (माया का बोझ) पटक दिया है। वह न तो (माया के संबंध में) विचार करता है और न ही (माया का बोझ उठाकर) अपने को बदनाम करता है। (वह माया से बिल्कुल निर्लिप्त रहता है) ॥ २३६ ॥

कल्पत मंझि काहे, पिया सभि जीअ जहान जा ।
ज़मनि मरनि मर्म रे, नानां ठाह ठाहे ।
सामी सटी कंहिं सूर्मे, पच्छिन्न पिण्ड लाहे ।
नितु वंडे विराहे, कणिछीअ जाँ कोड़ो रहे ॥ २३७ ॥

संसार के सब जीव माया में ऐसे फंसे हैं कि वे निर्लज्ज होकर, नाना प्रकार के ठाठ रचकर, जन्मते एवं मरते रहते हैं। सामीजी कहते हैं कि शूरवीर (ज्ञानी) ने परिछिन्नता (भेदभाव) का पिण्ड उतार कर पटक दिया है। वह कलछी की भाँति सब को बाँटकर भी स्वयं सदैव कोरे का कोरा रहता है (जिस प्रकार कलछी द्वारा सब को भोजन परस कर दिया जाता है, पर कलछी उस भोजन का उपभोग स्वयं कभी भी नहीं करती है, उसी प्रकार ज्ञानी मनुष्य संसार के सब कार्य करते हुए भी कलछी की तरह कोरा (निर्लिप्त) रहता है ॥ २३७ ॥

कल्पत सिधि कयो, अणहून्दो सन्सारु सभु ।
स्वप्न में सामी चए, जीएं नाना रूप थियो ।
पाणु भुलाए पंहिंजो, सन्से मंझि पियो ।
तदीं भर्मु वियो, जदीं जागी जुर्यो पाण में ॥ २३८ ॥

सामीजी कहते हैं कि जिस प्रकार (जीव) स्वप्न में नाना रूप धारण करता है उसी प्रकार माया ने इस अस्तित्व-हीन (झूठे) संसार को रचा है। (जिस प्रकार सपने में धारण किये हुए सभी रूप झूठे हैं, उसी प्रकार माया द्वारा रचा संसार भी झूठा ही है)। (जीव) अपने स्वरूप को भूलकर भ्रम में पड़ गया है, उसका यह भ्रम तब नष्ट होता है जब वह अपने आप (परमात्मा) से जा मिलता है ॥ २३८ ॥

भर्म जी भारी, छोति लगी हिन जीअ खे ।
चाह रख्याईं चितमें, चमाड़ी चुहुरी ।
कयसि तँहिं कल्पत साँ, सामी दिलि कारी ।
बेहद जी ब्रारी, पूरे वेठो पाणहीं ॥ २३९ ॥

सामीजी कहते हैं कि इस जीव को भ्रम की भयानक छूत लग गई है, जिससे उसने अपने चित्त में चमड़े की बुरी चाह (इच्छा) रख ली है। (वह आत्मा में आसक्त न होकर चमड़े के बने शरीर में ही आसक्त हो गया है।) उस (इच्छा) ने धोखे से उसका हृदय काला

कर दिया है अतः वह स्वयं ही बेहद (अनंत) की खिड़की बन्द कर बैठा है (परमात्मा से मुख मोड़ बैठा है) ॥ २३९ ॥

भर्म जी भारी, भिट लगी हिन जीअ खे ।
चाह रख्याईं चित में, चुहरी चमाड़ी ।
कयसि जँहिं कल्पत साँ, सामी दिलि कारी ।
करे न करारी, परे ज्ञाणी पिय खे ॥ २४० ॥

सामीजी कहते हैं कि इस जीव को भ्रम की भयानक छूत (छूत की बीमारी) लग गई है, अतः उसने अपने चित्त में चमड़े की अपवित्र इच्छा रख ली है, जिसने धोखे से उसके हृदय को काला बना दिया है। इस कारण अपने आप (परमात्मा) को दूर समझ कर कभी भी शान्ति प्राप्त नहीं कर पाता है ॥ २४० ॥

भर्म भुजंगु भारी, हले चले कीन की ।
ड्रंगी जँहिं ड्रन्दनि रे, सामी विश्व सारी ।
त्रिले वीचारी, को बचियो गुर ज्ञाति साँ ॥ २४१ ॥

सामीजी कहते हैं भ्रम रूपी विकराल भुजंग, चलता-फिरता नहीं है फिर भी उसने सारे विश्व को बिना दाँतों के ही डस लिया है। अतः कोई विरला विचारवान् ही गुरु के ज्ञान से इस (भुजंग) से बच पाया है ॥ २४१ ॥

भर्म मँझि भिटकी, मूर्ख मोआ केतिरा ।
सति ज्ञाणी सन्सार खे, अन्धा पिया अटकी ।
भर्की भगी कँहिं भाग्यवान, ममत्व जी मटिकी ।
लटके मंझि लटिकी, सामी रह्यो स्वरूप जे ॥ २४२ ॥

सामीजी कहते हैं कि कितने ही मूर्ख (अज्ञानी) भ्रम में भटक-भटक कर मर गये हैं। वे अन्धे संसार को सत्य मान कर, उसी में ही अटक गये हैं। किसी भाग्यशाली ने ही उत्तेजित होकर ममता रूपी मटकी तोड़ दी है (ममता से मुक्त होगया है)। वह परमात्मा की लटक (नखरे) पर ही रीझ गया है (प्रसन्न हो गया है) ॥ २४२ ॥

भर्म मंझि भुली, पिया सभि जीअ जहान जा ।
जन्मनि मरनि मति रे, रसनि काणि रुली ।
सामी लधो कँहिं सूर्मे, अन्भय घरु असुली ।
मेटे कल्प कुली, माणे मौज मुक्ति जी ॥ २४३ ॥

सामीजी कहते हैं कि संसार के सभी जीव भ्रम में (अपने आप को) भूल गये हैं। वे बुद्धिहीन विषय-रस के पीछे भटक कर जन्मते एवं मरते रहते हैं। किसी शूरवीर (ज्ञानी) ने ही आत्मज्ञान रूपी आदि घर ढूँढ लिया है, अतएव वह समस्त प्रपंच को भुलाकर, मुक्ति का आनंद लूट रहा है ॥ २४३ ॥

भर्म मंझि भुली, पिया सभे जीअ संसार में।
जन्मनि मरनि मति रे, रसनि काणि रुली।
सामी लधो कँहिं सूर्मे, अन्भय घरु असुली।
मेटे कल्प कुली, इस्थति थियो आकास जाँ ॥ २४४ ॥

सामीजी कहते हैं कि संसार में सब जीव भ्रम में भूल गये हैं। वे बुद्धिहीन विषय-रस के पीछे भटक कर जन्मते और मरते रहते हैं। किसी शूरवीर (ज्ञानी) ने ही आत्मज्ञान आदि का घर ढूँढ लिया है, अतएव वह समस्त प्रपंच को भुलाकर, आकाश की तरह स्थित हो गया है ॥ २४४ ॥

भर्म मंझि भुली, मूर्खु फोले आत्मा।
ब्रारु विञाए निंड्रमें, जींए दरिदरि नारि रुली।
जाग्ये ग्रन्ढि खुली, ब्रिन्ही जी ब्रालो चए ॥ २४५ ॥

सामीजी कहते हैं कि जिस प्रकार नींद में नारी बालक गँवाकर उसे द्वार-द्वार ढूँढती रहती है, उसी प्रकार भ्रम में भूलकर मूर्ख, आत्मा को (अपने से बाहर) ढूँढता रहता है। पर दोनों (नारी एवं मूर्ख) की (भ्रम रूपी) गाँठ जागृत होने पर ही खुलती है। (जिस प्रकार बालक के समीप होते हुए भी नारी अज्ञान-वश उसे द्वार-द्वार ढूँढती फिरती है, जागृत होने पर उसे अपनी भूल की प्रतीति होती है, उसी प्रकार आत्मा के अत्यन्त निकट होने पर भी अज्ञान-वश मनुष्य उसे बाहर ढूँढता फिरता है, पर ज्ञान के उदय होते ही उसे अपनी भूल का अनुभव होता है) ॥ २४५ ॥

भर्म मंझि भुली, मूर्ख मुठा केतिरा।
पर्ची द्रिसनि न पँहिंजो, अन्भय घरु असुली।
को आशिकु चढ़ियो अछ ते, मेटे कल्प कुली।
जँहिंजो कँवलु खुली, सामी पियो साध सङ्गि ॥ २४६ ॥

भ्रम में (अपने स्वरूप को) भूल कितने ही मूर्ख नष्ट हो गये हैं। वे सन्तुष्ट होकर अपने आत्म-ज्ञान के आदि घर को नहीं देखते (आत्म-ज्ञान से वंचित रहते हैं)। सामीजी कहते हैं कि वही प्रेमी, समस्त भ्रम मिटा कर ज्ञान के मार्ग पर अग्रसर हुआ है, जिसका साधुओं के संग से (हृदय रूपी) कमल विकसित हो गया है (जिसे आत्म-ज्ञान मिल गया) ॥ २४६ ॥

भर्म रे भाणो, मन्यो जँहिं महबूबजो।
तिनि जो मनु मौज में, सहजे सामाणो।
द्रेई वेहाणो, सामी सुम्हियां सेजते ॥ २४७ ॥

सामीजी कहते हैं जिन्होंने भ्रमरहित होकर, प्रियतम की इच्छा को स्वीकार कर लिया है, उनका मन सहज ही आनंद में लीन हो गया है तथा वे तकिया लगाकर (स्थिर होकर) (आत्म-पद रूपी) शय्या पर सो गये हैं ॥ २४७ ॥

भर्म मिटायो भारी, जुदाईअ जो जग में।
जन्मनि मरनि जीअ सभि, बणी देहि धारी।
सामी मिल्यो स्वरूप साँ, को उतमु अधिकारी।
नानत निवारी, जाग्री जँहिं अन्दर जी ॥ २४८ ॥

संसार में द्वैत (जीव और परमात्मा को अलग समझने की भावना) के भयानक भ्रम ने सब को मिटा दिया है। सब जीव देह धारण कर जन्मते एवं मरते रहते हैं। सामीजी कहते हैं कि वही श्रेष्ठ अधिकारी स्वरूप से जा मिला है, जिसने जागृत होकर हृदय से द्वेष को निकाल दिया है ॥ २४८ ॥

भेदु भर्मु भासे, जँहिंखे जीव ब्रह्मजो।
तँहिंखे कालु कल्पत जो, ग्रहे ग्रासे।
साख द्रिनी सामी चए, कँहिं नेहींअ निरासे।
जँहिंजो पटु पासे, समुझाए कयो सतिगुरूअ ॥ २४९ ॥

जिसे जीव तथा ब्रह्म में भेद दिखाई देता है, उसे प्रपंच रूपी काल पकड़ कर निगल जाता है (वह माया में ही उलझ जाता है)। सामीजी कहते हैं उसी निराश प्रेमी ने यह सक्षी दी है, जिसे सद्गुर ने समझाकर, उसके (अज्ञान के) आवरण को हटा दिया है ॥ २४९ ॥

अमरेंद्रोध्यानदिं पूमळेकरेयें सुरेंद्रागमं रागमं बी-
रे मरुद्गंभीर भेरीनिनदमोदवे निर्वाणकैवल्यमांग-
ल्य महोत्सव प्रमोदामरकलकलमानंदमं माडे रोमां-
चमनानंदाश्रुवं ताळ्दिदनमलयशं भारतीकर्णपूरं ॥ ७७ ॥

इदु परमजिनसमय कुमुदिनी शरच्चंद्र बालचंद्र मुनींद्र चरणनखकिरण चंद्रिकाचकोर भारतीकर्णपूर श्रीमदभिनवपंप विरचित मप्प रामचंद्र चरित पुराण-दोळ् वंशवर्णनं--द्वितीयाश्वासं ।

॥ द्वितीययाश्वासम् समाप्तम् ॥

जब इस मोक्ष महोत्सव से सन्तुष्ट-चित्त होकर देवताओं ने आनन्द से कलकल ध्वनि की तो सरस्वती के कर्णाभरण के समान अभिनव पम्प (अत्यन्त) रोमांचित हुआ । ७७

जो परमजिनसमय और कमलों के लिए शरत्काल के चंद्र के समान माने जाने वाले बालचंद्र मुनींद्र के पदनख-रूपी चंद्र के प्रकाश से पवित्र है, एवं जो सरस्वती के कर्णाभरण के समान है, (ऐसे कवि अभिनव पंप) के 'रामचंद्र-चरित-पुराण' के वंश-वर्णन का यह द्वितीयाश्वास समाप्त हुआ ।

॥ द्वितीयाश्वास समाप्त ॥

त्रितीयाश्वासं

श्रीवनितें वक्षदोळ् मु-
क्तावळियंतेसेयें तोट्टिलोळ् पट्टित्त-
ल्भूवळयं भुजदोळ् शो-
भावहमेनें पेंपुवेत्तनभिनव पंपं ॥ १ ॥

आश्वास—३

लक्ष्मीदेवी विष्णु भगवान् वक्षस्थल पर मोती की माला के समान सुशोभित हो मानो पालने में सोयी थी । इधर अभिनवपंप (कवि) इस अभिमान से प्रसिद्ध हुआ मानो समस्त भूमंडल उसकी भुजाओं में छिपा है । १ बालसूर्य-सा जगको प्रकाशित करता हुआ, तथा बालचंद्र-सा सारे

ऎळ नेसरंतॆ जगमं
बॆळगिदनॆळदिगळंतॆ सकल धरित्री
तळमनॆरगिसिदनॆळवॆयॊ-
ळिळॆ बण्णिसॆ दशरथं भगीरथ चरितं ॥ २ ॥

आ बंशजर गुणंगळ-
नावगमॊळकॊंडु तन्न विशदयशो मु-
क्तावळियं धरॆगित्तु ध-
रावल्लभनत्युदात्तनॆनॆ पॆसर्वडॆदं ॥ ३ ॥

चिरकालद कळिवूवॆ-
दिरदॆ विरिंचिय मुखारविंदमनुळिदा-
दरदिंदिर्दळ् सितमधु-
करवधु वाग्वधु नरेंद्र मुखसरसिजदॊळ् ॥ ४ ॥

जडधिथ रत्नंगळ्पॊ-
दॊडविनुपाश्रयदिनॆसॆववोळ् दशरथ निं
जडजजन विद्यॆगळ् नू-
र्मडिसिदुवाश्रय विशेषमें केवलमे ॥ ५ ॥

अरुवत्तु नाल्कु विद्यॆम-
नरिदुं दशरथन चित्तमनुरागदि ने-

संसार को अपने पादकमलों पर नवाता हुआ, भगीरथ के समान चरित वाले दशरथ बचपन में सब लोगों से प्रशंसित हुआ। २ सूर्यवंश के राजाओं के गुणों को अपने में ग्रहणकर, मुक्त-कलाप सदृश अपनी सर्वस्तुत्य कीर्त्ति को संसार को प्रदानकर उसने उदात्त यश पाया। ३ सदा ब्रह्म के मुखारविंद में निवास करनेवाली, शुभ्रवसना मधुर वचनों की वाग्देवी नामक भ्रमरी उसे (ब्रह्म को) छोड़कर दशरथ के मुखकमल में निवास करने लगी। ४ समुद्र के तल में उत्पन्न होनेवाले रत्नों की शोभा जिस तरह कनकाभरणों के आश्रय (सम्पर्क) से बढ़ती है, उसी तरह दशरथ के आश्रय में ब्रह्म की विद्या सौगुनी बढ़ गई। यह इस बात की साक्षी है कि आश्रयदाताओं की महत्ता सामान्य नहीं होती। ५ चौसठ विद्याओं का ज्ञाता दशरथ का मन (किसी) मोह से विचलित नहीं हुआ। धर्म-शास्त्र के ज्ञाता का मन धर्म को त्यागकर अधर्म को कैसे अपना सकता

नेरगिदुदो धर्मशास्त्र
क्करिवुळ्ळ विकयेमोळ् मनं निरिसुगुमे ॥ ६ ॥

ओदिदोडेनरगिळि क-
ल्तोदुववोल् धर्मशास्त्रमं दशरथनं-
तोदि तिळिदवनिपति म-
र्यादेयोळेसगुवुदु धर्मपरनेने लोकं ॥ ७ ॥

कादळ् वर्णाश्रम ध-
र्मादिगळं मीरदंतु नेलनं नृपना-
ज्ञादेवते वेदिके म-
र्यादेयोळंभोनिधानमं निलिसुववोल् ॥ ८ ॥

मनमेळदागे वैरिगे मनीषिजनं मनमीये मानिनी
जनमभिमानमं मरेये भूभुवन स्तवनीयमादुदा-
तन बलगैयोळिर्प जयलक्ष्मिगमातन सोल्लोळिर्प वा-
ग्वनितेगमा महीपतिगमप्रतिमं परिपूर्ण यौवनं ॥ ९ ॥

अंतु दशरथनरनाथं नवयौवनलक्ष्मियनप्पुकेय्दु लावण्यलक्ष्मी विराजितेयेनिप्पपराजितेयुं, मदनमोहन विद्यादेवतेय मित्रेयेनिप्प सुमित्रेयुं, कंतु संतापन दीप कळिका प्रभेयेनिप्प सुप्रभेयुं, ओरोर्मे पेरुरदोळिर्प सिरियं गाढालिंगनद नेवदिं नेलेमोलेयोळि-

---

है ? । ६ धर्मशास्त्र को तोते की तरह कंठस्थ करके रटने से क्या लाभ ? उसे जाननेवालों को चाहिए कि वे दशरथ की तरह उसका अध्ययन कर, समझकर, सम्मानपूर्वक पालन करे जिसे जग पसंद करे । ७ दशरथ की राजलक्ष्मी रूपी देवी ने वर्णाश्रम धर्म से आबद्ध उसके शासित राज्य की रक्षा उसी तरह की जिस तरह दिगंत बादलों को अपने वश में रखते हैं । ८ जब शत्रुओं का मन क्षुद्र हुआ (शत्रु पराजित हुए) प्रजाओं ने अपने आपको अर्पित किया और स्त्रियों ने अपने अभिमान को भुला दिया तब दशरथ के दाहिने हाथ की जयलक्ष्मी और उसके वचन में स्थित वाग्देवी को परिपूर्ण यौवन प्राप्त हुआ । ९ इस तरह उसने नवयौवन में, सौंदर्यलक्ष्मी की तरह सुशोभित अपराजिता, कामदेव की विद्यादेवी की मित्राणी सदृश रहनेवाली सुमित्रा, मनोज की दीपलक्ष्मी की प्रभा-सी सुशोभित सुप्रभा, इनको अपने वक्षस्थल पर धारण करनेवाली लक्ष्मी

ट्टौत्तुवंतेदेवत्तुगेवेत्तु, कलभाषित सुधाजलदिं सरस्वतिय कलावलेपमं
कॉचि कळेवंते मोगंबडेदु, प्रणयकलहकेळियिं विजयश्रीयं जनिसुवंते
तोळ्वेरगनप्पुकेय्दु, तनगे मनोनयन वल्लभेयरेनिसे—

कुलसतियरिं नृपं दा- * न लेखेयिं दिगिभमृतकळेयिं शशि मे-
खलेयिं मंदरशैलं * विलासमं तळेदुदेने बडंगं तळेदं ॥ १० ॥

इवनेंतु बेरसि संजेयो- * ळनुरागियेनिप्पनंते नृपनानृपनं-
दनेयरोळनुरागदिनि- * र्दनवरतं तोळगि बेळगिदं सत्पथमं ॥ ११ ॥

नीरोळगिर्दुं पोर्ददु * नीरं नीरेजमेंबवोलबला शृं-
गार रस मग्ननागियु * मारळ वेने तळेदनरसनिंद्रिय जयमं ॥ १२ ॥

कुळभूभ्रत्कूटदोळ् माणिकदेळबिसिलेंतेंते दिक्कुंभि कुंभ-
स्थळदोळ्सिदूरमेंतंतमरनदियोळारक्त नीरेज पत्रा-
वळियेंतंतब्धियोळ्विद्रुम समुदयमेंतंते पर्वित्तु रागा-
विळमप्पंतुर्वियेल्लं दशरथ वसुधाधीश तेजप्रकाशं ॥ १३ ॥

खंडिसि वैरिवंशवनमं कडिदुद्युत शाखेयं भुजा
दंड कृपाणदिं समरि कंटकमं समेदातपत्रदिं

का आलिंगन कर मधुरध्वनि के अमृत से सरस्वती के मुख की मलिनता को धोदेनेवाले के समान मुख पाकर, प्रणय-कलह के खेल में मानो विजयश्री को पाकर, उन्हें अपने मन एवं नेत्रों की रानी बनाया। जिस तरह कुल वधुओं से राजा, दानगुणों से दिग्गज, अमृतकला से चंद्र तथा मेखला से मंदर पर्वत अनुरक्त (अनुरंजित) होता है, उसी तरह राजा दशरथ भी अपनी रानियों से सुशोभित हुए। १० दशरथ उसी प्रकार अपनी पत्नियों के साथ स्नेह से सन्मार्ग में निरत हो गये। जिस प्रकार सूर्य संध्यादेवी से मिलकर अनुराग सहित प्रकाशित होता है। ११ जल में रहकर भी जिस तरह कमल जल से अलग रहता है वैसे ही स्त्रियों के साथ श्रृंगार रस में निरत होते हुए भी दशरथ सदा जितेंद्रिय ही रहे। १२ कुलपर्वत (महेंद्र, मलय, सह्य, शुक्तिमान्, ऋक्ष, विंध्य और पारियात्र नामक सात पहाड़ों का समूह) के शिखर पर माणिक्य की लघु धूप-सा, दिग्गजों के कुंभस्थल के सिंदूर-सा, देवनदी (गंगा, सरस्वती और दृषद्वती नदी) के लालकमल पुष्पों-सा तथा समुद्र में स्थित वज्रों के समूह-सा दशरथ के तेज का प्रकाश संसार की समस्त दिशाओं में फैला। १३

चंडकर प्रतापमखिलोर्वरेगिल्ले तण्पुमाडिदं
दंडधरोत्तमं दशरथं सफलीकृत सन्मनोरथं ॥ १४ ॥

अनिमिष गायकर्दशरथ क्षितिनायकनंकमालेयं
तनतनगोल्दु पाडुवेडेयोळ्पुळकं पोरेपोण्मे सोल्तु के-
ळ्वनिमिष नायकं तनगे चामरमिक्कुव देवकामिनी
जन मणिकंकण ध्वनिगोनल्दवरं किसुगण्चि नोडुवं ॥ १५ ॥

नोडिरे किन्नरर्दशरथ क्षितिनाथन बीरदेळ्गेयं-
पाडेमरुळ्दु केळ्व पददोळ्किविसार्दु जिनुंगे सौरभ-
क्काडुव तुंबिगळ्विजनाथनवर्के कनल्दु माणदी-
डाडुवना नमेरु कुसुमस्तबकंगळ कर्णपूरमं ॥ १६ ॥

बाळ बिसिलिनन तेजम-
नेळिसे नेलनं पयोधिपर्यंतं बाय्-
केळिसि दशरथनोळ्पं
पाळिसि सुखदिदंमरसुगेय्युत्तिर्दं ॥ १७ ॥

आ निखिल राज किरीटकीलित हरिनील मदाळिमाला
परिचुंबित चरणारविंदनोंदु दिवसमाप्तपरिजनंबेरसु करुमाडदेरडनेय

बांस के वनरूपी शत्रुसमूह को तलवाररूपी अपनी भुजाओं से काटकर, उसके दुरभिमान की शाखाओं को चूर्ण करके काँटों को मिटाकर (समाप्त कर) अपने श्वेतक्षत्र की छाया के नीचे अपने शासित राज्यों में मानो कभी धूप का ताप ही न रहा हो, इह प्रकार ठंढक पहुँचाकर दशरथ कृतार्थ हो गये। १४ देव-गायक दशरथ की बिरुदावली गा रहे थे कि बाहर प्रस्फुटित रोमांचों से हारकर उसे सुनने में लीन देवराज (इंद्र) ने चामर से विजन करनेवाली देव-स्त्रियों के कंगन की आवाज से उत्पन्न ध्वनि से जागकर उन्हें किंचित क्रोध से देखा। १५ किन्नरों द्वारा दशरथ के शौर्य का गुणगान गाते समय, ध्यान से श्रवण करनेवाले इंद्र के कानों से टपकनेवाली (उसकी) सुगंध को घेरकर जब भ्रमर गुनगुनाने लगे तो इन्द्र उन्हें भगाने के उद्देश्य से कर्णाभरण के रूपमें अपने कानों में जो पुष्प-कलियाँ थीं उन्हें फेंकने लगे। १६ दशरथ के जीवन की शौर्योन्नति के सम्मुख सूर्यप्रकाश फीका प्रतीत होने लगा। उसने अपने राज्य की सीमा को समुद्र तक फैलाकर सुख पूर्वक शासन किया। १७ समस्त राजाओं के

नेलेय मोगसालेयोळिक्किद मणिमयासनमनलंकरिसि कर्णपूर पारिजातस्तबक परिमळक्केळसि बळसुवेळदुंबिय कळरवमनालिसुतिर्पुदुमा समयदोळ—

नयनोत्साहमनित्तु देहरुचियिंदैतंदनाकाश गं-
गेय नीर्मानिसदेंबिनं दशरथ क्षोणीशनास्थान भू-
मियना नीरदमार्गदिंदरिदु सन्मार्गक्के मैदारदं-
नयमं सारदनाव काळेगदोलं कण्णूरदं नारदं ॥ १८ ॥

बिससूत्रद कटिसूत्रं * पोसदुगुलद कोवणं कमंड़लु रारा-
जिसे दंडपाणि पोक्कं * किसुरळिपं पिसुण पसरिगं नृपसभेयं ॥ १९ ॥

अंता नारदं नभोमंडलदिं सभामंडलक्कवतरिसे—
इदिरेळ्दिच्छाकारम-
नुदात्तनेनित्तुमाण्दने कांचन पी-
ठदोळिरिसि मुकुळितांजलि
सदर्भ साक्षतमनर्घ्यपादनित्तं ॥ २० ॥

बंद बरवावुदी बर- * विंदं चरितार्थनादेनानेल्लिदं
बंदिरेनेनृपति नारद * नेंदं दशनांशु केदरे चंद्रातपमं ॥ २१ ॥

मुकुटों की रत्न-प्रभा पर मंडरानेवाले भ्रमरों के समूह से युक्त चरण-कमलों से सुशोभित दशरथ, अपने परिजनों के साथ राजप्रासाद के दूसरे खण्ड में, रत्नसिंहासन को अलंकृतकर, अपने कान में धारण किए हुए पारिजात-पुष्पों की सुगन्ध के लिए घेरकर गुनगुनाने वाले भ्रमरों के गुञ्जन का आनंद ले रहे थे कि—देखनेवालों की आँखों को अपनी देहकाँति से आनंद प्रदान करते हुए, आकाशगंगा से उत्पन्न मानव के समान, आकाश-गंगा से उतरकर नारदमुनि, जिसने कभी सभ्य व्यवहार के प्रति ध्यान नहीं दिया, जिसने (जानते हुए भी) नीति की बात नहीं बतायी और जिसे युद्ध के प्रति आस्था न होते हुए भी दूसरों को आपस में लड़ाने में आनंद मिलता है, दशरथ के दरबार में आया। १८ कमलदंड के जनेऊ, नये वस्त्र के कौपीन, कमंडल और योगदंड से सुशोभित कलहप्रिय, चुगलखोर, नारद राजदरबार में प्रविष्ट हुए। १९ जब इस तरह नारद आकाश मार्ग से सभागृह में आये तो—दशरथ अपने आसन से उठे और अतिथि-सत्कार के रूप में नारद को सुवर्णसिंहासन पर बिठाकर, हाथ जोड़कर कुश का आसन और अर्घ्य देकर, सत्कार किया। २० आपके आगमन

आनी जंबूद्वीपद पूर्वविदेहद पुंडरीकिणीपुरद सीमंधर स्वामिगळ परिणिष्क्रमण कल्याण विभूतियं नोडि बंदेनेंदु सभेयं कण्सण्णेयिं तोलगिसि दशरथंगे कट्टीकांतदोळितेंदं—

लंकेगे पोगि शांति जिनभक्तियोळां स्मर दानदंति व-
ज्रांकुश दर्शन स्तवनदिं चरितार्थनेनादेनागि वी-
तांकुशनप्प रावणनोळं नेरेदीनुडिगेळ्दु नाडेयुं
शंकेयोळोंदि बंदेनरिपल्पेरतें निमगा प्रपंचमं ॥ २२ ॥

अदेंतेने विभीषणं सागरबुद्धि वेसर नैमित्तिकनं बरिसि रावणन मरणकारणमं बेसगोळ्वुदुं—

अेनुं तोदळिल्लिदुवे शि-
लानिक्षिप्ताक्षरं विभीषण रणदोळ्
जानकिय दूसरिं लं-
कानाथं दाशरथिय कैयोळ् मडिगुं ॥ २३ ॥

अेने विभीषणं विषण्णनागि—

अरयलवरुत्पत्तिगे
कारणमेनिसिर्द जनकनं दशरथनं

का कारण क्या है ? आपके आने से मैं कृतार्थ हो गया हूँ। आप कहाँ से पधार रहे हैं ? —आदि पूछने पर नादर मंद-मंद मुस्कराये, तब उनकी दंतपंक्तियों का प्रकाश चाँदनी-सा चमका। नारद ने उत्तर में कहा—। २१ मैं उस जंबूद्वीप की पूर्वदिशा के अंतर्गत विदेह में स्थित पुंडरीकिणीपुर के सीमंधर स्वामीजी का परिनिष्क्रमण कार्य देख आया हूँ, ऐसा कहकर आँखों के इशारे से दरबार को विसर्जित किया और एकांत में दशरथ से बोले—मैं लंका गया और वहाँ शांतिजिन को स्मर, दान, दंति, वज्रांकुश आदि स्तवनों से पूजकर कृतार्थ हो गया हूँ। अजेय रावण से बात करते समय कुछ सूचनाएं पाकर, संदिग्ध चित्त हो, तुम्हें सुनाने आया हूँ। २२ वह यह कि विभीषण ने जब सागरबुद्धि नामक ज्योतिषी को बुलाकर रावण की मृत्यु के विषय में पूछा तो उसने कहा—'विभीषण, मैं जो कुछ कह रहा हूँ वह असत्य नहीं, उसे शिलाक्षर समझो। जानकी के कारण ही राम के हाथों, रावण युद्ध में मारा जायगा। २३ इसे सुनकर विभीषण ने विषाद से सोचा कि अगर इसके लिए कारणीभूत जनक और

मारणमं पोर्दिसुवें
कारण विघटनमे कार्यविघटनमल्ते ॥ २४ ॥

ऐंदु तरिसंदु—

ऐनगिदयुक्तमेन्न बगे पापनिबंधनमेवुदेंबिदं
नेनेयदे तन्नसोदरनोळप्प विपत्तिगणं विभीषणं
मनदोळळल्दु निम्मनळियल्बगेदंदनिदर्के तक्कुदं
नेनेदिरिमानिदं तडेयदिं जनकंगरिपल्के पोदपें ॥ २५ ॥

ऐंदु नारदं नीरदपथक्के नेगेदु मिथिळेयनैदि जनकंगमा स्वरुपमनरिपिपोपुदुमित्तल् दशरथना वार्तेयेल्लमं समुद्र हृदयनेंब तन्न मंत्रिमुख्यंगरिपुवुदुमातनिदर्के कालवंचनमे कार्यमेंदु निश्चयंगैदु दशरथनं कळिपि चित्रकनुं तानुमल्लदे पेररियदंतु करूविडिस लाक्षारसादिगळिं सप्तधातुगळं पडेदु वर्णक्रमं गेय्ये—

इदु भूपन रूपिदु ले-
प्पद रूपेनलेंतुमरियलरिदेने बगेगों-
डुदु नडेव नुडिव तेरदिं
प्रदेशसौष्ठवमदें विचित्रमो चित्रं ॥ २६ ॥

दशरथ को ही रास्ते से हटा दिया जाय तो उचित होगा। न रहेगा बाँस न बजेगी बाँसुरी। २४ यह सोचे बिना कि यह कार्य उसके लिए योग्य नहीं है, पापकार्य है, अपने भाई पर आनेवाली विपत्ति की चिंता करते हुए, उसने तुम दोनों को मार डालने का निश्चय किया है। अतः इस आनेवाली विपत्ति से बचने का कोई उपाय सोचिए। मैं जनक को सूचना देने जा रहा हूँ"। २५ ऐसा कहकर नारद ने आकाशमार्ग द्वारा मिथिला पहुँचकर जनक को सारी बातें बताईं। इधर दशरथ ने नारद द्वारा बताई गई बातें अपने मंत्री समुद्रहृदय को सुनाईं तो उसने यह सोचकर कि इसके लिए कालवंचना ही एक मात्र उपाय है, दशरथ को देशांतर (परदेश) भेज दिया और अत्यन्त गुप्त रूप से लाक्षारस में सातों धातुओं को गलाकर दशरथ के रूप और रंग से मिलता-जुलता पुतला ढलवाया। (यह रहस्य केवल मंत्री और शिल्पी तक ही सीमित रहा।) वह प्रतिमा इतनी स्वाभाविक थी कि उसकी चाल और बोली आदि देखकर भी कहना कठिन था कि यह राजा नहीं है। २६

कीर्तीमा अपकीर्ति पारि कसरी राज् गर्नु याहाँ बसी ।
दाज्यूको टहलै गरी सँग रह्या लक्ष्मण् रह्याछन् जसी ।।७७।।

गया जाहाँ सीतापति म पनि जान्छू अब तहाँ ।
फगत् एक् कैकेयी यहिं बसिरहून् छोड्दछु यहाँ ।।
फलाहारी हुन्छू शिरभरि जटा धारि वनमा ।
म भोली जान्याछू हिडिकन विचार् यै छ मनमा ।।७८।।

प्रभूको गादी हो प्रभुकन फिरायेर घरमा ।
म गादी सुम्पन्छू किन म गरुँला राज्य करमा ।।
भरत्का यस्ता बात् सुनिकन सबै खुश् अति भया ।
भरत् भोलीबेरै उठिकन सबेरै हिंडिगया ।।७९।।

सबै माता भ्राता गुरु सहित सब् फौज पनि ली ।
फकत् सीताराम्को चरणतलमा चित्त पनि दी ।।
भरत् गङ्गा पौंच्या गुहजिकन शंका हुन गयो ।
ठुलो लश्कर् देख्या नबुझिकन तानैं डर भयो ।।८०।।

लडौंला नाउ खैंची भरत कपटी हुन् यदि भन्या ।
भनी मन् मन् लश्कर्हरुकन तयार् हौ पनि भन्या ।।

ऐसी विनती कर जैसे ही गुरु वशिष्ठ चुप हुए, भरत ने तुरन्त उत्तर दिया कि क्या राज्य करूँगा यहाँ ! कीर्ति में अपकीर्ति ले कर किस प्रकार यहाँ बैठ कर राज्य करूँ। भाई की सेवा कर साथ में रह कर लक्ष्मण यश के पात्र हुए । ७७ सीतापति जहाँ गए हैं मैं भी अब वहीं जाता हूँ, केवल कैकेयी अकेली यहाँ पर रहे। फलाहारी होकर शिर में जटा धारण कर मैं कल पैदल ही वन को चला जाऊँगा, यही मैंने मन में ठाना है । ७८ यह गद्दी प्रभु की है, अतः प्रभु को घर लौटा कर मैं गद्दी उनको सौंप दूँगा। भरत की ये बातें सुन कर सब लोग अति प्रसन्न हुए। भरत ने कहा कि मैं क्यों विवशता-पूर्वक राज्य करूँगा और दूसरे दिन उठकर सबेरे ही चल पड़े । ७९ सब माताओं, तथा गुरु सहित सब सेना को भी साथ लेकर केवल सीता-राम के चरण-तल में एकाग्रचित्त लगाकर भरत गंगा पर पहुँचे। निषादराज को शंका उत्पन्न हुई और भरत की विराट सेना को देखकर वास्तविकता को जाने बिना उन्हें पार उतारते भी डरने लगे । ८० यदि कोई कपट होगा तो नाव को खींचकर लड़ेंगे, यही मन में विचार कर उन्होंने अपनी सेना को सचेत किया। स्थिति की गम्भीरता को समझ कर भरत ने कहा कि मैं सब समझता हूँ।

ठुलो भित्री मत्लब् गरिकन गयो बुझ्दछु भनी ।
तहाँ भेटी राखी नजर तिर हेर्‍या कछु भनी ॥८१॥

जसै देख्या आँसू गहभरि धरी शोक् पनि गरी ।
कहाँ मिल्छन् सीतापति मकन भन्दा घरिघरि ॥
जसै शिर् पाऊमा गरि ति गुहले ढोग् पनि दिया ।
भरत्ले अङ्कैमाल् गरुँ भनि उठाईकन लिया ॥८२॥

भरत्जीले सोध्या गुहसित सितका पति यहाँ ।
सुत्याको स्थल् कुन् हो मकन कहु जान्छू अब तहाँ ॥
गया विस्तार् पाई रघुपति सुत्याका शयनमा ।
भरत्ले खेद् मान्या कुश-शयन देखेर मनमा ॥८३॥

अहो ! मेरो खातिर् वन वन सिताजी पति सँगै ।
कुशासन्मा सुत्छिन् न त यसरि सुत्थिन् अघि कतै ॥
अहो धिक्कार् मेरा जनम जननी कैकयि भइन् ।
इनैले गर्दामा पतिसँग सिताजी वन गइन् ॥८४॥

कहाँ छन् सीतानाथ् कति पर गया भेट्तछु कहाँ ।
छ केही मालूम् ता मकन कहु जान्छू अब तहाँ ॥

वे गुह से भेंट करने गये और कुछ समझने हेतु उसकी ओर देखा । ८१ गुह ने भरत के शोकाकुल अश्रुपूर्ण नेत्रों को देखा । सीतापति कहाँ मिलेंगे, कह कर भरत बार-बार निषादराज से पूछने लगे । जैसे ही गुह ने पाँव में मस्तक रख कर नमस्कार किया, भरत ने उसे आलिंगन करने के लिए उठा लिया । ८२ भरत ने गुह से सीतापति के शयनस्थल का पता पूछा । विस्तारपूर्वक जान कर भरत रघुपति के शयनस्थल की ओर गए और राम की कुशों की शय्या देख कर भरत जी को अत्यन्त खेद हुआ । ८३ ओह! मैं ही निमित्त हूँ कि सीता जी पति के साथ वन-वन में कुशासन पर सोती हैं । इस प्रकार पहले कभी नहीं सोईं । ओह! धिक्कार है मेरी जन्मदात्री जननी कैकेयी को जिसके कारण आज सीता जी पति के साथ वन चली आईं । ८४ कहाँ हैं सीतानाथ ? कितनी दूर जाने पर उनसे भेंट होगी ? कहाँ हैं ? कुछ मालूम हो तो बताओ मैं अब वहीं जाता हूँ । तब गुह ने भी उन्हें स्थान बता दिया जहाँ राम थे । गुह के दिये हुए समाचार से ही राम-मिलन की आशा से भरत प्रसन्न हुए । ८५ सब कुछ विस्तारपूर्वक बता कर गुह ने भरत को

बताया याहाँ छन् भनि ति गुहले राम्कन पनि ।
गुहैका सम्चार्ले खुशि पनि भया भेट्तछु भनी ।।८५।।

सब् विस्तार् बताइ ताहिं गुहले गङ्गाजि तारीदिया ।
ताहाँ देखि भरत् चली पुगिगया जाहाँ भरद्वाज् थिया ।।
एक् दिन् ताहिं मुकाम् गऱ्या भरतले सन्मान् ऋषीले गऱ्या ।
बिल्कुल् सैन्य जती थिया भरतका मेज्मानिलेछक् पऱ्या।।८६।।

भोली बेर सबेर लश्कर लिई बीदा ऋषीथ्यैं भया ।
कैल्हे पुग्दछु चित्रकूट गिरिमा भन्दै भरत्जी गया ।।
खुश् भै लश्कर चित्रकूट गिरिका पौंच्या नजीक्मा जसै ।
खोज्या ताहिं भरत्जिले अघि गई डेरा प्रभूको तसै ।।८७।।

डेरा देखी भरत्जी तहिं नजिक गया पाउका छाप देख्या ।
श्रीराम्का पाउका छाप् चिन्हकन खुशिले माथले ताहिं टेक्या ।।
भन्छन् धन्यै रह्याँछू सहज नमिलन्या पाउका छाप देख्याँ ।
ब्रह्माजीले नपाउनु छ तपनि सहजै माथले आज टेक्याँ ।।८८।।

यस्तो बोल्दै प्रभूको चरणधुलिविषे भक्तिले लट्पटीदै ।
कैल्हे पुग्छू कहाँ छन् भनिकन मनले दस्दिशा दृष्टि दीदै ।।
जाँदा ताहीं भरत्ले प्रभुजिकन जसै नेत्रले देख्न पाया ।
ख्वामित्लाइ आज पायाँ भनिकन खुशिले पाउमा पर्न धाया।।८९।।

गंगा पार करा दिया। वहाँ से चल कर भरत भरद्वाज जी के आश्रम में पहुँच गये। एक दिन वहीं ठहरे। ऋषि ने भरत का सम्मान किया। इस सत्कार को देख कर भरत की सम्पूर्ण सेना चकित रह गई। ८६ दूसरे दिन प्रातः सेना को लेकर भरत ने ऋषि से विदा ली। चित्रकूट पर्वत पर शीघ्रातिशीघ्र पहुँचने की इच्छा से भरत चल पड़े। सेना जैसे ही चित्रकूट पर्वत के पास पहुँची वैसे ही भरत अति प्रसन्न हो आगे बढ़ कर प्रभु के डेरे की खोज करने लगे। ८७ डेरा ज्ञात होने पर भरत जी जब निकट पहुँचे तो उन्हें पाँवों के चिह्न दृष्टिगोचर हुए। श्रीराम के चरण-चिह्न पहचान कर भरत ने अत्यन्त हर्षित होकर वहीं अपना मस्तक रख दिया। मैं धन्य हूँ जो आज अप्राप्य पद-चिह्नों को प्राप्त कर पाया जिन्हें ब्रह्मा भी नहीं पा सकते। ८८ इसी प्रकार भक्ति-भावना में डूबे हुए भरत जी, प्रभु की चरण-धूलि से शरीर को पवित्र करते हुए, 'कब पहुचूँगा, राम कहाँ हैं' आदि बातें मन में सोचते

देख्या पाऊ पऱ्याका गहभरि बहँदा अश्रुधारा धऱ्याको।
सब् राज्यै तृण् बराबर् गरिकन बहुतै आफुमा मन् गऱ्याको॥
यस्तो देखी कृपाले भरतकन तहाँ काखमा राखिलीया।
जस्तो मन् हो भरत्को बुझि रघुपतिले खुप् कृपादृष्टि दीया॥९०॥

श्रीसीतापति माइका चरणमा राख्या र शिर् फेर् पिता।
काहाँ छन् किन आज देखितनँ यहाँ क्या गर्दछन् छन् कता॥
भन्दै खोजि गऱ्या पिताकन तहाँ श्रीरामजीले जसै।
सब् विस्तार बशिष्ठले भनिलिंदा शोक् गर्न लाग्या तसै॥९१॥

गंगा स्नान गरी तिलाञ्जलि दिया फेर् पिण्डदानै पनि।
फल् फूल्ले रघुनाथले तहिं दिया पाऊन् पिताले भनी॥
तेस् दिन्मा उपवास् गऱ्या जब बित्यो रात् फेरि गंगा गया।
गंगा स्नान् गरि फेर् फिरेर मढिमा आएर बस्ता भया॥९२॥

तहाँ सीताराम्का चरण-तलमा शिर् पनि धरी।
अयोध्यै लैजान्छू भनिकन ठुलो मन्सुब गरी॥
भरत् बिन्ती गर्छन् किन रघुपते! आज वनमा।
हजूर्ले आयाको मकन अति ताप् हुन्छ मनमा॥९३॥

हुए दशों दिशाओं की ओर दृष्टि डालते चले। जाते-जाते प्रभु के दर्शन पाते ही कहते हैं—आज स्वामी को पाया और अत्यन्त प्रसन्न हो उनके चरणों में आत्म-समर्पण कर दिया। ८९ पाँव पड़ते, नेत्रों से अश्रुधार बहाते, तथा समस्त राज्य-लोभ को तिनका सदृश समझ कर अपने हृदय को राम-चरणों में अर्पित करते हुए भरत को राम ने कृपापूर्वक अपनी गोद में बैठा लिया। भरत की ऐसी मनोभावना देख कर रघुपति ने उन्हें महान् कृपा की दृष्टि से देखा। ९० भरत ने प्रथम श्रीसीतापति के चरणों में मस्तक झुकाया फिर सीता-माता को प्रणाम किया। श्रीराम ने पिता को वहाँ न देख उनके विषय में पूछा कि वे कहाँ हैं, वे क्या कर रहे हैं आदि। गुरु वशिष्ठ द्वारा विस्तृत रूप से सब समाचार ज्ञात होने पर वे अत्यन्त शोकाकुल हुए। ९१ गंगा-स्नान करके तिलांजलि दे श्रीरघुनाथ ने फल-फूलों आदि से पिण्ड-दानादि किया। उस दिन उपवास किया। रात्रि व्यतीत होने पर पुनः गंगा में स्नानादि करके लौटे और अपनी मड़ैया में आकर बैठे। ९२ वहाँ सीता-राम के चरणों पर सिर रख कर भरत ने उनके अयोध्या लौट चलने की उत्कट अभिलाषा प्रकट की। भरत ने विनती की, हे रघुपते, आज आपके इस प्रकार वन चले

ख्वामित् ! हजुर्को म त दास पो हूँ ।
यो राज्य गर्नाकन योग्य को हूँ ॥
यो गादि ता याहिं हजूरको हो ।
मैले त सेवा गरि बस्नु पो हो ॥९४॥

छोरा हुनन् यज्ञ बहुत् गरीनन् ।
सम्पूर्ण लोक्को पनि ताप् हरीनन् ॥
तब् पो ति छोरासित राज्य छाडी ।
जानू असल् हो त छँदै छ झाडी ॥९५॥

बेला त यो होइन जान वन्मा ।
मेरा त यै निश्चय हुन्छ मन्मा ॥
जाऔं घरै फर्कि सधाइ जावस् ।
मेरी इ मातासित रिस् नआवस् ॥९६॥

यस्ता प्रकार्ले गरि बिन्ति गर्दै ।
आँखा भरी आँसु बहूत धर्दै ॥
रोया भरत्ले जब पाउमा गै ।
बोल्या प्रभूले पनि खूशि मन् भै ॥९७॥

हे भाइ ! गर्छौं किन आज जिद्दी ।
फिर्नू असल् छैन नि काम् नसिद्धी ॥
जान्छू म वन्मा तिमि फर्कि जाऊ ।
तेस् राज्यको काम् तिमिले चलाऊ ॥९८॥

आने से मेरे मन में घोर संताप हो रहा है । ९३ हे स्वामी, मैं तो आपका सेवक हूँ । यह राज्य करने योग्य नहीं हूँ । यह गद्दी तो आपकी है, मुझे तो सेवा करके रहना ही उचित है । ९४ जिसके पुत्र नहीं हुए, जिसने यज्ञादि भी नहीं किया, और न जिसने सम्पूर्ण लोकों का निवारण ही किया, ऐसे पुत्र को राज्य त्याग कर वन जाना ही उत्तम होगा । ९५ मैंने तो मन में यही निश्चय किया है कि आपके वन जाने का यह समय नहीं है । चलें, घर लौट चलें जिससे सबका सुधार हो और अपनी माता के प्रति मेरा क्रोध दूर हो जाय । ९६ इस प्रकार विनती करते हुए नेत्रों में अश्रु भर चरणों में गिर कर जब भरत रोए तो प्रभु ने प्रसन्न मन से कहा । ९७ हे भाई! आज तुम इतनी ज़िद्द क्यों करते हो । विना कार्य-सिद्धि के लौटना उचित नहीं है । मैं वन जाता हूँ, तुम

राम्ले वनै गै सुनि भेष धर्नू ।
याहीं भरत्ले बसि राज्य गर्नू ।।
भन्न्या पिताको जब सुन्न पायाँ ।
आज्ञा उसैले वन जान आयाँ ।।९९।।

ई बात् भरत्ले जब सुन्न पाया ।
फेरी चरण्मा परि बिन्ति लाया ।।
हे नाथ् ! पिता हुन् मतिहीन् भयाका ।
स्त्रीका त साह्रै वशमा पऱ्याका ।।१००।।

उन्ले भन्याथ्या पनि राज्य छाडी ।
जानू असल् होइन आज झाडी ।।
ख्वामित् ! बहुत् बिन्ति छ फर्कि जाऊँ ।
फर्कन्नँ भन्न्या त जवाफ् नपाऊँ ।।१०१।।

यस्तो भरत्ले जब जिद्दि लीया ।
उत्तर् प्रभूले पनि फेरि दीया ।।
फर्कन्नँ भैया तिमि फर्कि जाऊ ।
पिताजिलाई पनि दोष् नलाऊ ।।१०२।।

खुप् सत्यवादी त पिताजि थीया ।
साँचै हुनाले वरदान दीया ।।
सो पूर्ण गर्नाकन जान्छु वन्मा ।
साँचो कुरा हो बुझिलेउ मन्मा ।।१०३।।

लौट जाओ और राज-काज का सब कार्य संचालित करो । ९८ जब मैंने पिता की यह आज्ञा सुनी कि राम मुनि-वेष धारण करें और भरत यहाँ रह कर राज्य करें तदनुसार मैं वन जाने के लिए आया हूँ । ९९ जब भरत ने यह बात सुनी तो वे पुनः राम के चरणों में गिर कर विनती करने लगे । हे नाथ! पिता की मति हीन हो गई थी, वे स्त्री के वशीभूत थे । १०० उन्होंने यदि कहा भी तो भी राज्य छोड़कर वन को जाना आज अच्छा नहीं । हे स्वामी! मेरी हार्दिक विनती है कि आप लौट चलें; न लौटने की बात मुझसे न कहें । १०१ भरत ने जब इस प्रकार हठ किया तो भी प्रभु ने पुनः यही उत्तर दिया कि मैं नहीं लौटूँगा । तुम लौट जाओ और पिता पर भी दोषारोपण न करो । १०२ पिता जी अत्यन्त सत्यवादी थे । सत्य के कारण ही उन्होंने वरदान दिये ।

उत्तर् प्रभूको सुनि दुःख मान्या ।
फेरी चरणमा परि बिन्ति लाया ।।
फिर्नू हवस् ख्वामित ! बिन्ति गर्छु ।
यस् दण्डकारण्य विषे म जान्छु ।।१०४।।
यस्ता वचन् सूनि भरत्जिलाई ।
फेरी हुकूम् भा तिमि फर्क भाई ।।
यो राज्य साटचा पनि हुन्छ झूटो ।
हे भाइ ! गर्छौं किन आज भूटो ।।१०५।।
हुकूम् यस्तो सूनी भरत पनि राम्का चरणमा ।
परी बिन्ती गर्छन् म त रघुपते ! छू शरणमा ।।
चरण् बाहिक् एक् छिन् रहन पनि ताप् हुन्छ मनमा ।
नफर्क्या ख्वामित्का पछिपछि म ता जान्छु वनमा ।।१०६।।
न ता फर्की जान्या न त मकन लान्या वन पनि ।
भन्या मर्छू ख्यामित् ! अब अरु कुरा केहिन भनी ।।
भनी आसन् बाँधी जब मरणमा निश्चय धऱ्या ।
खुशी भै श्रीराम्ले पनि अति दयालू मन गऱ्या ।।१०७।।
दिया सूचन् राम्ले गुरुकन बुझाऊ तिमि भनी ।
गुरूले एकान्तै लगिकन भरत्जीकन पनि ।।

वही पूर्ण करने मैं वन जा रहा हूँ। बात सत्य है, यह मन में जान लो। १०३ प्रभु के इस उत्तर को सुन कर भरत बहुत ही दुःखित हुए और पुनः चरणों में गिरकर विनती करने लगे। हे स्वामी! मैं आपसे विनती करता हूँ कि आप लौटने की कृपा करें। दण्ड-स्वरूप इस वन में मैं ही निवास करता हूँ। १०४ ऐसे वचनों को सुनकर उन्होंने भरत को पुनः आज्ञा दी कि हे भाई! तुम लौट जाओ। यह राज्य बदलने से भी पिता जी का वचन झूठा हो जायगा। हे भाई! आज व्यर्थ ही फिर हठ क्यों करते हो। १०५ ऐसी आज्ञा सुन कर भरत फिर राम के चरणों में गिर कर विनती करने लगे, हे रघुपते! मैं आपकी शरण में हूँ और आपके चरणों के विना एक क्षण रहने से भी मेरे मन में ताप होगा। यदि आप नहीं लौटते तो स्वामी के पीछे-पीछे मैं भी वन को जाऊँगा। १०६ न ही लौटेंगे और न ही मुझे वन ले जायेंगे तो मैं अब कुछ न कहूँगा, यूँ ही मर जाऊँगा। ऐसा कह कर जब मरने के लिए आसन बाँध लिया तो श्रीराम ने भी मन ही मन प्रसन्न हो अत्यन्त दया दिखाई। १०७ तब

बुझाया बात् खोलीकन सुन इ जो हुन् रघुपति ।
जगन्नाथ् साक्षात् हुन् त्रिभुवनपतीका अधिपति ॥१०८॥

अघी ब्रह्माजीले सकल भुमिको भार् हर भनी ।
स्तुती गर्दा खुश् भै सुन म हरुँला भार्हरु पनि ॥
भन्याका हूनाले उहि वचन पालन् गरुँ भनी ।
प्रभू जान्छन् वन्मा पछि त सुन फिर्छन् घर पनि ॥१०९॥

प्रभूकै इच्छा हो नतर कसरी कैकयि पनि ।
बनै जाउन् भन्थिन् प्रभुकन रती तुल्य नगनी ॥
कुरो यस्तो जानी नगर तिमि यो आग्रह यहाँ ।
भुमीको भार् टारीकन पछि त जान्छन् प्रभु कहाँ ॥११०॥

रावण् मारि उतारि भारि भुमिको फिर्छन् जगन्नाथ् भनी ।
यस्ता हुन् रघुनाथ् भनेर गुरुले खोलेर गुह्यै पनि ॥
सब् विस्तार गरीदिया र गुरुको बाणी सुनी खुश् भया ।
फर्क्यानन् रघुनाथ् भनी मन बुझ्यो राम्का नजीक्मा गया॥१११॥

हे नाथ् तत्त्व सुन्याँ म फिर्छु अब ता जान्छू अयोध्यामहाँ ।
पूजा गर्न दिनू हवस् हजुरका एक् जोर् खराऊ यहाँ ॥

राम ने गुरु से भरत को समझाने की विनती की । गुरु जी ने भरत को एकान्त में ले जाकर बात को स्पष्ट करके समझाया । सुना यह है कि रघुपति साक्षात् जगन्नाथ, तथा त्रिभुवनपति के भी अधिपति हैं । १०८ ब्रह्मा जी के सम्पूर्ण पृथ्वी के भार हरण करने की स्तुति पर प्रसन्न होकर श्रीराम ने भू-भार हरण करने का वचन दिया था । उसी वचन को पालन करने हेतु प्रभु अभी वन जा रहे हैं । इसके बाद वे घर भी लौटेंगे । १०९ यह सब प्रभु की ही इच्छा है । नहीं तो प्रभु को किंचित् मात्र भी न समझ कर कैकेयी किस प्रकार वन जाने को कहती । इन बातों को जान-समझ कर तुम यह आग्रह न करो । भू-भार हरण करने के बाद प्रभु जायेंगे कहाँ (अर्थात् घर ही तो लौटेंगे) । ११० रावण को मार कर भू-भार हरण करके जगन्नाथ लौटेंगे । रघुनाथ की लीला चाहे गोपनीय हो, गुरु ने स्पष्ट रूप से विस्तार-पूर्वक वर्णन कर दी । गुरु की वाणी को सुनकर भरत प्रसन्न हुए और रघुनाथ लौट आयेंगे यह मन में जान कर राम के निकट गए । १११ हे नाथ ! मैंने सब तत्वों को सुन लिया । अब मैं अयोध्या जाता हूँ, पूजा हेतु आप अपनी दोनों खड़ाऊँ देने की कृपा करें । ऐसी विनती करके चारों ओर परिक्रमा करके भरत ने प्रणाम किया ।

छ ज़ूरिम कथ यिहय छारुन्य सतुच वथ ।
यि पांचिम पान मंशरावुन दयस पथ ।। ४२ ।।

वनुवास गछुन

मुक़रर यी सपुन गछि राम वनवास ।
वोलुन तंम्य बुरज़ु त्रोवुन ख़ासु अतलास ।।
अंनिख कीकी तु पुरिनख बुरज़ु जामु ।
परुनि लोंग शहर सोरुय रामु रामु ।।
वदन सीता पकन गंयि पान मारन ।
वदन आंस ख़ून न्येत्रव आंस हारन ।।
वदन सीता गंयख फ़रियाद लोयुन ।
कंरिथ कीशन परेशान सीनु वोयुन ।।
दप्योनस रामुचन्दुरन रोज़ येतिय बेह ।
दोंपुस तमि अमि वनुनु वालिजि छम रेह ।। ५ ।।
दोंपुस तंम्य कोंत ज़ु यिख छिय पाद पमपोश ।
दोंपुस तमि बोज़ कनस तल छु सोंनस बोश ।।

तथा शत्रु को भी मित्र समझना, व अहंकार को छोड़ देना । दूसरा, ईश्वर को माता-पिता समझना । तीसरा, गुरु के शब्दों (आदेशों) को अंगीकार करना । चौथा, सत्य के मार्ग को ढूँढना; और पाँचवाँ, अपने आप को भूलकर भगवान् में खो जाना ।। ४२ ।।

वनवास जाना

(अन्त में) यही मुक़र्रर हुआ कि राम वन जायेंगे । उन्होंने भोज-पत्र के वस्त्र धारण कर लिये और ख़ासा व अतलस (के वस्त्र) त्याग दिये । कैकेयी को बुलाया गया और उसी ने ये वस्त्र उन्हें पहनाये । सारा शहर राम-राम कहने लगा । (रामचन्द्र जी वनवास को जा रहे हैं, यह समाचार सुनते ही) सीता रोती-विलाप करती हुई आ गई—उसकी आँखों से ख़ून के आँसू बह रहे थे । उसने रोते-रोते फ़रियाद की और अपने केशों को परेशान कर (अस्त-व्यस्त कर) छाती पीटने लगी । रामचन्द्र ने (सीता को) समझाया—तू यहीं पर रह । वह बोली—ऐसा कहकर आप मेरा हृदय जला रहे हैं । ५ उन्होंने (फिर) समझाया—तू कहाँ चल सकेगी, तेरे पाद कमल के समान हैं । वह बोली—सुनिए, सोना कानों तले ही सुहाता है । उन्होंने कहा—तू सफ़र की दुश्वारियों को सहन

दोंपुस तंम्य कर ह्यकख च्रांलिथ सफ़र ज़ात ।
दोंपुस तमि च्रे सिवा दोंहस गछ्रेम रात ।।
दोंपुस तंम्य बूम नटि अमि पकुनु चाने ।
दोंपुस तमि यी मे ओसुम करमु लाने ।।
दोंपुस तंम्य बेंह च्रु गिन्द ताम मोंख़्तु मालन ।
दोंपुस तमि गछ च्रु रुमु अकि पान ज़ालन ।।
दोंपुस तंम्य बेंह च्रु छख नोज़ुक गुलअन्दाम ।
दोंपुस तमि कंम्य कोंरुम बरमंदिन्यन शाम ।। १० ।।

दोंपुस तंम्य बेंह च्रु छख नोज़ुक गुल अन्दाम ।
दोंपुस तमि चानि दूरेरु नारु ज़ालन ।।
दोंपुस तंम्य बेंह च्रु छख रम्बुवुन्य च्रोंदुश ज़ून ।
दोंपुस तमि चोन दूरेर छुम छोंकस नून ।।
दोंपुस तंम्य बेंह च्रु छख नोज़ुख हिये तन ।
दोंपुस तमि हियि डीशिथ कंण्ड्य छि खोच्रन ।।
दोंपुस तंम्य बेंह च्रु छख बागुच यंम्बुर ज़ल ।
दोंपुस तमि कंम्य बोंम्बरन कंरुम गांगल ।।

नहीं कर सकेगी। वह बोली—आप के सिवा तो मेरे लिए दिन भी रात हो जायेगा। उन्होंने कहा—तुम्हारे (वन में) चलने से भूमि काँप उठेगी। वह बोली—यही तो मेरे कर्म-लेख में बदा था। उन्होंने कहा—तू यहीं रह कर मोतियों की मालाओं से खेल (राजसी वैभव का भोग कर)। वह बोली—यदि आप गये तो मैं क्षण भर में अपना अंत कर डालूँगी। उन्होंने कहा—तू यहीं बैठ। तू तो नाज़ुक गुल की तरह है। वह बोली—न जाने मेरी (भरी) दुपहरी को किसने शाम (अँधियारे) में बदल डाला। १० उन्होंने कहा—तू यहीं बैठ, तू (तो) एक सुन्दर व नाज़ुक गुल (की तरह कोमल) है। वह बोली—आप की दूरी उसे जला डालेगी। उन्होंने कहा—तू यहीं बैठ, तू तो चौदहवीं का लुभावना चाँद है। वह बोली—आप की दूरी मेरे ज़ख़्मों पर नमक का काम करेगी। उन्होंने कहा—तू यहीं बैठ, तेरा तन नाज़ुक चमेली (के समान) है। वह बोली—चम्पा को देख काँटे भी डर जाते हैं। उन्होंने कहा, तू यहीं बैठ, तू (तो) बाग़ की नरगिस है। वह बोली—तभी तो यह भौंरा मुझसे छल कर रहा है। उन्होंने कहा—तू (यहीं) बैठ, तू तो बाग़ में (उगने-वाली) चमेली है। वह बोली—आपको (यों) देखकर मेरे होश उड़

दोपुस तम्य बेह च़ु छख बागुच हियि पोश ।
दोपुस तमि च़े वुछान रूदुम न केंह होश ।। १५ ।।

दोपुस तम्य बेह च़ु छखना ताज़ु गुलज़ार ।
दोपुस तमि यथ नु कुमत तथ गुलस नार ।।
दोपुस तम्य बेह च़े छिय अथु बरगि कोसम ।
दोपुस तमि च़े वुछान यिमु चेश्मु लोसम ।।
दोपुस तम्य बेह च़ु गछ़ बागुच बबुर लाग ।
दोपुस तमि वह्य कथव थोवथम दिलस दाग़ ।।
दोपुस तम्य च़ालु कर दोंख सख़्त चोनुय ।
दोपुस तमि मे लगी मा ज़ूनि ग्रुहनुय ।।
दोपुस तम्म बेह च़ु छखना माहि ताबान ।
दोपुस तमि तोरु पादन तल दिमय जान ।। २० ।।

दोपुस तम्य बेह च़ु गछ़ शेछ सोज़ माल्युन ।
दोपुस तमि तोरु ज़ोलथम तापु ताल्युन ।।
दोपुस तम्य बेह च़ु राज़स पथ जिगर गाल ।
दोपुस तमि चोन नेरुन आसि तस काल ।।

गये हैं । १५ उन्होंने कहा--तू (यहीं) बैठ, तू तो एक ताज़ा गुलज़ार है । वह बोली--जिस गुल की कोई क़ीमत न हो उस गुल का जल जाना ही उचित है । उन्होंने कहा--तू (यहीं) बैठ, तेरे हाथ कुसुम के पत्तों के समान हैं । वह बोली--आप को देखते ही मेरी ये आँखें मुरझा गई हैं । उन्होंने कहा--तू (यहीं) बैठ और बाग़ में 'बबर' (कली-विशेष) की भाँति खिल । वह बोली--हाय ! (आपकी) ऐसी ही बातों ने मेरे दिल पर दाग़ लगाया है । उन्होंने कहा--तेरा सख़्त दुःख मैं (भला) कब सह सकूँगा । वह बोली--(आप के चले जाने पर) मेरे चाँद जैसे बदन को ग्रहण लग जायेगा । उन्होंने कहा--तू (यहीं) बैठ, तू तो माहताब है । वह फिर बोली--मैं आपके चरणों तले अपनी जान दे दूँगी । २० उन्होंने कहा--तू (यहीं) बैठ और अपने मायके वालों को सन्देश भेज । वह बोली--ऐसा कहकर आप मुझे भयंकर ताप में झुलसा रहे हैं । उन्होंने कहा--तू (यहीं) बैठ और राजा (दशरथ) की जिगर (दिल) से सेवा कर । वह बोली--आप का चले जाना उनके लिए काल-सदृश होगा । उन्होंने कहा--तू (यही) बैठ, कौशल्या तुझे प्रेम से रखेगी । वह बोली--यदि आप कुछ और कहना चाहते हैं तो वह भी अभी कह डालिए ।

दोंपुस तंम्य बेह च़ु कौशल्या करी बाव ।
दोंपुस तमि सीर बावुन्य वोंन्य येती बाव ॥
दोंपुस तंम्य बेह च़ु छख सार्यन अंछन गाश ।
दोंपुस तमि वोंन्य करख पनुन्यन सिरन फ़ाश ॥
गोंलाबन कंरुन यंच़ आंजिज़ यंम्बरज़ोंल ।
खटिथ च़न्दुरमु थोवुन तारुकन तल ॥ २५ ॥

वनुनि लोंग रामुजुव सीतायि कुन बोज़ ।
म वद वोंन्य यंच़ वोंदुथ वाराह च़ खोंश रोज़ ॥
म वद वोंन्य वदुनु सुतिन प्रान लोर्योय ।
म वद वोंन्य वदुनु सुतिन गाश सोरियोय ॥
म वद वोंन्य वदुनु सुत्य गोय रंग बेरंग ।
म वद वोंन्य वदुनु सुत्य शीशस प्योय संग ॥
वोंलुख येंलि बुरज़ु त्रोवुख खासु मलमल ।
पकान गंयि त्रनुवय अज़ राहि जंगल ॥
ति यां वुछ शहरु क्यव लूकव रिवां द्राये ।
दोंपुक क्या सना वनस मंज़ कति रटन जाये ॥ ३० ॥

दिलस प्यठ दाग़ रोंट वोंज़ुल्यव गुलालो ।
दोंपुक दूर्यर अंकिस सातस नु च़ालो ॥

उन्होंने कहा--तू (यहीं) बैठ, तू तो सभी के नयनों की ज्योति है। वह बोली--(अब ज़्यादा न बोलिए) कहीं अब आपके अन्य रहस्यों का पर्दाफ़ाश न हो जाये। (इस प्रकार) गुलाब (रामचन्द्र जी) को नरगिस (सीता जी) ने (अपनी युक्तियों से) धूमिल बना डाला और चन्द्रमा को तारों के पीछे छिपा दिया। २५ (इस पर) रामजी सीता से कहने लगे--सुन, अब तू इतना मत रो। तू बहुत रो चुकी, अब खुश हो जा। तू रो मत। रोते-रोते तेरे प्राण सूख गये हैं। तू रो नहीं, रोने से तेरी ज्योति रीती हो गई है। तू रो मत, रोने से तेरा रंग बेरंग हो गया है। तू रो नहीं, तेरे रोने से मेरे (दिल के) शीशे पर पत्थर गिरते हैं। (उन्होंने) भोजपत्र (के वस्त्र) धारण कर लिये और खासा-मलमल (के वस्त्रों) को त्याग कर तीनों जंगल की राह चलते बने। यह दृश्य जब शहर के लोगों ने देखा तो वे रोते हुए (घरों से) निकल पड़े और कहने लगे कि भला ये (तीनों) क्यों जंगल में वास करने जा रहे हैं? ३० लाल गुलेलाला (पुष्प-विशेष) ने (विरह में) अपने दिल के ऊपर दाग़ ले लिया

गुलालस सोसुनुक ह्युं रंग सांपुन ।
ति डीशिथ हाल मसुवलि ह्योतुन कांपुन ।।
सपुन्य सारी प्रज़लुवुन्य गुल अवारा ।
फोलन तेलि येलि दरशुन दिन दोबारा ।।
पकान गंयि तथ कोहस प्यठ आल ह्यथ रोंग ।
बदल गव ज़ीठ्य पोशन कारुतिक्य कोंग ।।
सो कीकी शीनु छुटि मंजूहर्य गंयि तेज़ ।
वनस कुन लंज्य खलायिकन पोह्य पनस रेज़ ।। ३५ ।।

च्रोटुख मंन्ज़िल रोटुख मंज़ वन खोटुख पान ।
ख़लक़ पथ फीर्य सारी आयि रिवान ।।
तिथय तिम गंयि डण्डख वन मंज़ रंटुख जाय ।
ज़नुम करेछर तु करमस क्याह छु परवाय ।।
ख़बर येलि बूज़ कोशल्यायि कोंत गव ।
वनुनि लंज्य राज़ु पोत्रस कुन च्रु कन थव ।। ३८ ।।

और कहने लगा कि उनकी दूरी मैं एक पल के लिए भी सह नहीं सकता । उसका रंग पीला पड़ गया और ऐसा हाल देखकर मसवल (पुष्प विशेष) का दिल भी काँपने लग गया । सभी तरह के चमकते गुल फीके पड़ गये (और कहने) हम पुनः तभी फूलेंगे जब वे दुबारा दर्शन देंगे । (उधर) लौंग (रामचन्द्र जी) इलायची (सीता जी) को साथ लेकर दूर उस पहाड़ की ओर चलते गये और इधर जेठ के पुष्पों का रंग कार्तिक (पतझर) के पीलेपन के समान हो गया । कैकेयी की (कुचाल रूपी) तेज़ हिम-बयार ने सभी व्यक्तियों को पौष मास में (निपातित) पत्तों के समान वन की ओर धकेल दिया । ३५ काफ़ी मंज़िल तय कर लेने के बाद वे (राम, लक्ष्मण और सीता) वन में कहीं छिप गये और ख़लक़त (जन-समुदाय) रोते-रोते वापस चले आए । ३५ इस प्रकार वे (तीनों) दण्डक-वन गये और वहीं अपना निवास बनाया । जिनका जन्म ही संघर्ष करने के लिए हुआ हो उनके कर्म (के लेख) को क्या परवाह है (अर्थात् यह कठिन यात्रा उनके लिए कोई चिंता का विषय न थी) । जब कौशल्या को ख़बर मिली कि वे कहाँ गये हैं, तो वह राज-पुत्र (राम) की ओर सम्बोधन कर जो कहने लगी, उसे कान लगा कर सुनो ।। ३८ ।।

कौशल्यायि हुन्द्य व्यलाफ

कौशल्यायि हुन्दि गोबरो
करयो गूरु गूरु
परयो रामु रामु
करयो गूरु गूरु ॥ १ ॥

कोतू गोहम ज़ु त्रविथ
कसू ह्यकु हाल बविथ
अनी कुस मनु नविथ
करयो गूरु गूरु ॥ २ ॥

लगयो पोत छाये
ही करथस बो हाये
नारस वोठ बु लाये
करयो गूरु गूरु ॥ ३ ॥

कनन छय कनु वाजे
श्री कृष्णु महाराजे
ज़गतुक छुख ज़ु राजे
करयो गूरु गूरु ॥ ४ ॥

फेरु हय अंद्य अंद्यी
लागय पोशि गंदी
जामु चान्य सोन सुंदी
करयो गूरु गूरु ॥ ५ ॥

कौशल्या का विलाप

(रे कौशल्या के नंदन) आ तुझे (हिण्डोले में) झुलाऊँ, राम-राम पुकारूँ—आ तुझे (हिण्डोले में) झुलाऊँ १ तू (मुझे) छोड़कर कहाँ चला गया, अब मैं अपना हाल किसे बता सकूँगी। तुझे अब कौन मनाकर लायेगा—आ तुझे (हिण्डोले में) झुलाऊँ। २ तेरी छवि पर बलिहारी जाऊँ, मुझ चमेली को तूने मुरझा डाला। (अब) मैं आग में कूद पड़ूँगी—आ, तुझे (हिण्डोले में) झुलाऊँ। ३ तेरे कानों में श्रीकृष्ण महाराज की तरह बालियाँ (सुशोभित हो रही) हैं। जगत् का तू राजा है—आ, तुझे (हिण्डोले में) झुलाऊँ। ४ मैं तेरे चारों ओर फिर कर बलिहारी

लोल चोन वोंन्य मे आमो
छारथो शहरु गामो
बेयि गोछुहम ज़ु रामो
करयो गूरु गूरु ॥ ६ ॥

नेरुहा बाज़ारी
ह्यड़नम लूख सारी
पादन लगय बो पारी
करयो गूरु गूरु ॥ ७ ॥

नेरुयो दारि पंती
लागयो कारि पंती
तारि दिल गोम येंती
करयो गूरु गूरु ॥ ८ ॥

मे दप्योम रामु राजे
खोंश ओय नु वोरु माजे
आदुनुकि सीरु बाजे
करयो गूरु गूरु ॥ ९ ॥

मे कमू शाफ आसी
तिम ति कोनु कांसि कासी

जाऊँगी। तुझ पर फूलों के गुलदस्ते चढ़ाऊँगी तथा सोने के वस्त्र पहनाऊँगी—आ, तुझे (हिण्डोले में) झुलाऊँ। ५ तेरे प्रेम में मैं विकल हो रही हूँ। तुझे मैं शहर और गाँव में तलाश करूँगी। मुझे तो बस एक राम चाहिए--आ, तुझे (हिण्डोले में) झुलाऊँ। ६ मैं तुझे बाज़ारों में ढूँढती, मगर लोक-लाज के कारण विवश हूँ। तेरे पादों पर बलिहारी जाऊँ--आ, तुझे (हिण्डोले में) झुलाऊँ। ७ तुझे खिड़कियों से देखूँ और तेरी परछाई पर बलिहारी जाऊँ। तेरे बिना मेरा दिल यहाँ विकल हो हो गया है--आ, तुझे (हिण्डोले में) झुलाऊँ। ८ तेरे राजा बनने का मैंने सपना देखा था किन्तु तेरी विमाता को यह खुश (अच्छा) न लगा। रे मेरे चिरपरिचित और अंतरंग!--आ, तुझे (हिण्डोले में) झुलाऊँ। ९ मुझे यह किन शापों का कुफल मिला और उनको (शापों को) क्यों किसी ने दूर न किया जिनके कारण तुझे बनवासी बनना पड़ा--आ, तुझे (हिण्डोले में) झुलाऊँ। १० तूने भोजपत्र के वस्त्र धारण कर लिये और मैं राम-राम जपती हुई तुझे गाँव-गाँव ढूँढती फिरूँगी--आ, तुझे (हिण्डोले

च़ु गोहम वनु वांसी
करयो गूरु गूरु ॥ १० ॥
च़ें पुर्यथम बुरज़ु जामु
बो छारथ गामु गामु
परयो रामु रामु
करयो गूरु गूरु ॥ ११ ॥
लोलि मंज़ ललुनावथ
जिगरस मंज़ बु सावथ
वुनि ति नो कांसि हावथ
करयो गूरु गूरु ॥ १२ ॥
नेरुयो शामु लटे
बार्य म्यान्य छि च़ें मटे
गाशरु लालु त्रटे
करयो गूरु गूरु ॥ १३ ॥
दूर्येर नो बु च़ालु
कसू करथस हवालु
लांजिथस मायि ज़ालु
करयो गूरु गूरु ॥ १४ ॥
अंछिन हंद गाश कोंत गोम
सिरियि प्रकाश कोंत गोम
केंह ति छम नु आश कोंत गोम
करयो गूरु गूरु ॥ १५ ॥

में) झुलाऊँ। ११ तुझे गोदी में झुलाऊँ और जिगर में मैं सुलाऊँ। फिर तुझे किसी को न दिखाऊँ--आ, तुझे (हिण्डोले में) झुलाऊँ। १२ मैं तुझे ढूँढने के लिये बार-बार निकलूँगी। मेरा भार तेरे ऊपर है। मेरी नयन-ज्योति भी धूमिल पड़ गई है--आ, तुझे (हिण्डोले में) झुलाऊँ। १३ मैं तेरी दूरी सहन न कर सकूँगी। (तू तो चला गया मगर) मुझे तूने किसके हवाले किया? तूने मुझे (यह किस) माया-जाल में डाल दिया--आ, तुझे (हिण्डोले में) झुलाऊँ। १४ मेरी आँखों का प्रकाश कहाँ चला गया? सूर्य जैसा प्रकाश कहाँ चला गया? मुझे अब कुछ भी आशा नहीं है। वह कहाँ चला गया? --आ, तुझे (हिण्डोले में) झुलाऊँ ॥ १५ ॥

हे प्रभू ! जिनकी रचना आपने की है, और जिनसे अपनी भक्ति आप स्वयं कराना चाहते हैं, वे सभी आपका यशगान कर रहे हैं। गुरु नानकदेव जी कहते हैं कि और भी कितने ऐसे हैं जिनकी गणना ऊपर नहीं की गई, वे सभी आपकी अराधना और यशगान कर रहे हैं।

वह सत्यस्वरूप ईश्वर सदैव सत्य के नाम से ही जाना जाता है, और उसका दर हमेशा सच्चे लोगों के लिए खुला है। उसी ने समस्त संसार की रचना की है, और स्वयं (भूत, भविष्य, वर्तमान) सदैव सत्य-स्वरूप ही रहेगा। भाँति-भाँति के लोग अनेकानेक रंग-रूप में उसने उत्पन्न किए हैं, फिर अपनी सृष्टि की स्वयं देख-रेख भी करता है, और जिस प्रकार चाहता है उसी प्रकार करता है। उसकी इच्छा के आगे किसी दूसरे की एक नहीं चलती। गुरु नानकदेव जी कहते हैं कि चक्रवर्ती बादशाहों के भी बादशाह उस (मालिक) की आज्ञा और इच्छा-नुसार ही हर मनुष्य को चलना चाहिए। २७

पौड़ी २८

मुंदा संतोख सरमु पतु झोली धिआन की करहि बिभूति।
खिथा कालु कुआरी काइआ जुगति डंडा परतीति।
आई पंथी सगल जमाती मनि जीतै जगु जीतु।
आदेसु तिसै आदेसु।
आदि अनीलु अनादि अनाहति जुगु जुगु एको वेसु ॥ २८

आगे की पंक्तियों में श्रीगुरु नानकदेव जी महाराज गोरख मत के अनुयायिओं से वाद-विवाद के बाद उनके प्रश्नों का उत्तर देते हुए कह रहे हैं कि एक वास्तविक साधु योगी के क्या गुण होते हैं।

(अंग में कोरी भभूति भस्म मल लेना व्यर्थ है)। संतोषरूपी मुद्रा, बड़ों की इज़्ज़त और परिश्रम, ईश्वर की ओर ध्यान लगाना ही असली भभूति है। यह शरीर क्वाँरीकन्या-जैसा पवित्र हो, हाथ में (भीख की नहीं) मर्यादा की झोली हो, युक्ति (सत्य) की लाठी का सहारा हो, विश्वास-श्रद्धा हो, सारा संसार ही 'पंथ' हो, (वही असली योगी है)। उसने मानो अपने हृदय को जीत लिया है, उसी ने सम्पूर्ण विश्व पर विजय प्राप्त कर ली है। गुरूजी का कथन है कि उस परब्रह्म परमात्मा, जो अकाल-स्वरूप है, उसे बारम्बार नमस्कार करता हूँ, जो आदिकाल से सबका पालनहारा है, रंग-रूप और गिनती से परे है और एक ही, कभी न बदलने वाले स्वरूप का स्वामी है। २८

पौड़ी २९

भुगति गिआनु दइआ भंडारणि घटि घटि वाजहि नाद ।
आपि नाथु नाथी सभ जाकी रिधि सिधि अवरा साद ।
संजोगु विजोगु दुइ कार चलावहि लेखै आवहि भाग ।
आदेसु तिसै आदेसु ।
आदि अनीलु अनादि अनाहति जुगु जुगु एको वेसु ।। २९

जिसका भोजन ज्ञान है, जिसके भंडार की स्वामिनी दया है, जिसका नाद स्वर घट-घट में अर्थात् प्रत्येक हृदय में बज रहा है, जिसकी आज्ञा के अन्दर अखिल विश्व विचर रहा है; रिद्धियाँ और सिद्धियाँ तो केवल एक स्वादमात्र हैं। (वह साथ नहीं देने की !) उस प्रभू के उत्पन्न किए संयोग-वियोग अहिर्निशि उसकी आज्ञा में समय की गति के साथ चल रहे हैं। हर एक अपने-अपने भाग्यानुसार प्राप्त कर रहा है। ऐसी शक्तियों के स्वामी प्रभू परमेश्वर को मैं बारम्बार नमस्कार करता हूँ, जो आदिकाल से रंग-भेद और गणना से परे है और एक ही, कभी न बदलनेवाले स्वरूप का स्वामी है। २९

पौड़ी ३०

एका माई जुगति विआई तिनि चेले परवाणु ।
इकु संसारी इकु भंडारी इकु लाए दीवाणु ।
जिव तिसु भावै तिवै चलावै जिव होवै फुरमाणु ।
ओहु वेखै उना नदरि न आवै बहुता एहु विडाणु ।
आदेसु तिसै आदेसु ।
आदि अनीलु अनादि अनाहति जुगु जुगु एको वेसु ।। ३०

एक ऐसी माता है जो परमेश्वर की कृपा-दृष्टि से प्रसव को प्राप्त हुई। जिसके तीन पुत्र हुए उनमें से एक संसार का स्वामी (उत्पन्नकर्ता) ब्रह्मा, दूसरा (पालक) विष्णु और तीसरा (संहारकर्ता) महेश स्वरूप है। वह कर्ता स्वयं जैसे चाहता है वैसे ही सबको चलाता है, और जैसी आज्ञा देता है वैसा कराता है। परमेश्वर स्वयं तो ब्रह्मा, विष्णु, महेष तीनों को और सबको देखता रहता है, परन्तु वे उसको नहीं देख पाते, यह कितने आश्चर्य की बात है ! मैं ऐसे निराकार स्वरूप पारब्रह्म परमेश्वर को बारम्बार नमस्कार करता हूँ, जो आदिकाल से रंग-भेद और गणना से परे है और एक ही, कभी न बदलनेवाले स्वरूप का स्वामी है। ३०

पौड़ी ३१

आसणु लोय लोय भंडार, जो किछु पाइआ सु एका वार ।
करि करि वेखै सिरजणहारु, नानक सचे की साची कार ।
आदेसु तिसै आदेसु ।
आदि अनीलु अनादि अनाहति जुगु जुगु एको वेसु ।। ३१

वह प्रभू सर्वव्यापी है । उसका भंडारा प्रत्येक स्थान पर लगा हुआ है । जिस पर दयादृष्टि करता है, एक ही बार में उसकी झोली भर देता है । फिर अपनी रचना पर स्वयं दृष्टि रखता है, उसकी सत्ता सत्य पर क़ायम है । श्रीगुरू नानकदेव जी कहते हैं कि मैं ऐसे निराकार स्वरूप पारब्रह्म परमात्मा को बारम्बार नमस्कार करता हूँ, जो आदिकाल से रंग-भेद और गणना से परे है और एक ही, कभी न बदलनेवाले स्वरूप का स्वामी है । ३१

पौड़ी ३२

इकदू जीभौ लख होहि लख होवहि लख वीस ।
लखु लखु गेड़ा आखीअहि एकु नामु जगदीस ।
एतु राहि पति पवड़ीआ चड़ीऐ होय इकीस ।
सुणि गला आकास की कीटा आई रीस ।
नानक नदरी पाइऐ कूड़ी कूड़ै ठीस ।। ३२

प्रभू की स्तुति के लिए यदि एक क्या लाखों जिह्वाएँ हो जाएँ, फिर उन लाखों से और बीसों लाख बढ़ जाएँ, अर्थात् करोड़ों जिह्वाएँ हो जाएँ, फिर एक-एक ज़बान से कोटि-कोटि उस प्रभू का यशगान करूँ, तब ही उसकी मंज़िल तक पहुँचाने वाली इन सीढियों की सहायता से उस प्रभू से एकाकार हो सकता हूँ । इस प्रकार गुणगान और भक्ति से चींटी जैसे छोटे जीव भी उस तक पहुँचने का प्रयत्न कर सकते हैं, नहीं तो असंभव है । जब तक वह कर्ता स्वयं अपनी कृपादृष्टि से अपने तक न पहुँचाये, व्यर्थ कोरी ज्ञान की सब बातें ही बातें रह जाती हैं । ३२

पौड़ी ३३

आखणि जोरु चुपै नह जोरु जोरु न मंगणि देणि न जोरु ।
जोरु न जीवणि मरणि नह जोरु जोरु न राजि मालि मनि सोरु ।
जोरु न सुरती गिआनि वीचारि जोरु न जुगती छुटै संसारु ।
जिसु हथि जोरु करि वेखै सोय नानक उत्तमु नीचु न कोय ।। ३३

परमेश्वर की प्राप्ति न तो ज़ोर से, न चुप रहने से होती है, न ज़ोर से कुछ प्राप्त किया जा सकता है, न दिया जा सकता है, न जीवन-मृत्यु के मामलों में ही बस चलता है। दुनियावी वस्तुएँ, राज-पाट, धन-दौलत भी ज़ोर से प्राप्त नहीं होते, न आत्मिक शक्तियों को ही प्राप्त किया जा सकता है; न ही युक्तियों की प्राप्ति हो सकती है, जिससे भवसागर को पार किया जा सके। श्रीगुरू नानकदेव जी कहते हैं, इन सभी वस्तुओं की प्राप्ति ईश्वरीय कृपा के अतिरिक्त किसी के ज़ोर ज़बरदस्ती या ज़ुल्म से नहीं हो सकती। (सभी भाग्यानुसार उत्तम नीच कर्मों के स्वामी होते हैं)। ३३

पौड़ी ३४

राती रुती थिती वार पवण पाणी अगनी पाताल।
तिसु विचि धरती थापि रखी धरमसाल।
तिसु विचि जीअ जुगति के रंग तिनके नाम अनेक अनंत।
करमी करमी होय वीचारु सचा आपि सचा दरबारु।
तिथै सोहनि पंच परवाणु नदरी करमि पवै नीसाणु।
कच पकाई ओथै पाय नानक गइआ जापै जाय॥ ३४

परमेश्वर ने ही रात-दिन, ऋतुएँ, वार, तिथियाँ, पवन, पानी, अग्नि, आकाश, पाताल आदि बनाए हैं और धरती की भी स्थापना की है, जो वास्तविक रूप से धर्म-कर्म करने के लिए स्थान है। इस धरती पर अनेकानेक नाम-रूप वाले जीव-जन्तु हैं, जिनके अच्छे-बुरे कर्म ही उनके भाग्य का निर्माण करते हैं। वह परमेश्वर सत्यस्वरूप है; उसका दरबार भी सत्यस्वरूप है, जहाँ प्रामाणिक पंच (ईश्वर के स्वीकृत भक्त) ही शोभायमान होते हैं, और जहाँ उसकी कृपादृष्टि बरसती है। कच्चे और पक्के भक्तों का जहाँ लेखा-जोखा होता है, और जहाँ पहुँचने पर ही सब कुछ यथार्थ जाना जा सकता है। ३४

पौड़ी ३५

धरम खंड का एहो धरमु, गिआन खंड का आखहु करमु।
केते पवण पाणी वैसंतर केते कान महेस।
केते बरमे घाड़ति घड़ीअहि रूप रंग के वेस।
केतीआ करम भूमी मेर केते केते धू उपदेस।
केते इंद चंद सूर केते केते मंडल देस।

केते सिध बुध नाथ केते केते देवी वेस।
केते देव दानव मुनि केते केते रतन समुंद।
केतीआ खाणी केतीआ बाणी केते पात नरिंद।
केतीआ सुरती सेवक केते नानक अंतु न अंतु॥ ३५

धर्म-कर्म करनेवालों का वही उचित स्थान है। अब ज्ञानी व्यक्ति की स्थिति कहते हैं—वहाँ कितने ही पवन, पानी और अग्नि (आदि) देव हैं; कितने ही कृष्ण और शिव अवतार हैं। अनेकों ब्रह्मा-स्वरूप हैं जो जीवों को बनाते हैं, पालते हैं, उनमें रंग-रूप भरते हैं, वहाँ कितनी ही कर्मभूमि और सुमेर पर्वत हैं। कितने ध्रुव भक्त और नारद मुनि आदि हैं। कितने ही इन्द्र जैसे राजा और चन्द्रमा-सूर्य आदि हैं। कितने मंडल-टापू और देश-देशान्तर हैं, कितने ही सिद्ध पुरुष, महात्मा बुद्ध और नाथ हैं। देवी-देवताओं के वेश-भूषा वाले हैं; देवता, दानव और ऋषि मुनि हैं। समुद्रों से निकले रत्नादि हैं और कितने ही अंडजादि, कितनी ही खानें, अनेक प्रकार की वाणी[1] और चक्रवर्ती राजा हैं, अनेकों ज्ञानवान् सूझबूझ वाले सेवक हैं, जिनका गुरू नानकदेव जी कहते हैं कि कोई अन्त नहीं है। ३५

पौड़ी ३६

गिआन खंड महि गिआनु परचंडु तिथै नाद विनोद कोड अनंदु।
सरम खंड की वाणी रूपु तिथै घाड़ति घड़िऐ बहुत अनूप।
ताकीआ गला कथीआ ना जाहि जे को कहै पिछै पछुताय।
तिथै घड़ीऐ सुरति मति मनि बुधि,
तिथै घड़ीऐ सुरा सिधा की सुधि॥ ३६

इस ज्ञानखंड (के वर्णन) में ज्ञान ही तेजरूप में उपस्थित है, अर्थात् चिन्तन-मनन ही की प्रधानता है। वहाँ प्राणीमात्र को कानों से सुनने का, आँखों से देखने का और हृदय से मान लेने का आनन्द प्राप्त होता है। फिर आगे श्रमखंड है जहाँ मेहनत और श्रम को मान-सम्मान प्राप्त होता है। अनुपम कृतियाँ गढ़ी जाती हैं जो कथन से परे हैं, और जो उन अकथनीय बातों के बारे में कुछ कहने का साहस करता है वह अपने अज्ञान पर पछताता है। वहाँ सबकी सोच-समझ, मन, बुद्धि देवों-सिद्धों जैसी हो जाती है। ३६

---

१ परा, पश्यंती, मध्यमा, वैखरी आदि वाणियाँ।

पौड़ी ३७

करम खंड की बाणी जोरु तिथै होरु न कोय होरु।
तिथै जोध महाबल सूर तिन महि रामु रहिआ भरपूर।
तिथै सीतो सीता महिमा माहि ताके रूप न कथने जाहि।
ना ओहि मरहि न ठागे जाहि जिनकै रामु बसै मन माहि।
तिथै भगत बसहि के लोअ करहि अनंदु सचा मनि सोय।
सच खंडि वसै निरंकारु करि करि वेखै नदरि निहाल।
तिथै खंड मंडल वरभंड जे को कथै त अंत न अंत।
तिथै लोअ लोअ आकार जिव जिव हुकमु तिवै तिव कार।
वेखै विगसै करि वीचारु नानक कथना करड़ा सारु ॥ ३७

फिर आगे कर्मखंड है जहाँ कर्मप्रधान लोगों की ज़ोरदार आवाज़ें हैं। वहाँ दूसरा कोई पहुँच नहीं सकता। वहाँ वे योद्धा महासूरवीर पहुँचते हैं जिन पर प्रभू की असीम अनुकम्पा होती है। उन सूरवीर योद्धाओं का मन प्रभू-सिमरन में जुड़ा रहता है। सीता और सावित्री जैसी रूपवान् गुणवान् नारियाँ हैं जो प्रभू-भक्ति में लीन हैं, ईश्वर का नाम जिनके हृदयों में रमा हुआ है। वे न तो मरते हैं, न ठगे जाते हैं। वहाँ ऐसे प्रभूभक्त ही रहते हैं जिनके हृदय में सदैव ईश्वर निवास करता है और वे सदैव प्रसन्नचित रहते हैं। फिर आगे सत्यखंड है जहाँ स्वयं परमात्मा निवास करता है, स्वयं सबकी रचना करता है और सब पर कृपादृष्टि करता है। वहाँ क्या-क्या है ! अर्थात् वहाँ सब कुछ (अनन्त) अकथनीय है, और वहाँ का सर्वस्व उसकी आज्ञा और इच्छा में ही है, जिसे देख-देख वह ईश्वर प्रसन्न रहता है, ध्यानमग्न रहता है। और गुरू नानकदेव जी कहते हैं, वह प्रभू-लीला ऐसी अनोखी है जिसका वर्णन करना हमारी सामर्थ्य से परे है। ३७

पौड़ी ३८

जतु पाहारा धीरजु सुनिआरु अहरणि मति वेदु हथीआरु।
भउ खला अगनि तप ताउ भांडा भाउ अमृतु तितु ढालि।
घड़ीऐ सबदु सची टकसाल जिनकउ नदरि करमु तिन कार।
नानक नदरी नदरि निहाल ॥ ३८

विषय-वासनाओं का त्याग ही यत (संयम) है, और यत-रूपी भट्ठी, और धैर्य-रूपी स्वर्णकार है। विषय-वासनाओं का त्याग यत है, चंचल इन्द्रियों

को वश में करना धैर्य है, निश्चल बुद्धि ही वह नेहाई है जिस पर रखकर सोने को पीटा जाता है। ज्ञान-वेद-वाक्य ही औज़ार हैं, ईश्वरीय भय ही धौंकनी है, तपस्या ही अग्नि है, प्रेममय हृदय ही कढ़ाई है जिसमें नाम-रूपी अमृत ढलता है और साधु-संगत रूपी सच्ची टकसाल में गुरु-उपदेश से ही मानवमात्र को गढ़ा जाता है। फिर जिस पर उस ईश्वर की दया-दृष्टि हो जावे, वह निहाल हो जाता है। [इन्द्रियों को वश में करके, विषय-वासनाओं से दूर रहते हुए, धैर्य धारण करते हुए, निष्काम भाव से कर्मरत रहना, और प्रेममय भाव से जीवन-यात्रा को ज्ञान-वार्ताओं में लिप्त रखना, ईश्वरीय मार्ग पर चलने में ही मानव-जीवन की यथार्थता है।] ३८

सलोकु

पवणु गुरू पाणी पिता माता धरति महतु
दिवसु राति दुई दाई दाइआ खेलै सगल जगतु
चंगिआईआ बुरिआईआ वाचै धरमु हदूरि
करमी आपो आपणी के नेड़ै के दूरि
जिनी नामु धिआइआ गए मसकति घालि
नानक ते मुख उजलै केती छुटी नालि

समस्त संसार का गुरू वायु है, जल पिता है, महान् पृथ्वी माता है, दिन और रात दोनो दाई और दाया हैं जिनकी गोद में सारा संसार खेल रहा है। धर्मराज हम जीवों की अच्छाइयाँ-बुराइयाँ ईश्वर के समक्ष रखता है और वे वहाँ परखी जाती हैं, और सभी अपने-अपने कर्मों से उस प्रभू के निकट अथवा उससे दूर पहुँचाये जाते हैं। परन्तु गुरूजी बताते हैं कि जिन्होंने प्रभू नाम का सिमरन सच्चे हृदय से किया है, वही संसार से लाभ उठाकर (सफल होकर) गए हैं। उनके मुँह यहाँ और वहाँ दोनो स्थानों पर उज्ज्वल हैं और उनके साथ-साथ कई दूसरे भी उनके सत्संग से मुक्ति को प्राप्त होते हैं।

सो दरु रागु आसा महला १

१ ओंकार सतिगुर प्रसादि

॥ सो दरु तेरा केहा सो घरु केहा जितु बहि सरब समाले। वाजे तेरे नाद अनेक असंखा केते तेरे वावणहारे। केते तेरे राग परी सिउ कहीअहि केते तेरे गावणहारे। गावनि तुधनो पवणु पाणी बैसंतरु गावै राजा धरमु दुआरे। गावनि तुधनो चितु गुपतु लिखि जाणनि लिखि लिखि धरमु बीचारे। गावनि तुधनो ईसरु ब्रह्मा देवी सोहनि तेरे सदा सवारे। गावनि तुधनो इंद्र इंद्रासणि बैठे देवतिआ दरि नाले। गावनि तुधनो सिध समाधी अंदरि गावनि तुधनो साध बीचारे। गावनि तुधनो जती सती संतोखी गावनि तुधनो वीर करारे। गावनि तुधनो पंडित पड़नि रखीसुर जुगु जुगु वेदा नाले। गावनि तुधनो मोहणीआ मनु मोहनि सुरगु मछु पइआले गावनि तुधनो रतन उपाए तेरे अठसठि तीरथ नाले। गावनि तुधनो जोध महाबल सूरा गावनि तुधनो खाणी चारे। गावनि तुधनो खंड मंडल ब्रह्मंडा करि करि रखे तेरे धारे। सेई तुधनो गावनि जो तुधु भावनि रते तेरे भगत रसाले। होरि केते तुधनो गावनि से मैं चिति न आवनि नानकु किआ बीचारे। सोई सोई सदा सचु साहिबु साचा साची नाई। है भी होसी जाइ न जासी रचना जिनि रचाई। रंगी रंगी भाती करि करि जिनसी माइआ जिनि उपाई। करि करि देखै कीता आपणा जिउ तिस दी वडिआई। जो तिसु भावै सोई करसी फिरि हुकमु न करणा जाई। सो पातिसाहु साहा पतिसाहिबु नानक रहणु रजाई ॥ १ ॥

ईश्वर-प्रदत्त गुण अमूल्य हैं और उनका आदान-प्रदान भी अमूल्य है। गुणों के सौदागर और गुणों के ख़ज़ाने भी अमूल्य हैं, गुणों के ग्राहक भी अमूल्य हैं; जो संगत के रूप में आकर क्रय-विक्रय करते हैं, वो भी अमूल्य हैं। उन गुणों से प्रेम करनेवाले और उनमें लीन हो जानेवाले भी

व्यापको विश्वरूपश्च भगैः षड्भिः समन्वितः। धृत्वा नाना तनूर्नाना चरितानि करोति सः ॥
तत् सर्वं केवलं भक्तहितं साधयितुं स्थितम्। यतः कृपानिधिः सोऽस्ति शरणागतवत्सलः ॥
भक्तेषु यस्य ममता कृपा च सततं मता। कृपां कृत्वा पुनः कोपं कदापि कुरुते न यः ॥
गतं प्रापयते दीनबन्धुः स सरलः प्रभुः। सर्वशक्तियुतः सर्वस्वामी च स रघूत्तमः ॥
ज्ञात्वैतत् सुधियस्तस्य वर्णयन्ति हरेर्यशः। पावयन्ति निजां वाणीं कुर्वन्ति सुफलां तथा ॥
अस्मादेव बलाद् रामपादयोः शिरसा नतः। करोमि तद्गुणमयीं कथां नाथप्रसादिनीम् ॥
मुनिभिः श्रीहरेः कीर्तिर्गीतास्ति सकलैः पुरा। अतस्तन्मार्गसरणं सुकरं भाति मे जनाः ॥

अतीव या दुस्तरणाः पुनस्ता निर्मापिते सेतुवरे नृपेण।
भवन्ति तार्याः सरितां प्रधानाः पिपीलिकाभिश्च विना श्रमेण ॥ १३ ॥

प्रदर्श्येतिप्रकारेण स्वकाय मनसे बलम्। श्रीमतो रघुनाथस्य करोमि रुचिरां कथाम् ॥
वेदव्यासादिकान् नानाप्रथितान् कविपुङ्गवान्। यैः सादरं हरिगतं सुयशो वर्णितं बहु ॥
तेषां समेषां चरणकमलानि नतोऽस्म्यहम्। सम्पूरयन्तु सकलांस्ते मदीयान् मनोरथान् ॥
तानपि प्रणमामीह कवीन् कलियुगोद्भवान्। वर्णिता यैर्गुणगणा रघुनाथस्य सन्ततम् ॥
ये प्राकृताः कविवरा नैपुण्योत्कर्षशालिनः। भाषायां यैर्वर्णितानि चरितानि हरेर्मुहुः ॥
ये जाता ये वर्तमाना ये भविष्यन्ति चाग्रतः। सकलानेव वन्दे तान् निश्छलं सादरं कवीन् ॥
भूत्वा प्रसन्ना ददतु भवन्तो वरमीदृशम्। यत् साधूनां समाजे मे कविता मानिता भवेत् ॥
विबुधा नैव मन्यन्ते प्रबन्धकवितां तु याम्। तस्यां बाला एव यत्नं कवयः कुर्वते मुधा ॥
कविता कीर्तिरुक्तिश्च सैव सर्वैर्मतोत्तमा। या गङ्गेव समानं स्यात् सर्वेषां हितकारिणी ॥
कीर्तिः सुरम्या रामस्य निकृष्टा कविता तु मे। इदमेवास्ति वैषम्यमिति चिन्ता मम स्थिता ॥
तत् साम्यं सुलभं मे स्याद् भवतां कृपया बुधाः। वल्कलेऽपि विभात्येव कौशेयरचिताऽऽकृतिः ॥
इत्थं विचार्य चित्ते स्वे मयि कुर्वन्त्वनुग्रहम्। सदैवानुहरत्येव सुवाणी विमलं यशः ॥

विस्मृत्य वैरं सहजं द्विषोऽपि गायन्ति यां सत्कवितां निशम्य।
तामेव ऋज्वीं शुचिकीर्तियुक्तां सम्मन्वते विज्ञतमा विदग्धाः ॥ १४ ॥ क

भवेन्न बुद्धि विमलां विना सा बुद्धेर्बलञ्चाऽल्पतरं ममास्ति।
तथा दयध्वं मुहुरर्थये वः शक्ष्ये यथा रामयशः प्रगातुम् ॥ १४ ॥ ख

श्रीरामवृत्तात्मक - मानसस्य हे मञ्जुहंसाः कवयो बुधाश्च।
अभ्यर्थनां बालकृतां निशम्य रुचिं च दृष्ट्वा कृपयन्तु सर्वे ॥ १४ ॥ ग

मुनीन्द्रस्य पादाम्बुजं तस्य नौमि कृतं येन रामायणं दिव्यरूपम्।
सुकान्ताक्षरं यत् स्वरेणान्वितञ्च युतं दूषणेनापि दोषप्रहीणम् ॥ १४ ॥ घ

भवाम्भोधिपाराय पोतेन तुल्यान् सदा नौमि वेदांश्चतुःसङ्ख्ययाक्तान्।
श्रमः स्वप्नकालेऽपि नास्तीह येषां यशो निर्मलं गायतां राघवस्य ॥ १४ ॥ ङ

मुहुः पादरेणुं विधेनौमि तस्य कृतो येन संसाररूपः समुद्रः।
यतो निर्गताः सन्त इन्द्वमृते गौः खलाः कालकूटं विषं वारुणी च ॥ १४ ॥ च

विद्वद्ग्रह - ब्राह्मणदेवतानां नत्वाऽङ्घ्रिपद्मं विनिवेदयामि।
यत् ते प्रसन्ना मम पूरयन्तु मनोरथान् सर्वविधान् मनोज्ञान् ॥ १४ ॥ छ

पुनि बंदउँ सादर, सुरसरिता । जुगल पुनीत, मनोहर - चरिता ॥
मज्जन - पान पाप हर एका । कहत - सुनत अेक हर अबिबेका ॥
गुर - पितु - मातु महेस - भवानी । प्रनवउँ दीनबंधु, दिन - दानी ॥
सेवक, स्वामि, सखा सिय-पी के । हित निरुपधि सब बिधि तुलसी के ॥
कलि बिलोकि जग-हित हर-गिरिजा । साबर - मंत्रजाल जिन्ह सिरिजा ॥
अनमिल आखर, अरथ, न जापू । प्रगट प्रभाउ महेस - प्रतापू ॥
सो उमेस मोहि पर अनुकूला । करिहिं कथा मुद-मंगल-मूला ॥
सुमिरि सिवा - सिव, पाइ पसाऊ । बरनउँ राम-चरित चित चाऊ ॥
भनिति मोरि सिव - कृपाँ बिभाती । ससि-समाज मिलि मनहुँ सुराती ॥
जे अेहि कथहि सनेह समेता । कहिहहिं, सुनिहहिं, समुझि सचेता ॥
होइहहिं राम-चरन-अनुरागी । कलि-मल-रहित सुमंगल-भागी ॥

दो०—सपनेहुँ साचेहुँ मोहि पर, जौं हर - गौरि - पसाउ ।
तौ फुर होउ जो कहेउँ सब भाषा-भनिति-प्रभाउ ॥ १५ ॥

बंदउँ अवधपुरी अति पावनि । सरजू सरि कलि - कलुष - नसावनि ॥
प्रनवउँ पुर - नर - नारि बहोरी । ममता जिन्ह पर प्रभुहि न थोरी ॥
सियनिंदक - अघ - ओघ नसाए । लोक बिसोक बनाइ बसाए ॥
बंदउँ कौसल्या दिसि - प्राची । कीरति जासु सकल जग माची ॥
प्रगटेउ जहँ रघुपति - ससि चारू । बिस्व - सुखद, खल - कमल - तुसारू ॥
दसरथराउ - सहित सब रानी । सुकृत - सुमंगल - मूरति मानी ॥
करउँ प्रनाम करम - मन - बानी । करहु कृपा सुत - सेवक जानी ॥
जिन्हहि बिरचि बड़ भयउ बिधाता । महिमा - अवधि राम - पितुमाता ॥

सो०—बंदउँ अवध - भुआल, सत्य प्रेम जेहि राम - पद ।
बिछुरत दीनदयाल, प्रिय तनु तृन इव परिहरेउ ॥ १६ ॥

प्रनवउँ परिजन - सहित बिदेहू । जाहि राम - पद गूढ़ सनेहू ॥
जोग - भोग महँ राखेउ गोई । राम बिलोकत प्रगटेउ सोई ॥
प्रनवउँ प्रथम भरत के चरना । जासु नेम - ब्रत जाइ न बरना ॥
रामचरन - पंकज मन जासू । लुबुध मधुप इव तजइ न पासू ॥
बंदउँ लछिमन - पद जलजाता । सीतल, सुभग, भगत - सुखदाता ॥
रघुपति - कीरति बिमल पताका । दंड समान भयउ जस जाका ॥
सेष सहस्रसीस जग - कारन । जो अवतरेउ भूमि - भय टारन ॥
सदा सो सानुकूल रह मो पर । कृपासिंधु सौमित्रि गुनाकर ॥
रिपुसूदन - पद - कमल नमामी । सूर, सुसील, भरत - अनुगामी ॥
महाबीर बिनवउँ हनुमाना । राम जासु जस आप बखाना ॥

सो०—प्रनवउँ पवनकुमार खल - बन - पावक ग्यानघन ।
जासु हृदय - आगार, बसहिं राम सर - चाप - धर ॥ १७ ॥

कपिपति, रीछ, निसाचर - राजा । अंगदादि जे कीस - समाजा ॥
बंदउँ सबके चरन सुहाए । अधम सरीर, राम जिन्ह पाए ॥
रघुपति - चरन - उपासक जेते । खग, मृग, सुर, नर, असुर-समेते ॥

पुनश्च शिरसा वन्दे जाह्नवीं शारदां तथा । पुनीतं रमणीयं च विख्यातं चरितं ययोः ॥
स्नानात् पानाच्च पापानि प्रथमा हरते सदा । अविवेकं द्वितीया च श्रवणात् कीर्तनात् तथा ॥
भवानीशङ्करौ वन्दे पितरौ मम सद्गुरू । दीनबन्धू प्रतिदिनं नानादान-विधायिनौ ॥
सीतापतेः सेवकौ यौ स्वामिनौ सुहृदौ तथा । सर्वप्रकारं तुलसीदासस्याऽकपटं हितौ ॥
दृष्ट्वा कलियुगं याभ्यां जगतो हितकाम्यया । रचितः शाबराख्यानां मन्त्राणां पुञ्ज उत्तमः ॥
येषां वर्णा असम्बद्धा न युक्तोऽर्थो जपस्तथा । तथापि शम्भोर्माहात्म्याद् येषां स्पष्टा मता प्रभा ॥
भूत्वाऽनुकूलो गिरिजापतिर्मयि स शङ्करः । इमां रामकथां मोदशुभमूलां करिष्यति ॥
शिवां शिवञ्च स्मृत्वेत्थं प्रसादं प्राप्य चानयोः । वर्णये रामचरितं रुचिपूर्णेन चेतसा ॥
शोभिष्यते मे कविता श्रीशम्भोः कृपया तथा । चन्द्रेण तारायुक्तेन शोभते रजनी यथा ॥
प्रेम्णा तथावधानेन विज्ञाय कवितामिमाम् । कीर्तयिष्यन्ति ये केऽपि श्रोष्यन्ति च सचेतसः ॥
निश्चयेन भविष्यन्ति ते रामाङ्घ्र्यनुरागिणः । तथा त्यक्त्वा कलेर्दोषान् सुमङ्गलसमन्विताः ॥

स्वप्नेऽपि यद्यस्ति हरस्य तद्वद् गौर्याश्च सत्यं मयि सुप्रसादः ।
तर्ह्यस्तु सत्यः सततं मयोक्तः सर्वोऽपि भाषाकविताप्रभावः ॥ १५ ॥

अयोध्यां नगरीं नौमि सततं पावनोत्तमाम् । कलिदोषहरां वन्दे सरितं सरयूञ्च ताम् ॥
अयोध्याया नरान् भूयो नागरीश्च नमाम्यहम् । येषु यासु च रामस्य ममता नाल्परूपिणी ॥
सीताया निन्दकांस्तत्र कृत्वा क्षीणाघसञ्चयान् । विधाय शोकरहितान् स्वलोकेऽवासयत् प्रभुः ॥
कौशल्यारूपिणीं प्राचीं दिशं तां नौमि सन्ततम् । यस्याः सुकीर्तिः सकलं जगद् व्याप्नोति सर्वतः ॥
यस्या रघुपतिश्चारुः प्रादुरासीत् कलानिधिः । खलपद्मतुषारो यः सर्वलोकसुखप्रदः ॥
सहितं सर्वराज्ञीभिर्नृपं दशरथं स्थितम् । पुण्यस्य निर्मलां मूर्तिं मत्वा सन्मङ्गलस्य च ॥
नमामि कर्मणा वाचा मनसा च पुनः पुनः । अनुगृह्णन्त्विमे सर्वे ज्ञात्वा मां सुतसेवकम् ॥
यान् विरच्य विधातापि महत्त्वं प्राप्तवान् पुरा । मातृत्वेन पितृत्वेन ये महिम्नोऽवधिः प्रभोः ॥

अयोध्यापतिं नौमि भूपालवर्यं प्रभोः पादयोर्यस्य हार्दं सुसत्यम् ।
क्षणाद् दीनबन्धौ वियुक्ते तृणेन समं त्यक्तवान् यः प्रियञ्चापि देहम् ॥ १६ ॥

विदेहराजं जनकं वन्दे परिजनैर्युतम् । रामपादाब्जयोर्यस्य सुगूढं प्रेम कीर्तितम् ॥
तेन तत् सकलं प्रेम गूहितं योगभोगयोः । सहसा प्रकटं जातं किन्तु तद् रामदर्शनात् ॥
भ्रातृषु प्रथमं वन्दे भरतस्याङ्घ्रिपङ्कजे । यस्य व्रतादिनियमा अपि वाचामगोचराः ॥
रामपादाब्जयोर्लुब्धं यच्चित्तं मधुपोपमम् । विजहाति न तत् ते च कदाचिदपि न क्वचित् ॥
पादारविन्दे वन्देऽहं लक्ष्मणस्यापि निर्मले । शीतले सुभगे भक्तजनेभ्यः सुखदे सदा ॥
रघूत्तमस्य सत्कीर्तिः पताका विमला मता । तस्यां यस्य यशो जातं दण्ड उन्नायकः शुभः ॥
शेषः सहस्रशीर्षो यो जगतः कारणं परम् । भूमेर्भीतिं निराकर्तुं योऽवतीर्णो रघोः कुले ॥
अनुकूलः सर्वदा स्यान्मयि सर्वविधञ्च सः । कृपासिन्धुर्गुणागारः सुमित्रानन्दवर्धनः ॥
वन्दे शत्रुघ्नस्य पादकमले विमले सदा । सुवीरः शुभशीलो यो भरतस्यानुगस्तथा ॥
हनुमन्तं महावीरमिदानीं मानयाम्यहम् । श्रीरामेण स्वयं यस्य वर्णितं यश उत्तमम् ॥

सदा नौमि विज्ञानपूर्णं दयालुं खलाख्याटवीपावकं वातसूनुम् ।
यदीये मनोमन्दिरे रामचन्द्रो धनुर्बाणपाणिर्निवासं करोति ॥ १७ ॥

कीशनाथो भल्लनाथस्तथा रात्रिञ्चरेश्वरः । अङ्गदप्रमुखानाञ्च कीशानां पुञ्ज उत्तमः ॥
तेषां तस्य च सर्वस्य वन्दे सुपदमण्डलम् । अधमेऽपि शरीरे यैर्लब्धो रामः सतां गतिः ॥
उपासकाश्चरणयो रघुवंशोत्तमस्य ये । खगैर्मृगैः सुरैर्मर्त्यैरसुरैश्चापि संयुताः ॥

बंदउँ पद - सरोज सब केरे । जे बिनु काम रामके चेरे ॥
सुक - सनकादि भगत मुनि नारद । जे मुनिबर बिग्यान बिसारद ॥
प्रनवउँ सबहिं धरनि धरि सीसा । करहु कृपा जन जानि मुनीसा ॥
जनकसुता जग - जननि जानकी । अतिसय प्रिय करुनानिधान की ॥
ताके जुगपद - कमल मनावउँ । जासु कृपाँ निरमल मति पावउँ ॥
पुनि मन - बचन - कर्म रघुनायक । चरनकमल बंदउँ सब लायक ॥
राजिवनयन, धरें धनु - सायक । भगत बिपति - भंजन, सुखदायक ॥

दो०—गिरा-अरथ, जल-बीचि-सम, कहिअत भिन्न न भिन्न ।
बंदउँ सीता-राम-पद, जिन्हहि परम प्रिय खिन्न ॥ १८ ॥

बंदउँ नाम, राम - रघुबर को । हेतु कृसानु - भानु - हिमकर को ॥
बिधि-हरि-हरमय, बेद - प्रान सो । अगुन, अनूपम, गुननिधान सो ॥
महामंत्र, जोइ जपत महेसू । कासीं मुकुति - हेतु उपदेसू ॥
महिमा जासु जान गनराऊ । प्रथम पूजिअत नाम - प्रभाऊ ॥
जान आदिकबि नाम - प्रतापू । भयउ सुद्ध करि उलटा जापू ॥
सहस-नाम-सम सुनि सिव-बानी । जपति सदा पिय - संग भवानी ॥
हरषे हेतु हेरि हर ही को । किय भूषन तिय - भूषन ती को ॥
नाम - प्रभाउ जान सिव नीको । कालकूट फलु दीन्ह अमी को ॥

दो०—बरषा रितु रघुपति-भगति, तुलसी—सालि सुदास ।
राम - नाम बर बरन - जुग, सावन-भादव मास ॥ १९ ॥

आखर मधुर - मनोहर दोऊ । बरन - बिलोचन, जन - जिय जोऊ ॥
सुमिरत सुलभ, सुखद सब काहू । लोक लाहु, परलोक निबाहू ॥
कहत, सुनत, सुमिरत, सुठि - नीके । राम-लखन-सम प्रिय तुलसी के ॥
बरनत बरन, प्रीति बिलगाती । ब्रह्म - जीव - सम सहज सँघाती ॥
नर - नारायन - सरिस सुभ्राता । जगपालक, बिसेषि जन - त्राता ॥
भगति - सुतिय - कल - करनबिभूषन । जगहित - हेतु बिमल बिधुपूषन ॥
स्वाद तोष - सम सुगति - सुधा के । कमठ, सेष - सम धर बसुधा के ॥
जन - मन - मंजु - कंज मधुकर से । जीह-जसोमति, हरि-हलधर से ॥

दो०—एकु छत्रु, अेकु मुकुटमनि, सब बरननि पर जोउ ।
तुलसी रघुबर - नाम के, बरन बिराजत दोउ ॥ २० ॥

समुझत सरिस, नाम अरु नामी । प्रीति परसपर प्रभु - अनुगामी ॥
नाम - रूप, दुइ ईस - उपाधी । अकथ, अनादि, सुसामुझि - साधी ॥
को बड़ - छोट—कहत अपराधू । सुनि गुन - भेद समुझिहहिं साधू ॥
देखिअहिं रूप, नाम - आधीना । रूप - ग्यान नहिं नाम - बिहीना ॥
रूप - बिसेष, नाम बिनु जानें । करतल - गत न परहिं पहिचानें ॥
सुमिरिअ नाम, रूप बिनु देखें । आवत हृदयँ सनेह बिसेषें ॥
नाम - रूप - गति अकथ कहानी । समुझत सुखद, न परति बखानी ॥
अगुन - सगुन - बिच, नाम सुसाखी । उभय प्रबोधक, चतुर दुभाषी ॥

चरणाब्जानि वन्देऽहं सर्वेषामपि सन्ततम् । रघुनाथस्य ये सन्ति सेवकाः कामनां विना ॥
भक्ताः शुकर्षिसनकप्रमुखा नारदादयः । ये केऽपि मुनिवर्याश्च ज्ञानविज्ञानशालिनः ॥
प्रणौमि सर्वानपि तान् धरणीं शिरसा स्पृशन् । मुनीशा! मां जनं ज्ञात्वा मयि कुर्वन्तु सत्कृपाम् ॥
जनकस्य सुता विश्वजननी जानकी तथा । दयानिधेः प्रियतमा सर्वदा सर्वथा स्थिता ॥
तस्याः पादाम्भोजयुग्मे मानयामि नमाम्यपि । ययोः कृपावशेनाहं प्राप्नुयां विमलां मतिम् ॥
इदानीं रघुनाथस्य मनोवाक्कर्मभिः पुनः । नमामि सकलार्हे ते सिद्धिदे चरणाम्बुजे ॥
योऽस्ति राजीवनयनो धनुर्बाणधरस्तथा । भक्तानां विपदां हन्ता तेभ्यः सर्वसुखप्रदः ॥

वागर्थतुल्यौ जलवीचितुल्यौ वाच्यौ पृथक् किन्तु विभेदशून्यौ ।
नमामि सीतारघुनन्दनाङ्घ्री याभ्यां मताः स्निग्धतमास्तु दीनाः ॥ १८ ॥

रामेति नाम वन्देऽहं रघुवंशमणेः प्रभोः । हेतुभूतं जातवेदोदिवाकर - कलाभृताम् ॥
तद् वेदानां प्राणरूपं ब्रह्मविष्णुशिवात्मकम् । निधानं सद्गुणानां तन्निर्गुणञ्चातुलं मतम् ॥
महेश्वरो महामन्त्रं यं नित्यं जपतीश्वरः । यस्योपदेशो हेतुश्च मुक्तेः काश्यां तनुत्यजाम् ॥
महिमानं तस्य सर्वं जानाति द्विरदाननः । यस्य नाम्नः प्रभावेण प्राप्तवानादिपूज्यताम् ॥
जानात्यादिकवि-नाम्नः प्रतापं यस्य भासुरम् । विपरीतजपेनापि शुद्धतां स हि लब्धवान् ॥
सहस्रनाम-सदृशमिदं श्रुत्वा शिवात् पुरा । गौरी ततस्तेन साकं जपतीदं निरन्तरम् ॥
प्रीतिं दृष्ट्वा नाम्नि तस्याः प्रसन्नः सन् हरस्तदा । स्त्रीभूषणं तां स्वाङ्गेषु चकाराभिन्नभूषणम् ॥
नाम्नः प्रभावं जानाति सम्यग्रूपेण शङ्करः । प्रभावाद् यस्य गरलं प्रायच्छदमृतं फलम् ॥

वर्षर्तुरूपा रघुनाथभक्तिः शालिः सुदासस्तुलसीमतेन ।
रामेति नाम्नोऽक्षरयुग्ममेतन् मासौ स्थितौ श्रावण-भाद्ररूपौ ॥ १९ ॥

रामेति मधुरे चित्तमोहके गदितेऽक्षरे । वर्णदेहस्य नेत्रे द्वे भक्तानां जीवनञ्च ये ॥
स्मरणे सुलभे सर्वजनेभ्यः सुखदायके । इहलोके तथाऽन्ये च लोके निर्वाहके परे ॥
सुन्दरेऽतीव कथने श्रवणे स्मरणे तथा । राम सौमित्रि - सदृशे तुलसीकाय - सुप्रिये ॥
प्रत्यक्षरं वर्णने तु प्रीतिर्भिन्नाऽनयोर्मता । ब्रह्मजीवसमे त्वेते स्वभावात् सयुजी मते ॥
नरनारायणसमौ वर्णौ सुभ्रातराविमौ । जगतः पालकौ किन्तु विशेषं भक्तरक्षकौ ॥
भक्तिनार्या इमौ वर्णौ मञ्जुले कर्णभूषणे । निर्मलौ चन्द्रसूर्यौ च हिताय जगतो मतौ ॥
सुधाया मुक्तिरूपायाः स्वादतोषसमौ स्थितौ । वसुधाया धरौ कूर्मशेषाहीश्वर - भासुरौ ॥
भक्तचित्तारविन्दान्तर्विहारौ मञ्जुषट्पदौ । रसनाख्ययशोदायै हलि - कृष्ण - स्वरूपिणौ ॥

छत्रन्तु रेफो मुकुटस्थरत्नं मकारवर्णो - ऽखिलवर्णमूर्ध्नि ।
वर्णौ सुवर्णौ रघुनायकस्य नाम्नो लसन्तौ तुलसीमतेन ॥ २० ॥

प्रायशो नाम नामी च समानावेव भासतः । नाथसेवकयोः किन्तु तयोः प्रीतिः परस्परम् ॥
नाम रूपञ्चेश्वरस्य द्वावुपाधी प्रकीर्तितौ । अनिर्वाच्यौ तथानादी विज्ञेयौ सुमनीषया ॥
ज्येष्ठाज्येष्ठत्वकथनमपराधोऽनयोर्मतः । गुणभेदे श्रुते सद्भिः सर्वं तज् ज्ञास्यते स्वयम् ॥
नाम्नो वशे स्थितं लोके रूपमात्रं प्रदृश्यते । नाम्ना विहीनं रूपस्य ज्ञानमुत्पद्यते च न ॥
लोके रूपविशेषोऽपि नाम यावन्न बुध्यते । तावन्न बुध्यते नूनं करस्थोऽपि भवेद् यदि ॥
किन्त्वदृष्ट्वापि रूपञ्चेत् स्मर्यते नाम केवलम् । आयाति रूपं हृदये विशेषस्नेहसंयुतम् ॥
अकथ्या वर्तते नामरूपवैशिष्ट्यसत्कथा । ज्ञाने सा सुखदा किन्तु वर्णनाय न शक्यते ॥
सगुणागुणयोर्मध्ये नाम साक्षी सुशोभनः । द्वयोः प्रबोधको नूनं द्विभाषी चतुरो मतः ॥

दो०—रामनाम - मनिदीप धरु, जीह - देहरीद्वार ।
तुलसी—भीतर - बाहेरहुँ, जौं चाहसि उजिआर ॥ २१ ॥

नाम जीहँ जपि जागहिं जोगी । बिरति, बिरंचि - प्रपंच - बियोगी ॥
ब्रह्मसुखहि अनुभवहिं अनूपा । अकथ, अनामय, नाम न रूपा ॥
जाना चहहिं गूढ़ गति जेऊ । नाम जीहँ जपि, जानहिं तेऊ ॥
साधक नाम जपहिं लय लाएँ । होहिं सिद्ध अनिमादिक पाएँ ॥
जपहिं नामु जन आरत, भारी । मिटहिं कुसंकट, होहिं सुखारी ॥
राम - भगत जग, चारि प्रकारा । सुकृती चारिउ, अनघ, उदारा ॥
चहू चतुर कहुँ, नाम अधारा । ग्यानी प्रभुहि बिसेषि पिआरा ॥
चहुँ जुग, चहुँ श्रुति, नाम-प्रभाऊ । कलि बिसेषि, नहिं आन उपाऊ ॥

दो०—सकल कामना - हीन जे, रामभगति - रस - लीन ।
नाम - सुप्रेम - पियूष - ह्रद, तिन्हहुँ किए मन मीन ॥ २२ ॥

अगुन, सगुन—दुइ ब्रह्म - सरूपा । अकथ, अगाध, अनादि, अनूपा ॥
मोरें मत, बड़ नामु दुहू तें । किअे जेहिं जुग निज बस निज बूतें ॥
प्रौढ़ि, सुजन जनि जानहिं जन की । कहउँ प्रतीति, प्रीति, रुचि, मन की ॥
एकु दारुगत, देखिअ एकू । पावक - सम जुग - ब्रह्म - बिबेकू ॥
उभय अगम, जुग सुगम नाम तें । कहेउँ नामु बड़ ब्रह्म - राम तें ॥
ब्यापकु, एकु, ब्रह्म अबिनासी । सत, चेतन, घन - आनँद - रासी ॥
अस प्रभु हृदयँ अछत अबिकारी । सकल जीव - जग, दीन - दुखारी ॥
नाम - निरूपन, नाम - जतन तें । सोउ प्रगटत जिमि मोल रतन तें ॥

दो०—निरगुन तें अेहि भाँति बड़, नाम - प्रभाउ अपार ।
कहउँ, नामु बड़ राम तें, निज बिचार - अनुसार ॥ २३ ॥

राम भगत - हित नर - तनु धारी । सहि संकट, किअे साधु सुखारी ॥
नामु सप्रेम जपत, अनयासा । भगत होहिं मुद - मंगल - बासा ॥
राम एक तापस - तिय तारी । नामु कोटिखल - कुमति सुधारी ॥
रिषि - हित राम सुकेतु-सुता की । सहित-सेन-सुत कीन्हि बिबाकी ॥
सहित - दोष, दुख, दास - दुरासा । दलइ नामु, जिमि रबि निसि नासा ॥
भंजेउ राम आपु भव चापू । भव - भय - भंजन नाम - प्रतापू ॥
दंडक बन प्रभु कीन्ह सुहावन । जन-मन-अमित नाम किअे पावन ॥
निसिचर - निकर दले रघुनंदन । नामु सकल-कलि-कलुष निकंदन ॥

दो०—सबरी, गीध, सुसेवकनि, सुगति दीन्हि रघुनाथ ।
नाम उधारे अमित खल, बेद - बिदित गुन - गाथ ॥ २४ ॥

राम, सुकंठ - बिभीषण—दोऊ । राखे सरन, जान सबु कोऊ ॥
नाम गरीब अनेक नेवाजे । लोक, बेद, बर - बिरिद बिराजे ॥
राम भालु - कपि - कटकु बटोरा । सेतु - हेतु श्रमु कीन्ह न थोरा ॥
नामु लेत, भवसिंधु सुखाहीं । करहु बिचारु, सुजन ! मन माहीं ॥

श्रीरामनामाख्यमणिप्रदीपं द्वारस्य जिह्वाश्रयणे निधेहि ।
अन्तर्बहिश्चेच्छसि चेत् प्रकाशं साधो प्रकामं तुलसीमतेन ॥ २१ ॥

जपन्तो जिह्वया रामनाम जाग्रति सन्ततम् । धातृप्रपञ्चनिर्मुक्ता विरक्ता योगिनोऽमलाः ॥
ब्रह्मानन्दं त्वनुपमं साक्षात्कुर्वन्ति ते ततः । नामरूपामयैर्हीनं तथा वाचामगोचरम् ॥
जिज्ञासन्ति रहस्यं ये सुगुप्तं परमात्मनः । तेऽपि जप्त्वा जिह्वयेदं तज् जानन्ति श्रमं विना ॥
संलग्ना ये जपन्तीदं लौकिकार्थमभीप्सवः । अणिमादीः प्राप्य सिद्धीः सिद्धकोटिं प्रयान्ति ते ॥
रामनाम जपन्तीदमार्ता भक्तजना यदि । कुसङ्कटानि तीव्राणि लयं यान्ति सुखञ्चते ॥
इत्थं चतुर्विधास्सन्ति भक्ता रामस्य निश्चितम् । एते सर्वेऽप्युदाराश्च धन्याः कलुषवर्जिताः ॥
चतुरेभ्यश्चतुर्भ्योऽपि नाम्न एवाश्रयो मतः । किन्तु ज्ञानी विशेषेण प्रभोः प्रियतमः स्थितः ॥
नाम्नः प्रभावो वेदेषु युगेषु च चतुर्ष्वपि । कलौ विशिष्टः किन्त्वस्ति नोपायोऽन्योऽत्र विद्यते ॥

सर्वाभिलाषारहिता अपीह ये रामभक्तेः सुरसे च लीनाः ।
नाम्नो वरप्रेम्णि सुधातडागे कृतं मनस्तैरपि मीनरूपम् ॥ २२ ॥

अगुणं सगुणञ्चेति स्वरूपं ब्रह्मणो द्विधा । अनाद्यकथ्यानुपमं द्वयमेवातलं तथा ॥
नाम द्वाभ्यामपि ज्येष्ठं मतेन मम निश्चितम् । आयत्तं विहितं येन स्वशक्त्या द्वयमेव तत् ॥
जनस्योक्तिमिमां प्रौढिं जानन्तु सुजना नहि । वच्मि चित्तस्य विश्वासं प्रीतिं यस्माद् रुचिं तथा ॥
एकं दारुगतो वह्निरपरं प्रकटः स्थितः । ब्रह्मणो द्विविधस्यापि ज्ञानं वह्निसमं मतम् ॥
अगम्यमपि तन्नाम्नः सुगमं जायते द्वयम् । ब्रह्मणो रामतश्चातः प्रोक्तं नाम वरं मया ॥
एकं तद् व्यापकं ब्रह्म विनाशरहितं तथा । सत्तारूपं चिदानन्दसन्दोहात्मकमीरितम् ॥
ईदृशे वर्तमानेऽपि निर्विकारे प्रभौ हृदि । सर्वे दीना दुःखिताश्च जीवाः सन्ति जगत्यहो ॥
नाम्नो निरूपणान्नाम्नः साधनाच्च प्रयत्नतः । रत्नज्ञानाद् यथा मूल्यं स्पष्टं ब्रह्म तथा भवेत् ॥

इत्थं प्रभावोऽस्ति वरिष्ठरूपो नाम्नः परान्निर्गुणतोऽप्यपारः ।
स्वकाद् विचारादधुना वदामि रामाच्च नामास्ति वरिष्ठरूपम् ॥ २३ ॥

रामो भक्तहितार्थाय गृहीत्वा मानवीं तनुम् । स्वयं कष्टानि सोढ्वा च साधूंश्चक्रे सुखान्वितान् ॥
जपन्तः केवलं नाम रामस्य प्रेमपूर्वकम् । भक्ता भवन्त्यनायासं गृहमानन्दभद्रयोः ॥
अतारयत् तापसस्य स्त्रियमेकां रघूत्तमः । कुमतिं खलकोटीनां तस्य नाम त्वमार्जयत् ॥
मुनेरेव हितायेशो सुकेतोस्ताटकां सुताम् । सुबाहुनाम्ना पुत्रेण सैन्येन च युतामहन् ॥
दुराशां दलते नाम दोषदुःखयुतामपि । यथा दिवाकरो देवो दलते यामिनीं ध्रुवम् ॥
स्वयं रामः पुरा शम्भोर्भञ्जयामास कार्मुकम् । नाम्नः प्रतापस्तु विश्वभयं भञ्जयति क्षणात् ॥
राघवो दण्डकारण्यं कृतवान् मञ्जुलं पुरा । असङ्ख्यजनचित्तानि पावयत्यस्य नाम तु ॥
रामो रात्रिञ्चरगणानवधीद् बहुसङ्ख्यकान् । हन्ति नामास्य नियतं सकलं कलिकल्मषम् ॥

गृध्राय रामः सुगतिं शबर्यै ददौ परेभ्यश्च सुसेवकेभ्यः ।
नामामितांस्तारयति स्म दुष्टान् वेदेऽपि नाम्नो महिमास्ति गीतः ॥ २४ ॥

शरणेऽस्थापयद् रामो द्वौ सुग्रीव-विभीषणौ । इति सर्वेऽपि जानन्ति रामस्येमां विशेषताम् ॥
दीनहीनेषु नैकेषु परं नामाकरोत् कृपाम् । अयं नाम्नः सुमहिमा प्रथितो लोक-वेदयोः ॥
ऋक्ष-कीश-चमूं रामः सञ्चितामकरोत् पराम् । सेतुबन्धनसिद्ध्यर्थं नाल्पं यत्नं चकार च ॥
नाम्नस्तु ग्रहणेनैव शुष्यते भवसागरः । तच्चिन्तयन्तु सुजनाः कोऽनयो-र्वररूपधृक् ॥

राम सकुल, रन, रावनु मारा । सीय - सहित, निज पुर पगु धारा ॥
राजा रामु, अवध रजधानी । गावत गुन सुर, मुनि, बर - बानी ॥
सेवक सुमिरत नामु सप्रीती । बिनु श्रम प्रबल मोह-दलु जीती ॥
फिरत सनेहँ, मगन सुख अपनें । नाम - प्रसाद, सोच नहिं सपनें ॥

दो०—ब्रह्म - राम तें नामु बड़, बरदायक - बरदानि ।
रामचरित सतकोटि महँ, लिय महेस जियँ जानि ॥ २५ ॥

मासपारायण, पहला विश्राम

नाम - प्रसाद संभु अबिनासी । साजु अमंगल, मंगल - रासी ॥
सुक - सनकादि, सिद्ध, मुनि, जोगी । नाम - प्रसाद ब्रह्मसुख - भोगी ॥
नारद जानेउ नाम - प्रतापू । जग प्रिय हरि, हरि हर प्रिय आपू ॥
नामु जपत प्रभु कीन्ह प्रसादू । भगत - सिरोमनि भे प्रहलादू ॥
ध्रुवँ सगलानि जपेउ हरि नाऊँ । पायउ अचल अनूपम ठाऊँ ॥
सुमिरि पवनसुत पावन नामू । अपने बस करि राखे रामू ॥
अपतु अजामिलु, गजु, गनिकाऊ । भए मुकुत हरिनाम - प्रभाऊ ॥
कहौं कहाँ लगि नाम - बड़ाई । रामु न सकहिं नाम-गुन गाई ॥

दो०—नामु राम को कलपतरु, कलि कल्यान - निवासु ।
जो सुमिरत भयो भाँग तें, तुलसी तुलसीदासु ॥ २६ ॥

चहुँ जुग, तीनि काल, तिहुँ लोका । भए नाम जपि जीव बिसोका ॥
बेद, पुरान, संत - मत एहू । सकल सुकृत-फल राम-सनेहू ॥
ध्यानु प्रथम जुग, मखबिधि दूजें । द्वापर परितोषत प्रभु पूजें ॥
कलि केवल मल - मूल मलीना । पाप-पयोनिधि जन-मन मीना ॥
नाम कामतरु काल कराला । सुमिरत समन सकल जग-जाला ॥
राम नाम कलि अभिमत दाता । हित परलोक-लोक, पितु-माता ॥
नहिं कलि करम, न भगति बिबेकू । राम नाम अवलंबन एकू ॥
कालनेमि कलि कपट - निधानू । नाम - सुमति समरथ हनुमानू ॥

दो०—राम - नाम नरकेसरी, कनककसिपु कलिकाल ।
जापक जन प्रहलाद जिमि, पालिहि दलि सुरसाल ॥ २७ ॥

भायँ, कुभायँ, अनख, आलसहूँ । नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ ॥
सुमिरि सो नाम, राम - गुनगाथा । करउँ नाइ रघुनाथहि माथा ॥
मोरि सुधारिहि सो सब भाँती । जासु कृपा नहिं कृपाँ अघाती ॥
राम सुस्वामि, कुसेवकु मो-सो । निज दिसि देखि दयानिधि पोसो ॥
लोकहुँ - बेद सुसाहिब रीती । बिनय सुनत पहिचानत प्रीती ॥
गनी, गरीब, ग्रामनर, नागर । पंडित, मूढ़, मलीन, उजागर ॥
सुकबि, कुकबि निज मति अनुहारी । नृपहि सराहत सब नर - नारी ॥

हमारे २१६ ग्रन्थ

आपका ज्ञान और आपके घर की शोभा बढ़ायेंगे

★ यदि आप चाहते हैं कि अपना समुचित विकास करें,

★ यदि आप चाहते हैं कि जीवन को नया प्रकाश मिले,

★ यदि आप चाहते हैं कि साहित्य आपको शक्ति दे,

★ यदि आप चाहते हैं कि समाज आपका सम्मान करे,

तो हमारा आपसे विनम्र निवेदन है कि—'हिन्दी समिति' के ये ग्रन्थ जीवन के उद्देश्यों की पूर्ति के सर्वोत्तम सुलभ साधन हैं।

हिन्दी समिति ने कला, विज्ञान, संस्कृति, इतिहास, दर्शन आदि विविध विषयों पर अब तक २१६ ग्रन्थ प्रकाशित किये हैं।

★ ये ग्रन्थ नयनाभिराम मुद्रण, आकर्षक आवरण, सुदृढ़ जिल्द और उचित मूल्य के लिए बहु-प्रशंसित हैं।

● ● ●

☞ विशेष जानकारी और सूची-पत्र के लिए हमे लिखें। हम आपकी सहायता के लिए प्रस्तुत हैं।

हिन्दी समिति

सचिव,
हिन्दी समिति, उत्तर प्रदेश शासन,
हिन्दी भवन, महात्मा गांधी मार्ग,
लखनऊ

जीवनोपयोगी अनिवार्य वस्तुओं में राज्य व्यापार
समाजवादी अर्थ-व्यवस्था का मूलाधार है।

केन्द्रीय और राज्य सरकार ने
गेहूँ में राज्य व्यापार प्रारंभ कर
इस दिशा में महत्वपूर्ण कदम उठाया है।

श्रमिक वर्ग
सभी प्रगतिशील समाजवादी कार्यक्रमों का
नैसर्गिक नेता है।

और

छोटे तथा मध्यमश्रेणी के, मूलतः श्रमजीवी, किसान
उसके स्वाभाविक सहयोगी हैं।

श्रमिक वर्ग को अपनी सारी शक्ति और सतर्कता से:—

- किसानों का सक्रिय सहयोग अर्जित कर,
- निहित स्वार्थों की दुरभिसंधि का पर्दाफ़ाश कर,
- शासन द्वारा किसानों में यातायात, सफ़ाई आदि के व्यय की विशेष सुविधा का प्रचार कर,
- समाजवाद और गरीबों के हित में कार्यक्रम के महत्व को समझ कर,
- उगाही केन्द्रों और दुकानों पर कर्मचारियों एवं किसानों के बीच सौहार्द्रपूर्ण वातावरण स्थापित कर,

गेहूँ और अन्य खाद्यान्नों के राज्य-व्यापार को सफल बनाना है।

इस कार्यक्रम की सफलता पर भारत में समाजवाद का भविष्य निर्भर है।

ग– ७३३१ सूचना निदेशालय, उत्तर प्रदेश,

स्थापित वर्ष १९४९:५०

फोन २५६३४
२२६९८

उत्तर प्रदेशीय सहकारी गन्ना समिति संघ लि०,

लखनऊ

१२, राणा प्रताप मार्ग, लखनऊ

प्रदेश की १३४ सहकारी गन्ना समितियों की सर्वोच्च संस्था

गन्ना संघ व सदस्य समितियाँ लगभग २२ लाख गन्ना उत्पादकों के क्रय-विक्रय सम्बन्धी सभी समस्याओं का समाधान करते हुए तथा कृषि-उत्पादन व गन्ने की पैदावार बढ़ाने हेतु सभी आवश्यक साधनों को सुलभ करने में सतत प्रयत्नशील है।

लघु सिंचाई-साधनों को बढ़ावा देना, खादों का उपयोग बढ़ाने हेतु खाद-भण्डारों का निर्माण, विभिन्न प्रकार के उर्वरकों, खादों व कीट-नाशक पदार्थों का प्रबन्ध, उन्नतिशील बीजों का वितरण आदि कार्यों को सुविधा-जनक बनाते हुए कार्यान्वित करना संघ का मुख्य कार्य है।

आधुनिकतम मशीनों से युक्त गन्ना-संघ-प्रेस सदस्य-समितियों की मुद्रण-आवश्यकताओं की पूर्ति करता है।

स्वराष्ट्र समृद्ध्ये परिवारो नियोज्यताम्

आज की बढ़ती हुई अस्वस्थता, बेकारी तथा गरीबी का एक मुख्य कारण ?

"अनियोजित परिवार"

यदि,

आप इन समस्याओं का हल चाहते हैं

तो

परिवार नियोजन की विधियों को अपना कर अपने परिवार को छोटा रखें।

क्योंकि

छोटे परिवार में ही आप सुखी एवं समृद्धिशाली रह सकते हैं।

ग १०३६८ राज्य परिवार नियोजन ब्यूरो उ० प्र० द्वारा प्रसारित

नियंत्रण कक्ष

(चिकित्सा और स्वास्थ्य सेवा निदेशालय, छोटा छतरमंजिल में स्थापित)

टेलीफ़ोन नं० २२८१९

जनसेवार्थ निम्न सेवाओं के लिए:—

- किसी भी संक्रामक / छूत के रोग जैसे हैजा, गैस्टोइण्टाइटिस, चेचक आदि के फैलने की सूचना देने के लिए, जिससे तत्काल आवश्यक कार्यवाही हो सके।
- उपर्युक्त बीमारियों के लिए वाञ्छित सेवा की सूचना।
- निरोधक टीके और इंजेक्शन लगवाने के लिए निवेदन।
- मिलावटी खाद्य पदार्थों की बिक्री सम्बन्धी सूचना।
- अन्य कोई भी तत्सम्बन्धी सूचना देने या जानकारी प्राप्त करने के लिए।

ग–१००८७ स्वास्थ्यशिक्षा ब्यूरो—चिकित्सा, स्वास्थ्य एवं परिवार नियोजन निदेशालय उ० प्र० द्वारा प्रकाशित

भुवन वाणी ट्रस्ट,

'प्रभाकर निलयम्', ४०५/१२८ चौपटियाँ रोड, लखनऊ-३

जो कार्य किये जा रहे हैं (सानुवाद देवनागरी-लिप्यन्तरण):—

१—(तमिळ) तिरुक्कुरळ् २—(तमिळ) कम्ब रामायण
३—(तॅलुगु) रंगनाथ रामायण ४—(कन्नड़) पम्प रामायण—जैनसाहित्य
५—(असमिया) माधवकंदली रामायण ६—(कश्मीरी) रामावतार चरित
७—(नेपाली) रामायण भानुभक्त कृत ८—(गुजराती) गिरधर रामायण
९—(मलयाळम) तुञ्चत्त् एळुत्तच्छन् कृत महाभारत
१०—(ओड़िआ) वैदेहीश-विळास—उपेन्द्र भञ्ज ११—(सिंधी) स्वामी के सलोक
१२—(मराठी) श्रीराम-विजय—श्रीधर स्वामी कृत मूल एवं अनुवाद
१३—(गुरमुखी) श्रीगुरु ग्रंथ साहब १४—(उर्दू) गुज़श्त: लखनऊ—मौ० शरर
१५—(फ़ारसी) दाराशिकोह कृत ५० उपनिषदों की फ़ारसी-व्याख्या का धारावाहिक हिन्दी अनुवाद
१६—(अरबी) रियाज़ुस्सालिहीन (हदीस)—(ज़ादे सफ़र)
१७—रामचरितमानस (तुलसी)—संस्कृत पद्यानुवाद, तथा ओड़िया लिपि में लिप्यन्तरण एवं ओड़िया गद्य-पद्यानुवाद
१८—इनके अतिरिक्त वेद, संस्कृत, पाली-प्राकृत, पारसी (ज़रथूस्त्र-गाथा) बाइबिल आदि के अनेक उद्धरण।
१९—(वाणी सरोवर)—विविध भाषाओं के उपर्युक्त अनुपम ग्रंथों का सानुवाद धारावाहिक देवनागरी लिप्यन्तरण का त्रैमासिक पत्र—वार्षिक मूल्य १०·००

यह ग्रन्थ सम्पूर्ण हो चुके हैं (सानुवाद देवनागरी लिप्यन्तरण):—

२०—(बंगला) कृत्तिवास रामायण लं० कां० मूल्य १०·००
२१—(उर्दू) श्री 'रुस्वा' कृत "शरीफ़ज़ाद:" ,, ४·००
२२—(गुरमुखी) जपुजी तथा सुखमनी साहब—गुरमुखी मूल पाठ तथा गीता के यशस्वी अनुवादक ख़ा०ब० ख़्वाज: दिलमुहम्मद कृत उर्दू पद्यानुवाद—दोनो देवनागरी लिपि में—मू० ४·००
२३—सिर्रे अक्बर (दाराशिकोह कृत ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरेय, तैत्तरीय, श्वेताश्वतर) की फ़ारसीव्याख्या हिन्दी में—मू० १०·००
२४—तिरुक्कुरळ् (धर्म खण्ड)— ,, ४·००
२५—महाभारत मलयाळम्—पौलोम-आस्तीक पर्व ,, ४·००
२६—ज़ादे सफ़र (इस्लामी हदीस) ,, १०·००

ट्रस्ट के अतिरिक्त, सानुवाद देवनागरी-लिप्यन्तरण के अन्य कार्य, जो अन्यत्र हो चुके हैं:—

१—(अरबी) क़ुर्आन (मूल आयतें अरबी व देवनागरी लिपि में, अनुवाद, टिप्पणी सहित)—इस्लामी धर्माचार्यों द्वारा प्रतिपादित—३५)
२—(बंगला) कृत्तिवास रामायण—(पाँच काण्ड) बंगला मूल देवनागरी में लिप्यन्तरित, अवधी पद्यानुवाद—मू० १२·००

वाणी प्रेस, लखनऊ-२ में मुद्रित एवं भुवन वाणी ट्रस्ट, लखनऊ-३ द्वारा प्रकाशित।
—द्वारा नन्दकुमार अवस्थी, सम्पादक